बाल गंगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक एवं सामाजिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

निर्देशक

प्रो० के० के० मिश्रा

राजनीति विज्ञान विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्ता

रजनी त्रिवेदी

एम०ए०

राजनीति विज्ञान विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

राजनीति विज्ञान विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद (उ०प्र०)

2002

—: विषय सूची :—

प्राक्कथन

प्रारम्भ से ही मेरी, भारतीय राजनीतिक चिन्तको मे गहरी रूचि रही है। यही कारण है कि जब मैने शोध करने का मन बनाया तो मेरे मन मे सर्वप्रथम यह विचार आया कि क्यो न बाल गगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले जैसे दो विरोधी विचारको के विचारो का गहन अध्ययन किया जाय और मैने अपने सुपरवाइजर से इसी विषय पर शोध करने की इच्छा व्यक्त की। उनकी अनुमति के उपरान्त मैने अपने शोध का शीर्षक 'तिलक और गोखले' के सामाजिक एव राजनीतिक विचारो का तुलनात्मक अध्ययन रखा।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ मे बाल गगाधर तिलक तथा गोपाल कृष्ण गोखले के सामाजिक और राजनीतिक विचारो के तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास किया गया है। यह शोध ग्रन्थ छः अध्यायो मे विभक्त है। **प्रथम अध्याय** मे उन्नीसवी शताब्दी में भारत की सामाजिक और राजनीतिक दशा का वर्णन किया गया है। **द्वितीय अध्याय** तत्कालीन भारत में उदारवाद एव उग्रवाद की अवधारणा तथा विकास की ओर सकेत किया गया है। वही **तृतीय अध्याय** मे तिलक के राजनीतिक एव सामाजिक विचारो का वर्णन है। **चतुर्थ अध्याय** मे बाल गंगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक एव सामाजिक विचारों के तुलनात्मक अध्ययन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। तो वही **छठे अध्याय** मे निष्कर्ष एवं सुझाव के माध्यम से तिलक और गोखले के विचारों को वर्तमान परिपेक्ष्य मे प्रासागिकता की दशार्या गया है ।

इस शोध ग्रन्थ में मैने इस बात का भरसक प्रयास किया है कि पाठकगण लोकमान्य तिलक एवं गोपाल कृष्ण गोखले की राजनीतिक तथा सामाजिक विचारो से अवगत हो, और उनके विचारो के तुलनात्मक अध्ययन से उन्हें नवीन जानकारी प्राप्त हो। आज के वर्तमान परिपेक्ष्य मे उनके विचार कितने प्रासागिक है इसकी भी उन्हे जानकारी प्राप्त हो। मेरा यह प्रयास कितना सफल रहा है यह तो पाठकगण की पैनी दृष्टि पर ही निर्भर करेगा। मैंने अपनी ओर से सन्तुष्ट करने का पूरा प्रयत्न किया है फिर भी अपनी मानवीय भूल के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

आभार
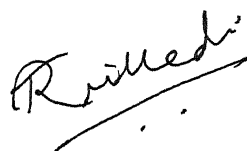
'बाल गगाधर तिलक तथा गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक एव सामाजिक विचारो का तुलनात्मक अध्ययन' विषय के अतर्गत शोध करने की अतीव आकाक्षा को कार्य रूप मे परिणित करने मे मेरे पूज्यनीय गुरु डॉ० के० के० मिश्रा एव उनकी धर्मपत्नी श्रीमती माया मिश्रा का अभूतपूर्व योगदान रहा। मेरे गुरु के मार्गदर्शन और आर्शीवाद के बिना तिलक और गोखले जैसी महान विभूतियो पर शोध करना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। मेरे गुरु ने एक पर्यवेक्षक की भूमिका मे यहॉ विषय के अध्ययन और चिन्तन को सार्थक दृष्टि प्रदान कर वास्तविक अर्थो मे गुरु के दायित्वो का निर्वहन करके मेरा मार्गदर्शन किया। वही अपना अमूल्य समय एव मधुर स्नेह और प्रेरणाप्रद सहयोग प्रदान कर समय-समय पर विभिन्न समस्याओ का समाधान करके मेरे उत्साह मे वृद्धि की। आपके प्रति मै अपना विनीत सम्मान व आभार प्रकट करती हूँ।

शोध कार्य मे समय-समय पर डॉ० आलोक पत, विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग एव दिवाकर दत्त कौशिक प्रवक्ता राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से जो परामर्श एव मार्गदर्शन प्राप्त हुआ, उसके लिए मै उनकी ऋणी हूॅ। मै राजनीतिशास्त्र विभाग के समस्त गुरुजनो को एव इलाहाबाद विश्वविद्यालय, राजनीति शास्त्र विभाग, इ० वि० वि०, पन्त सस्थान इलाहाबाद, केन्द्रीय राजकीय पुस्तकालय इलाहाबाद, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी काशी विद्यापीठ वाराणसी के पुस्तकालयाध्यक्षो के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करती हूॅ जिनके अपार सहयोग से मै कार्य पूर्ण करने मे समर्थ हुई।

मैं अपने शुभ चिन्तको व स्नेही स्वजनो एव मित्रो के प्रति भी अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होने शोध कार्य के विभिन्न चरणो मे मेरी पूर्ण सहायता की।

अत में मैं अपने आदरणीय सास-श्वसुर, माता-पिता, अग्रजो तथा विशेष रूप से अपने पति श्री धर्मेश त्रिवेदी एव नन्हे बेटे 'अश' (जिसने बाल सुलभ चचलता को कम करके मुझे सहयोग प्रदान किया) की आभारी हूॅ जिनके पूर्ण सहयोग के कारण ही मै यह विस्तृत शोध को पूर्णता तक पहुॅचा पाई हूॅ। सतक-सतत उत्साह प्रदान करने वाले अपने जीवन साथी के प्रेरणादायक सहयोग को मैं कभी भुला नहीं सकती हूँ। इन समस्त अनुकूल परिस्थितियो का निर्माण ईश्वरीय अनुकम्पा से ही हुआ है अत: ईश्वर को मैं शत-शत नमन करती हूँ।

दिनांक

शोधकर्ता

श्रीमती रजनी त्रिवेदी

राजनीति विज्ञान विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

अध्याय—1

उन्नीसवी शताब्दी में भारत की सामाजिक तथा राजनीतिक दशा

कोई भी विचारधारा, ज्ञान व दर्शन अपनी परिस्थितियो से जन्म लेता है। कोई भी विचारक, दार्शनिक, अपने विचारो की धारा को और अधिक पैना करने के लिए अपने समय के वातालरण को ही आधार बनाता है। क्योकि कोई विद्धान या महान् हस्ती अपने समय से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता, तथा वह ऑख मूद कर होने वाले अत्याचार को भी नही देख सकता है। एक समय ऐसा आता ही है कि वह सोये हुए समाज को जागृत करने के लिए उठ खडा होता है, तथा नेतृत्व प्रदान करने लगता है। इसके अतिरिक्त कोई भी महान् व्यक्ति कभी भी अपने अनुयायीयो को अधर पर नही छोडता है। वह तब तक जन समुदाय के साथ रहता है जबतक वह अपन लक्ष्य को पूर्ण रूप से प्राप्त न कर ले। इन बातो को लिखने के पीछे हमारा उद्देश्य यह है कि हम यह बताये और जानने का प्रयत्न करे कि 19वी शताब्दी मे ऐसी कौन सी परिस्थितियो इस देश मे थी जिनसे प्रेरित होकर देश के दो महान् सपूत जन जागरण हेतु उठ खडे हुए और उन्होने ऐसा नेतृत्व दिया जिससे शक्तिशाली अग्रेज जिन के विषय मे कहावत प्रचलित थी कि '**इनका सूर्य कभी भी अस्त नहीं होता**' भी लोहा मान गये तथा मजबूर हुए कि उनके साथ मिलकर देश के सुधार कार्यक्रम मे हिस्सा ले। अन्तत देश छोडने तक की सोचने लगे और देश से पलायित भी हो गये। अन्त मे इन्ही महान् हस्तियो के अथक प्रयास से देश स्वाधीन भी हो गया। 'अब अपना आसमान था, अपनी जमी थी।'

19वी शताब्दी की परिस्थितियो से परिचित होने के लिए हमने इस अध्याय मे सक्षिप्त रूप मे उन्नीसवी सदी की राजनीतिक, सामाजिक दशाओ का वर्णन किया है। जिसके सहयोग से यह जानने मे हमे सुविधा होगी कि किन विपरीत परिस्थितियो के होने पर भी हमारे देश के नेताओं ने अपने कुशल नेतृत्व से देश को फिर से उस महान् इतिहास मे स्थान दिलाया जिसका पात्र भारत सदा से ही रहा है।

भारतीय इतिहास में उन्नीसवी शताब्दी को अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है क्योकि यह समय जबर्दस्त बौद्धिक और सास्कृतिक उथल पुथल का समय था। आधुनिक पश्चिमी सस्कृति का प्रभाव और विदेशी शक्ति द्वारा पराजित होने की चेतना के चलते लोगो में नई जागृति पैदा हुयी। जनता में इस बात का अहसास हो चुका था कि भारतीय सामाजिक ढाचे और सास्कृतिक दुर्बलताओ की वजह से मुट्ठी भर विदेशियो ने भारत को उपनिवेश मे बदल दिया है। मानवतावाद से विवेक पर आधारित सिद्धान्तो और आधुनिक विज्ञान ने उन्हे खास तौर से प्रभावित किया। क्योकि इस बात पर लोगो मे मतवैभिन्य था कि सुधार के लिए किस मार्ग का चयन किया जाय। लेकिन इस सदी के सभी बुद्धिजीवी इस विश्वास के थे कि सामाजिक और धार्मिक सुधारो की तत्काल आवश्यकता है।

भारत मे आधुनिकता के आगमन के लिए हमे सर्वप्रथम उन उत्तरदायी परिस्थितियो का सर्वेक्षण करना आवश्यक है जिसके आधार पर एक नवीन पृष्ठभूमि तैयार हुयी। जैसा कि सर्वविदित है इस समय देश मे एक केन्द्रीय सत्ता का अभाव था। औरगजेब की मृत्यु ने सम्पूर्ण देश मे अव्यवस्था तथा अराजकता का बोल बाला हो गया। जिससे साकेतिक रूप से ही सही परन्तु देश मे मुगल सत्ता के रूप में स्थापित एकता की भावना को समाप्त कर दिया। इसी समय यूपोप मे औद्योगिक विवाद तथा व्यवसायिक क्रान्ति से लाभान्वित तथा नए वैज्ञानिक साधनो एव ज्ञान से सुसज्जित अग्रेज जाति ने साम्राज्यवाद हेतु न केवल भारत मे बल्कि समस्त एशियाई देशो की ओर मुख किया और उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक भारत में अर्द्ध साम्राज्य विस्तारवादी स्वप्नो को साकार कर लिया। भारत जो कि सोने की चिडिया कहा जाता था, जो सदा ही विदेशियो को आकर्षित करता रहा है इस लक्ष्य का प्रधान केन्द्र बन गया। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षो तक एशियाई देशो मे सर्वत्र आर्थिक अध:पतन तथा थोडे से अपवादो को छोडकर अन्यत्र राजनीतिक जर्जरता सामाजिक गतिहीनता तथा सास्कृतिक सडॉध के दृश्य दिखायी देने लगे। विश्व के इतिहास मे एशिया की गणना अधीन कोटि मे होने लगी।[1]

1 वी० पी० वर्मा आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता हास्पिटल रोड आगरा-3, 1971 पृ० 1

सम्पूर्ण देश मे अव्यवस्था और अनाचार एव रक्तपात का वातावरण बना हुआ था भारत के विभिन्न प्रान्त के लोग एक दूसरे को विदेशी समझते थे। बगाली, हिन्दुस्तानी, सिक्ख, राजपूत व मराठा के लोग आपस में ही शत्रुता का व्यवहार रखते थे। वह एक दूसरे के प्रति प्रतिशोध से ग्रसित ते। इस सन्दर्भमें ओ मेली ने कहा ''जिनकी अपनी एक सम्मिलित भाषा नहीं जो सामाजिक और राजनीतिक तौर पर खण्डों में विभाजित थे ऐसी स्थिति मे समस्त भारतीय जनता की राजनीतिक एकता का प्रश्न ही नहीं था।'' लोग सामाजिक और आर्थिक तौर पर भी एक नहीं थे।[1]

ब्रिटिश भारत मे अग्रेजों ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था के साथ-साथ धार्मिक व्यवस्था को भी झकझोर दिया था। उन्होंने येन केन प्रकारेण भारत मे हिन्दू धर्म का विनाश कर, ईसाई धर्म का प्रचार प्रसार करना अपना ध्येय समझा। क्योकि ऐसा इसलिए था कि तत्कालीन समाज मे धर्म एक ऐसा सूत्र था जो विभिन्न गतिविधियों को निर्देशित व मर्यादित करता था। धर्म तथा समाज के मध्य मत विभाजन कर सकना कठिन था। इसके परिपेक्ष्य मे डॉ० ताराचन्द के ये विचार प्रासगिक है कि ''सम्पूर्ण भारत पर भयकर कफन सा पडा हुआ था, जिसके नीचे जनता के विभिन्न वर्ग ठंढे पर गये थे और जन समाज का दम घुट रहा था। मुस्लिम और हिन्दू नरेशो को अलग-अलग कर दिया गया था, जिन मुस्लिम और हिन्दू परिवारो, कबीलो और जातियो ने सैनिक प्रशासन और नेता प्रदान किये वे उन्हे उत्तरदायित्वपूर्ण पदो से वचित करके परजीवियो के रूप मे निकृष्ट जीवन बिताने के लिए छोड़ दिया गया था।''[2] लगातार अव्यवस्था, हिसा, लूट व विदेशी आक्रान्तओं ने भारतीयो को पस्त कर दिया था। जिसके कारण उनमें राजनीतिक परिवर्तन एव राजनीतिक चेतना के प्रति उदासीनता के भाव उत्पन्न हो गये थे। उनका ध्यान स्वराज्य स्वशासन की ओर से पूजा पाठ व सामाजिक उधेड बुन के प्रति अधिक केन्द्रित होता चला गया।

---

1 ओ० मेली मार्डन इण्डिया एण्ड दि वेस्ट पृ०-135

2 डॉ० ताराचन्द . भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, मन्नमथनाथ गुप्त, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार नई दिल्ली-1972-पृ० 15

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था जो कि पूर्ण रूपेण कुठित एव पतोन्मुखी हो चुकी थी। प्राचीन भारतीय वैदिक सामाजिक व्यवस्था एव मूल्यों का पूर्ण रूपेण लोप हो गया था। यद्यपि कि यह कार्य मध्यकालीन भारत में मुगलो के शासन से ही प्रारम्भ हो चुका था। तथापि उन्नीसवी सदी तक पहुॅचते-पहुॅचते भारत की सामाजिक व्यवस्था तमाम बुराइयो से ग्रसित हो चुकी थी। इन बुराइयो को सामाजिक स्तर पर फैलाये गये अन्ध विश्वासो से अर्जा मिलती थी वहीं दूसरी तरफ शासक वर्ग की उदासीनता इनके फलने फूलने मे सहायक सूत्र रहा। ब्रिटिश भारत में भारत की सामाजिक अवस्था पूर्ण रूपेण पतन के गति में जा चुकी थी।[1] इन परिस्थितियो का अग्रेजो ने पूरा लाभ उठाया और सामाजिक ढॉचे को ध्वस्त कर दिया। मार्क्स के विचार से इस स्थिति को और स्पष्ट तरीके से समझा जा सकता है : "हिन्दुस्तान मे कितनी ही बार गृह युद्ध छिडे, विदेशी आक्रमण हुए, क्रान्तियॉ हुयी, विदेशियो ने बार-बार देश को जीता, आकाल पडे, लेकिन ये घटनाए भले ही सतही तौर पर आश्चर्य जनक रूप से जटिल लगे और बडी ही तेजी से घटित होने वाली तथा विनाशकारी लगे लेकिन वे सतह से ज्यादा नीचे तक प्रभावित नही कर पाती थी। इग्लैण्ड ने भारतीय समाज के सम्पूर्ण ढॉचे को तोड दिया है और उसके पुर्ननिर्माण के अभी तक कोई आसार दिखायी नही पडते है। पुरानी दुनिया का इस तरह उजड जाना और नई दुनिया का कही पर पता न चलना, हिन्दुस्तानियो के वर्तमान दुःख दर्द के साथ एक खास तरह का विषाद जोड देता है, तथा ब्रिटिश शासित हिन्दुस्तान को अपनी समस्त प्राचीन परम्पराओ तथा उसके सम्पूर्ण विगत इतिहास से काट देता है।"[2]

भारतीय जीवन मे समाज तथा धर्म की इस घनिष्ठता ने सामाजिक स्तर पर फैले अन्ध-विश्वासो, कुप्रथाओ, कुरीतियो तथा पाखण्डो तथा बाह्य आडम्बरो को धार्मिक सस्तुति दे दी। कोई

---

1 रजनी पाम दत्त आज का भारत, अनुवादक, आनन्द स्वरूप वर्मा, द मैकामिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, प्रथम हिन्दी सस्करण, 1977 पृ० 116

2 रजनी पाम दत्त वही, पृ० 116

भी प्रथा चाहे कितनी ही घृणित साधारण, एव विकृत क्यो न रही हो वह किसी न किसी धार्मिक सिद्धान्त पर टिकी हुयी थी। इसलिए रूढ़ियो भी उतनी ही पवित्र हो गयी थी, जितना की धर्म।[1]

19वी शताब्दी की सामाजिक स्थिति पर दृष्टिपात करने पर सबसे पहले हमारा ध्यान समाज मे स्त्रियो की दयनीय दशा पर जाता है। स्त्रिया सबसे अधिक कष्टमय स्थिति मे थी। शिक्षा, स्वास्थ तथा सामाजिक स्थिति एव स्वतत्रता की दृष्टि से देश की नारी इस समय पतन के सबसे निकृष्ट रूप मे थी। के० सी० व्यास के शब्दो मे ''भारत की नारिया नरक का सा जीवन व्यतीत कर रही थी, नारी को भारत में कोई सामाजिक अधिकार प्राप्त नही थे, शिक्षा व नवीन चेतना का कोई प्रश्न नही था।''[2] देसाई के अनुसार ''भारतीय नारी सती और बाल हत्या जैसे बर्बर क्रूर प्रथाओ का शिकार थी।''[3]

पति के मरने पर पति की चिता पर जलकर भस्म हो जाना यह सती प्रथा धार्मिक रूप मे महत्वपूर्ण समझा जाता था। प्राचीन काल मे सती होने के पीछे कोई धार्मिक कारण नही था। कील के अनुसार, ''ऋग्वेद मे जिस प्रकार जीवन के सुख, आनन्द, एव भक्ति का बयान किया गया है उससे स्पष्ट होता है कि इस काल मे सती प्रथा नही थी। इस प्रकार धार्मिक हत्या का उल्लेख नही मिलता है। मनु स्मृति भी इस सम्बन्ध मे मौन है। महाभारत मे कुछ विधवाओ के सती होने के सन्दर्भ मिलते है। विराट पर्व में सौरान्ध्री के सती होने का उल्लेख है मौसला पर्व मे वासुदेव की मृत्यु होने पर उनकी चार पत्नियॉ देवकी, भद्र, रोहिणी और मदिरा के सती होने का सकेत है।[4] रामायण मे भी सती होने का कोई उदाहरण नही मिलता। प्राचीन काल मे सती होने के पीछे धार्मिक कारण न होकर पवित्रता एवं शौर्य की भावनाए प्रमुख थी।

---

1 एब्रे० जे० दुबाय हिन्दू मैनर्स, कस्ट्मस एण्ड सेरेमोनीज, एच० क० न्यूकम्प द्वारा सम्पादित, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, तृतीय सस्कर, 1968 पृ० 31

2 के० सी व्यास द सोशल रिनेसा इन इण्डिया, बोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स, प्रा० लि० बाम्बे 1957 पृ० 31

3 ए० आर० देसाई भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, द मर्कमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लि०, 1976 पृ० 219

4 उपेन्द्र नाथ ठाकुर द हिस्ट्री ऑफ सोसाइड इन इण्डिया, पृ० 126 127

मध्यकाल मे जन अविवेकपूर्ण सामाजिक पाखण्ड तथा पुरोहित पतिव्रता धर्म पर होने लगी जब हिन्दू धर्म का आधार तार्किक ज्ञान नही रह गया तो सती की धारणा को धार्मिकता का रूप देकर व्यापक बना दिया गया यह धारणा प्रबल हो गयी कि सती हो जाने से उसके पति के पाप नष्ट हो जाते है वह स्वर्ग में अपनी पत्नी के साथ आनन्द व सुख से रहेगा लोगो मे यह धारणा घर कर गयी धर्म ने विधवा के लिए सती होने का ही मार्ग बताया।[1]

उन्नीसवी शताब्दी तक आते-आते यह अमानुषिक सती प्रथा मुख्य रूप से बगाल मे उच्च शिखर पर पहुच चुकी थी। विधवाओ को मृत पति के साथ ही बलात् चिता मे झोक दिया जाता था और जब तक वे जलकर भस्म नही हो जाती थी तब तक उन्हे बास के लट्ठे से दबाया रखा जाता था। अनेक विधवाए वैधव्य जीवन की यातनाओ के स्मरण मात्र होने से ही सती होने के लिए तैयार हो जाती थी।[2] विधवाओ के सिर का बाल मुडवा दिया जाता था जिससे वे केश विन्यास न कर सके, क्योकि यदि विधवाए केश विन्यास करती है या बालो आदि मे गाठ लगाती है तो परलोक मे उसका पति भी बधनो मे बध जाएगा।[3]

एक तरफ सती प्रथा दूसरी तरफ विधवाओ का पुर्नविवाह धर्म के विरुद्ध माना जाता था। अत: यह भय बना रहता था कि विधवा स्त्री पुन. विवाह न कर ले जिसके कारण कुल कलकित हो या उसके चरित्र पर ही लान्छन लगे। अपने ऐसे दु:खमय भविष्य की कल्पना करने वाली भावुक महिलाये सती होने के लिए प्रेरित होती थी। इस प्रथा के पीछे आर्थिक कारण भी था। बगाल मे दायभाग के प्रचलन से पुत्रहीन विधवा का सयुक्त परिवार की सम्पत्ति मे वही अधिकार हो गया था

---

1 उपन्द्र नाथ ठाकुर द हिस्ट्री ऑफ सोसाइड इन इण्डिया-पृ० 128

2 एन० ज० दुबाय हिन्दू मनर्स कस्टम एण्ड सरमनीज, एच० क० व्यूकम्प द्वारा सम्पादित, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, तृतीय सस्करण, 1968, पृ० 361

3 एस० नटराज शिरसो वय नत्स्यत् काय विधवया तथा विधवा कवरीबन्धा मातृवन्वाय जायन। ए सेन्चुरी ऑफ सोशल रिफाम इन इण्डिया, एशिया पब्लिशिग हाउस, वम्बई, 1962 पृ० 171

जो उसके पति का होता था। परिवार की सम्पत्ति पर अधिक लोगो का हिस्सा न हो इसके लिए यह उचित समझा गया कि विधवा को मृत पति के साथ प्राण त्याग के लिए प्रेरित कर दिया जाए या उसे बलात् अग्नि शिखाओ को अर्पित कर दिया जाय।[1] अकाल के कारण निर्धनता की चरम सीमा न केवल बगाल मे पहुँच गयी वरन् सम्पूर्ण भारत भी इसके प्रभाव मे आ गया। ऐसी स्थिति में विधवा पुर्नविवाह द्वारा जनसख्या क ाबढना घातक समझा गया। निर्धनता अकाल व जनसख्या की दृष्टि से विधवाये परिवार मे सबसे बड़ा बोझ थी। इसके अलावा सबसे दु:खद पहलू तो यह था न सिर्फ पति के घर से वरन् अपने माता-पिता के घर से भी उनको किसी भी प्रकार का संरक्षण प्राप्त नही था। ऐसी स्थिति मे विधवाओ को जला देना आर्थिक विवशता ही समझी जा सकती है।

उन्नीसवी शताब्दी मे बाल विवाह जैसी प्रथा ने भारतीय सामाजिक दशा को दूषित कर रखा था। बाल विवाह इस समय समाज मे घुन की तरह काम कर रहा था।[2] इसके प्रचलित होने के कई कारण थे। जिसमे से पहला धार्मिक रूढिवाद विभिन्न धार्मिक ग्रन्थो मे इस बात पर बल दिया गया था कि रजोवृत्ति से पूर्व ही कन्या का विवाह हो जाना चाहिए अन्यथा उनके माता-पिता पाप के भागी बनेगे। इसके अतिरिक्त राजनीतिक परिस्थितिया भी उत्तरादायी थी। मध्य युग मे विदेशी आक्रमण तथा उनका शासन स्थापित होने पर देश की तत्कालीन स्थिति बडी ही अनिश्चित और असुरक्षित हो गयी थी। कन्याओ को मुस्लिम आक्रान्ताओ के हाथो मे पडने से बचाने का यही मात्र एक उपाय था कि छोटी उम्र मे ही उनका विवाह कर दिया जाय। इसके अतिरिक्त दहेज की रूढि से निपटने हेतु कम उम्र मे विवाह करना ज्यादा अच्छा था क्योकि तब दहेज का प्रश्न इतनी कठिनाई पैदा नही करता था। अत: इसके कारण अब समाज मे केवल रजोवृत्ति से पूर्व बल्कि आठ से दस वर्ष की आयु मे ही विवाह करना आवश्यक समझा जाने लगा।[3]

---

1 एब० जे० दुबाय हिन्दू मेनर्स कस्टम एण्ड सेरेमनीज, पृ० 362

2 उपेन्द्र नाथ ठाकुर द हिस्ट्री ऑफ सोसाइड इन इण्डिया पृ० 171

3 हरिदत्त वेदालकार हिन्दू विवाह का सक्षिप्त इतिहास-पृ० 306

सयुक्त परिवार की प्रणाली ने भी बाल विवाह को काफी प्रोत्साहित किया क्योकि विवाह के द्वारा उत्पन्न समस्त उत्तरदायित्व विवाह करने वाले लडके पर नही वरन् उसके सयुक्त परिवार पर था।[1]

सती प्रथा जिसके कारण माता एव पिता दोनो ही काल कलवित हो जाते थे ऐसी स्थिति मे बच्चो के देखभाल की समस्या गम्भीर हो जाती थी। एव बाल विवाह द्वारा दायित्वो से बचा जाता था। इन बाल विवाहों से अनेको दुष्परिणाम होते थे। जैसे—स्वास्थ मे गिरावट, रूग्ण सन्तान शिक्षा प्राप्ति मे बाधा, बचपन मे ही बालिकाओ का माँ बनना एव प्रसव से ही उनकी मृत्यु हो जाना आम बात थी। अत: इन सामाजिक विकारो से समाज अत: पतन की ओर अग्रसर होता चला गया।

हिन्दू समाज के ये विचार अपने चरम रूप मे उन्नीसवी शताब्दी मे दृष्टिगोचर होते है। ऐसा नही था कि समय-समय पर इनको रोकने का प्रयत्न नही किया गया। मुगल सम्राट अकबर और जहॉगीर ने इसे दिल्ली के आस-पास के स्थानो पर बन्द करा दिया था। लेकिन जहॉ हिन्दुओं ने रक्त की शुद्धता बनाए रखने के लिए बाल विवाह जैसे अमानुषिक प्रथा प्रचलित की' वहॉ दूसरी ओर विधवा विवाह पर कठोर प्रतिबन्ध की प्रथा भी प्रचलित थी। जिससे इस प्रथा पर पूर्ण प्रतिबन्ध कभी नही लगाया जा सका।[2]

ऐसा नही था कि प्राचीन वैदिक युग से ही यह नियम चले आ रहे है। ''वैदिक युग मे नियोग की प्रथा के प्रचलन से स्पष्ट होता है कि उस समय विधवा विवाह होते थे। उन पर प्रतिबन्ध नही था। नियोग प्रथा से तात्पर्य विधवा स्त्री पुत्र प्राप्ति की इच्छा से अपने देवर के साथ या देवर न हो तो सगोत्र या सजातीय पुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकती थी पति के असाध्य रोगी होने पर या

---

1 ए० एस० अतेतकर पोजीशन ऑफ वोमेन इन हिन्दू मिविलाइजशन वाराणसी 1956 पृ० 61

2 क० मी० व्यास द साशल रिनसा इन इण्डिया व्यारा एण्ड कम्पनी पब्लिशस प्रा० लि० बम्बई, 1957, पृ० 48

नपुसक हडुने पर भी स्त्री पुत्र प्राप्ति के लिए नियोग कर सकती थी।[1] परन्तु शनैः-शनैः इस प्रथा मे कमी आने लगी। समाज मे विधवा विवाह के पीछे अन्ध विश्वास की भावना काम करने लगी जिन विधवा स्त्री के बच्चे जीवित रहते थे, वे विवाह नही करती थी। विधवा का जीवन ही व्यतीत करती थी। कुछ स्त्रिया अपने पति से आगाध प्रेम, श्रद्धा के कारण अकेले ही जीवन काटना पसन्द करती थी। पुराण मे तो यहॉ तक लिखा है कि कलयुग मे विधवा विवाह नही होना चाहिए। पी० वी० काणे के अनुसार, ''विधवा अमगल की सूचक थी। वह किसी भी उत्सव मे यथा विवाह मे किसी भी प्रकार से भाग नही ले सकती थी। उसे न केवल पूर्ण रूप से साधवी रहना पडता था चाहे वो बाल विधवा ही क्यो न हो उसका जीवन सन्यासी सदृश्य रहता था। कम भोजन, कम वस्त्र धारण करना पडता था उसको सम्पत्ति का अधिकार भी कुछ नही था।''[2]

मनु ने विधवा के पुर्नविवाह का विरोध किया है उसके अनुसार सदाचारी नारियो के लिए दूसरे पति की घोषणा कही नहीं हुयी है।[3] उन्नीसवी शताब्दी की एक कुप्रथा बहुविवाह ने भी नारी की दशा को शोचनीय बना दिया था।[4] यह प्रथा मुस्लिम धर्म मे तो थी ही हिन्दुओ मे भी पूर्ण रूप से व्याप्त हो गयी थी। बगाल मे बहुविवाह प्रथा सबसे अधिक प्रचलित थी। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त तुकाराम की दो पत्निया थी। बगाल के कुलीन वर्ग के लोग बहु विवाह करते थे और बंगाल मे ब्राह्मणो द्वारा भी बहु विवाह किया जाना सम्मान जनक माना जाता था।[5]

---

1 बी० एन० लूनिया प्राचीन भारतीय सस्कृति, पृद 720

2 पी० वी० काणे धर्मशास्त्र का इतिहास, हिन्दी समिति सूचना विभाग उ० प्र० लखनऊ पृ० 331

3 पी० वी० काणे, वही, पृ० 344

4 हरिदत्त वदालकार हिन्दू विवाह का सक्षिप्त इतिहास पृ० 348

5 एम० ए० बुश राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन लिबरलिज्म फाम राममोहन राय टू गोखले, बडोदा 1938 पृ० 53

स्त्रियो की प्रगति की एक बहुत बडी बाधा पर्दा प्रथा भी इसी शताब्दी की देन है। पर्दा प्रथा का प्रचलन पूर्ण रूपेण समाज में व्याप्त था। प्राचीन काल मे जो पर्दा आवश्यतानुसार या परिस्थिति वश ही रहता था वही पर्दा अब सदा रहने लगा।[1] इस सम्बन्ध मे मेगस्थनीज का कहना है कि ''कोई स्त्री पर्दा नही करती थी, शाही परिवार की स्त्रिया पुरुषो के समान ही स्वतन्त्रता पूर्वक घूम फिर सकती थी, वो राजा के साथ हॉथी, घोडो पर चढकर शिकार पर जा सकती थी। भाष के प्रतिमा नाटक के प्रथम अक से भी ज्ञात होता है कि धनी वर्ग की स्त्रियॉ यज्ञ विवाह या वन मे या विपत्ति पडने पर पर्दा नही रखती थी।'' पर्दा प्रथा के प्रचलन के बढे का कारण मुस्लिम आक्रान्ताओ का आना ही था क्योकि ऐसे विदेशी आक्रान्त जो इस धरती पर आते थे वो यहॉ के धन दान्य पशु एव सौन्दर्य के लोभ मे ही आते थे।[2]

बेमेल विवाह उन्नीसवी सदी मे भारतीय समाज मे नारी जाति के ऊपर एक अन्य अन्यायपूर्ण प्रथा थी। जिसने स्त्री जाति को परतन्त्रता के जजीरो मे जकड लिया था। बेमेल विवाह भी कुलीनता का द्योतक था। अवयस्क लडकियो का विवाह अपने से अवस्था मे कई गुना बडे पुरुष के साथ कर देना आम बात थी। पुरूष अपनी पत्नी की मृत्यु अथवा सन्तान न हो जाने की स्थिति मे इस प्रकार का नैतिक दृष्टि से घातक विवाह का कृत्य करते थे। जहॉ इससे पारिवारिक कलह चारित्रिक पतन होता था तथा स्त्रियो के सामाजिक उत्थान मे भी बाधा आती थी। दुबाय ने इस प्रथा के सम्बन्ध मे बडे ही दु:ख के साथ लिखा है, ''मै उन पॉच या छ: वर्ष की अभागिन कन्याओ का उल्लेख यहॉ नहीं करुँगा, जिनका विवाह साठ वर्ष के ऊपर के पुरूष से होता है, तथा अपने युवा अवस्था के पूर्व ही विधवा हो जाती है।[3] सर पी० सी० रे के अनुसार, ''तत्कालीन हिन्दू समाज मे साठ वर्ष की आयु

---

1 एम० ए० बुश वही, पृ० 54

2 एम० जी० उपाध्याय भारतीय मामाजिक क्रान्ति, पृ० 55

3 एबे० जे० दुबाय हिन्दू मैनर्स कस्टम एण्ड सेरेमनीज एच० के० ब्यूकम्प द्वारा सम्पादित आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1968 पृ० 210

का वर बारह अथवा चौदह वर्ष की कन्या के साथ विवाह कर सकता था और यह प्रथा सामान्य थी।"[1] डॉ० रेदित घोष एक तेरह वर्ष की एक ऐसी कन्या का उल्लेख करते है जिसका विवाह कलकत्ता के एक 75 वर्ष की अवस्था वाले धनी, तथा ख्याति प्राप्त व्यक्ति के साथ हुआ था।[2]

तात्कालीन सामाजिक व्यवस्था मे प्रचलित कन्या वध, एक ऐसी कुप्रथा थी जिसके पीछे कोई धार्मिक कारण नही वरन् इसमें आर्विभाव के पीछे कुछ सामाजिक कारण थे। जहॉ तक इसके प्रचलन का प्रश्न है तो यह उत्तर प्रदेश, राजस्था, गुजरात, पजाब आदि मे प्रचलित था। इस कुप्रथा से राजपूत जातिया ज्यादा प्रबावित थी इसके पीछे विवाह की मजबूरिया जो कुल परम्परा के अनुसार ही हो सकती थी। हिन्दू धर्म मे मोक्ष की कल्पना जो की पुत्र प्राप्ति से ही सभव थी तथा वश के निरन्तरता के लिए पुत्र का जन्म आवश्यक था। टॉड के अनुसार "पुत्री का जन्म राजपूत पारिवारो के लिए एक दुखद घटना थी।[3] इससे स्त्री जाति से सम्बन्धित उक्त समस्याओ के समाधान के लिए कन्या वध जैसे कुप्रथाओ का प्रचलन हुआ था 1853 की रिपोर्ट के अनुसार यह प्रथा सभी जातियो मे प्रचलित थी।[4] मालवा तथा राजपूताना मे प्रति वर्ष 20,000 कन्याओ का वध होता था।[5] बडौदा के निकट झरिया राजपूतो मे यह प्रथा अत्यधिक प्रचलित थी।[6]

जहॉ एक ओर हिन्दूओ मे कतिपय सामाजिक कुरीतया थी वही मुसलमानो मे 'जनाना'व्यवस्था थी। 'जनाना' के सम्बन्ध मे पी० सी० राय ने लिखा है कि "यह एक जीवन पर्यन्त

---

1 सर पी० सी० रे० यूनिवर्सिटी कालेज ऑफ साइस एण्ड टेक्नालोजी कलकत्ता भाग 6 पृ० 225

2 डॉ० रदित घोष, चाइल्ड मरिज द इण्डियन माइनेटर, पृ० 30

3 टॉड, एन्नलस एण्ड सन्टीक्यूरस ऑफ राजस्थान, भाग प्रथम पृ० 505

4 ब्राउन, जेन्सी इण्डियन इन फैन्टीसाइड इट्स ओरीजन एण्ड सप्रेमन लदन पृ० 108 मे 129

5 ब्राउन वही, पृ० स० 58

6 वही, पृ० 31

कारागार है जहॉ स्त्री असहाय अवस्था मे अस्वस्थ जीवन व्यतीत करती है। फलस्वरूप उसकी स्वाभाविक इच्छाओ एव क्षमताओ का अज्ञानता के कारण दमन हो जात है। अंधविश्वासो मे जलती हुई वह समाज के इस प्रथा के समक्ष शहीद हो जाती है।[1] फर्कुहर ने लिखा है कि—''उन प्रान्तो के उच्चवर्गीय हिन्दुओ ने जहॉ पर मुसलमान बहुसख्यक एव शक्तिशाली थे ''जनाना'' व्यवस्था को अपना लिया।''[2]

उन्नीसवी शताब्दी मे वेश्यावृत्ति नारी समाज पर किए जाने वाले इन्ही अत्याचारों का परिणाम थी। अमानवीय व्यवहार से पीडित महिलाए वेश्यावृत्ति मे सलग्न हो जाती थी। हिन्दू समाज मे मध्ययुग तथा उसके पूर्व भी वेश्यओ का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद काल मे भी ऐसी स्त्रियॉ थी जो सभी की थी उन्हें वेश्या या गणिका कहा जाता था। ऋग्वेद मे एक जगह कहा गया है कि मरूतगण विद्युत के साथ उसी प्रकार सयुक्त माने गए है जिस प्रकार युवती वेश्या से पुरुष लोग सयुक्त होते है।[3] मध्ययुग मे भी वेश्यावृत्ति का प्रचलन था। मुगलकाल मे वेश्याओ की सख्या तथा उनकी मांग इतनी अधिक बढ गयी थी कि सम्राट अकबर को उनके लिए शहर से दूर तक एक पृथक्क नगर बसाने पर विवश होना पड़ा था। इस नगर का नाम उसने शैतानपुर रखवाया था।[4]

उन्नीसवी शताब्दी मे एक और प्रमुख बुराई थी, स्त्रियो को शिक्षा से वंचित रखना। शिक्षा के अभाव मे नारी अपने अधिकार एवम् स्वतन्त्रता तथा समाज के प्रति अपने दायित्वों से अनभिज्ञ मानव भावनाओ की शिकार थी। यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि जिस भारतीय समाज में वैदिक

---

1 पी० सी० राय, लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सी० आर० दास (1927) पृ० 4

2 फर्कुहर, मार्डन रिलिजियस मूवमेण्ट इन इडिया, पृ० 405

3 पी० वी० काणे धर्मशास्त्र का इतिहास, अनुवादक अर्जुन चाबे काश्यप, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ, पृ० 253

4 उपन्द्र नाथ ठाकुर ए हिस्ट्री ऑफ सोसाइड इन इडिया, पृ० 129

काल मे नारी शिक्षा की एक उच्चतर व्यवस्था थी, मध्य काल एव उन्नीसवी सदीं मे इसका पुर्णतः अभाव पाया जाता है। मध्ययुग मे केवल स्त्रियो को गृह कार्य की जिम्मेदारी सौपी गयी थी। उन्नीसवी सदी के पूर्व स्त्री शिक्षा के बारे मे यह अन्ध विश्वास भी कार्य कर रहा था कि जो बालिका शिक्षा प्राप्त करेगी उसका पति विवाहोपरान्त शीघ्र ही मर जायेगा, अर्थात् वह विधवा हो जाएगी।[1]

बालिका को शिक्षा से वचित रखे जाने के कई कारण थे। प्रमुख कारण बाल विवाह माना जा सकता है। बाल विवाह के कारण उन्हे शिक्षा प्राप्त करने का अवसर ही नही मिल पाता था। पर्दा प्रथा का प्रचलन भी नारी शिक्षा के मार्ग मे बहुत बडी बाधा थी। इस शताब्दी मे स्त्री पुरुषो को समान नही समझा जाता था। नाचना-गाना तथा पढने लिखने का कार्य वेश्याओ का समझा जाता था।[2] तत्कालीन समाज मे नारी शिक्षा को हिन्दू धर्मशास्त्रो के अनुदेशो के विरोध मे समझकर हतोत्साहित किया जाता था।[3]

शिक्षा के प्रसार मे बाधा पहुँचाने वाले कई कारण थे। विद्यालयो की सख्या बहुत ही कम थी। उचित वेतनमान के अभाव मे कोई व्यक्ति शिक्षक बनने के लिए उत्सुक नही रहता था। बगाल एव बिहार मे वर्नाकूलर शिक्षको का वेतन तीन रूपये प्रति माह था, जो कि कलकत्ते के किसी घरेलू नौकर के पारिश्रमिक का आधा भी नही था तथा छात्र उनके नैतिक व्यक्तित्व से प्रभावित नही होते थे। वर्नाकूलर भाषाओ मे प्रकाशित पुस्तको का अभाव था।[4] उस समय मिशनरियो के द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध अपने हाथ मे ले लिया गया था किन्तु उच्च कुल के लोग मिशन द्वारा चलाए गए स्कूलो मे

---

1 एस० नटराजन ए सेन्चुरी ऑफ सोशल रिफार्म इन इण्डिया 1962 प० 178

2 ए० एम० अततकर पाजीशन ऑफ वोमेन इन हिन्दू सिविलाइजशन पृ० 24

3 आर० सी० मजूमदार ग्लिम्पसेज ऑफ बगाल इन नाइन्टीन्थ सेन्चुरी फर्मा के० एल० मुखोपाध्याय, कलकत्ता 1960, पृ० 92

4 आर० सी० मजूमदार वही पृ० 92

अपने बालिकाओं को नही भेजते थे क्योकि ईसाई नियमो का उद्देश्य धार्मिक अधिक था।[1] विद्यालयो मे पाठ्यक्रम बहुत ही निम्नस्तर का था। यह पाठ्यक्रम शैक्षणिक दृष्टि से कम तथा साहित्यक दृष्टि से अधिक था। पुस्तको मे महाकाव्यो की कहानिया तथा देवी देवताओ की महत्ता का गुणगान रहता था।

भारतीय शिक्षा जो कुछ पुराणो मे लिखा था, अथवा बाप दादाओ से, अतिरजित कथाओं के रूप मे जो कुछ सुनने को मिल जाता था वही तक सीमित था। इसके विपरीत, पाश्चत्य शिक्षा वैज्ञानिक वस्तुपरक, आलोचनात्मक बौद्धिक तथा युक्ति सगत प्रक्रियाओ से परिपूर्ण थी। इसके अलावा भारत मे शिक्षा कुछ चन्द वर्गो तक का विशेष हित समझी जाती थी। भारत मे अग्रेजी भाषा का आकर्षण बढ रहा था, वे लोग जो अग्रेजी भाषा के टूटे-फूटे शब्दो का उच्चारण कर लेते थे, समाज मे प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते थे।[2]

उन्नीसवी शताब्दी में भारतीय समाज की अवनति का मुख्य कारण जाति प्रथा थी। जाति प्रथा ने भारतीय समाज को कई भागो मे विभाजित कर दिया था। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा और वर्ण व्यवस्था हिन्दू सामाजिक सगठन के दो प्रधान स्तम्भ थे। वर्ग भेद के अन्तर्गत असख्य जातियॉ और उपजातियो के विभाजन के कारण भारतवासियो को सगठित होने मे बडी कठिनाई का सामना करना पड रहा था। एक ही जाति के अन्दर अनेक उपजातियॉ एक दूसरे से अपने को श्रेष्ठ भावना से प्रेरित थी। बगाल तथा दक्षिण मे अस्पृश्यता की भावना देश के अन्य भागो की अपेक्षा कही अधिक क्रूर तथा कठोर थी। दक्षिण भारत मे विशेषकर मलयालम मे निम्न वर्ग की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। यदि कोई शूद्र धृष्टता पूर्वक किसी ब्राह्मण के घर मे प्रवेश कर जाता था तो उसी स्थान पर शूद्र की

---

1 आर० सी० मजूमदार वही, पृ० 61-62

2 डॉ० ताराचन्द भारतीय स्वतनत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ० 159

हत्या की जा सकती थी। इन्हे उच्च जाति के लोगों के बीच अस्पृश्य समझा जाता था यह छूने के योग्य नही थे।[1]

भारतीय वर्ण व्यवस्था जो वैदिक काल मे कर्म पर आधारित थी एवम् एक खुली व्यवस्था थी। उन्नीसवी सदी के आते-आते कर्म पर आधारित न होकर जन्म पर आधारित हो गई थी एवम् एक बन्द व्यवस्था का रूप धारण कर लिया था। अब इसमे प्रवेश के लिए योग्यता एव कर्म का कोई स्थान नही रह गया था। अस्पृश्यता के पीछे जो भावना काम कर रही थी उसको स्पष्ट करते हुये काणे ने लिखा है कि "प्राचीन भारत मे अस्पृश्यता सम्बन्धी जो विधान बने थे वे किसी जाति सम्बन्धी विद्वेष के प्रतिफल नहीं थे उनके पीछे मनोवैज्ञानिक या धार्मिक धारणाए एवम् स्वस्थतत: सम्बन्धी विचार जो कि मोक्ष के लिए आवश्यक माने जाते थे क्योकि मोक्ष के लिए शरीर व मन पवित्र होना अनिवार्य था।[2]

भारतीय धर्म ग्रन्थो मे अछूत के लिए निम्न उद्गम श्रोतो का वर्णन मिलता है जो कि अस्पृश्यता को बढाने से सहायक सिद्ध हुए। (1) कुछ विशेष व्यवसायो से सलग्न लोगो के साथ अछूतो जैसा व्यवहार किया जाता था चाहे वे जन्मत: उच्च जाति के ही क्यो न हो, (2) गैर हिन्दू धार्मिक सम्प्रदायों के मानने वालो को जिन्हे म्लेच्छ कहा जाता था द्वेष भाव के कारण भी अस्पपृश्य मान लिया गया। (3) समाज जिन कर्मो को पाप मानता था उन्हे करने वाले लोगो को जाति बहिष्कृत एव अस्पृश्य समझा जाता था।(4) रजस्वला स्त्री का स्पर्श, शव स्पर्श के बाद भी छुआ छूत मानी जाती थी।[3]

---

1 एम० ए० बुश राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन लिबरलिज्म बडोदा 1938 पृ० 43

2 पी० वी० काणे धर्म शास्त्र का इतिहास, पृ० 168

3 पी० वी० काणे धर्म शास्त्र का इतिहास, पृ० 168

वैदिक वर्ग व्यवस्था में शूद्रो की सामाजिक स्थिति पहले से ही निम्न थी और इस सदी में वे अछूतों की स्थिति में अवस्थित कर दिये गये थे। अर्थात् करेला और उस पर नीम चढा की कहावत चरिथार्थ हो गयी। रही सही कसर हिन्दू धर्माचार्यो, धर्मसूत्रो एवम् स्मृतियों ने शुद्रो के प्रति अनेक नियम बनाके स्थिति को और बिगाड दिया। वे अब शिक्षा, वेदाध्ययन आदि से दूर कर दिए गए। आप-स्तम्भ धर्म सूत्र के अनुसार शूद्र को मार डालने पर उतना ही पाप लगता है जितना कि एक कौवा, गिरगिट, मोर, चक्रवाक, राजहस, मेढक, नेवला, छछूँदर, कुत्ता आदि को मारने से होता है।[1]

छुआछूत के चलते कभी-कभी हिसात्मक स्थिति भी आ जाती थी इसी प्रकार की एक घटना मालाबार में घटित हुयी जिसके विषय मे 'दुबाय' ने बताया "यदि कोई पर्या जाति उच्च जाति के सीढियो मे चढ़ जाता था तो उसी स्थान पर उसकी हत्या कर दिए जाने की अधिकता थी। पर्याओ की बस्तिया पृथक थी, वे अलग मार्गो का प्रयोग करते थे उनके साथ दासो की तरह कठोर एव निर्दयतापूर्वक व्यवहार किये जाते थे। वे जन्म से ही दास थे, तथा अपनी स्वामी की सम्पत्ति के अभिन्न अग जिन्हे अन्य व्यक्तियों के हाथ विक्रय भी कर दिया जाता था। एक जवान पर्या का मूल्य तीन रुपय और सौ सेर चावल था। जो कि एक बैल की कीमत के बराबर था।"[2] इस प्रकार छुआ छूत की भावना के चलते भारतीय समाज मे उच्च वर्ग को निम्न वर्ग पर शासन करने का अधिकार सा मिल गया था। अस्पृश्यता के चलते वे राष्ट्रीय ध्वाज से कट गए तथा अपनी स्थिति से पीछा छुडाने के लिए धर्मान्तरण का सहारा लेने लगे। ईसाई और इस्लाम धर्म की ओर आकर्षित हुए। नाना साहव, भीमराव अम्बेडकर के आने के बाद वे बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित हुए।

हिन्दू धर्म की कट्टरता एव उच्चता की भावना के चलते उच्च जाति के लोग विदेशियों को भी म्लेच्छ समझते ते। उनकी नजरो मे यूरोपीय समाज की खान-पान की एव बात व्यवहार की बाते भी

---

1 आप स्तम्भ धर्म सूत्र 1-9-9-25 तथा 14 तथा 1-9-26-1 (काणे के धमसास्त्र के इतिहास से उद्धत)

2 एबे० जे० दुबाय हिन्दू मैनर्स कस्टम एण्ड सेरेमनीज, एच० के ब्यूकम्प द्वारा सम्पादित, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1968, पृ० 56

अधार्मिक थी फलत. वे कट्टरवादिता के चलते ससार मे होने वाले विकास एव परिवर्तनो से अछूते रह गये। तथा कुॅए के मेढक के समान ही अपने ससार एव स्थिति मे ही सतुष्ट हो गए। जिससे प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो गया।[1]

इस रूढिगत समाज मे एक और घृणित रीति दास प्रथा की थी। इसका लाभ उठाने के उद्देश्य से अग्रेजो ने इसे और पल्लिवत और पुष्पित किया क्योकि उन्हे कृपि दास अपने उपनिवेशो के लिए चाहिए था। द कैम्ब्रिज शार्टर हिस्ट्री ऑफ इण्डिया मे लिखा है दास प्रथा भारतीय समाज मे पूर्व से ही प्रचलित थी। ब्रिटिश शासको ने इस प्रथा को फलने फूलने मे और अधिक सहयोग दिया। दासो का व्यापार किया जाता था तथा ब्रिटिश के अन्य उपनिवेशो मे भारत के दासो को भेजा जाता था।[2] दक्षिण भारत मे परिया एव बेरूमार जन्म से ही दासता की स्थिति मे रहते थे। मालाबार मे दास प्रथा बहुत अधिक थी।[3]

यह अलग बात है कि आज जिन-जिन देशो मे जो कि ब्रिटेन के उपनितेश थे आज इन्ही दासो की सन्ताने जो भारतवंशी है अपनी कडी मेहनत एव लगन के बल पर बहुत समृद्ध हो गये है, तथा अपनी और उस देश विशेप की आर्थिक स्थिति को चला रहे है तथा भारत की भी विदेशी मुद्रा देकर लाभान्वित कर रहे है।

उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वाध तक भारतीयो के लिए विदेश यात्रा निषिद्ध थी। समुद्री यात्रा करना धर्मानुकूल नही माना जाता था।[4] इस तरह के सकुचित विचार से भारतीयो को बहुत हानि हुयी। जहॉ एक ओर कोलम्बस और वास्कोडिगामा जैसे यात्री नए-नए स्थानो को खोज रहे थे वही

---

1 एन० ज० दुब्रा वही, पृ० 74

2 द कम्ब्रिज शार्टर हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ० 721

3 एन० ज० दुब्राय हिन्दू मेनर्स कस्टम एण्ड सेरेमनीज, पृ० 58

4 एम्० नटराजन, ए० सन्चुरी ऑफ साशल रिफाम इन इण्डिया पृ० 5

भारतीय अपने सकीर्ण क्षेत्र मे ही मस्त थे। इससे एक हानि और हुयी विदेश यात्रा के निषेध के कारण ही हम पश्चिमी करण की गति को उतनी तेजी नही दे सके इसके फलस्वरूप भारत मे जिस उदारवादी विचार धारा के मध्यम वर्ग का जन्म हो रहा था उसे गति नही मिल सकी।

भारतीय ब्रिटिश सम्पर्क मे कुछ अच्छी चीजे तो नही ग्रहण कर सके परन्तु मद्यपान जैद्वी बुराइयो को ग्रहण कर लिए और अग्रेजो को इससे राजस्व की प्राप्ति मे लाभ हुआ जिसके चलते वे इसको और प्रभावित करने लगे। अभिजात्य वर्ग के लोग इसको अपनी कुलीनता का प्रतीक मानते थे। भारत मे मद्यपान की गति की तीव्रता का पता 1832 मे ब्रिटिश ससदीय समिति के समक्ष मिस्टर ब्रेकन के इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है। ''अब कलकत्ते मे उन हिन्दुस्तानियो के अन्दर जो शराब पर खर्च कर सकते है तरह-तरह की शराबे बहुत बडी मात्रा मे खपती है -------- मैने कलकत्ते के एक नेटिव दुकानदार से, जो वहा के बडे-बडे खुर्दा फरोशो मे से है, सुना है कि उसके शराब, ब्राण्डी, और बियर के ग्राहकों मे से अधिकाश ग्राहक हिन्दुस्तानी है।[1] अन्य अग्रेजी अधिकारियो ने भी ब्रिटिश ससदीय समिति के समक्ष स्पष्ट वक्तव्य दिया कि यूरोपीयो के ससर्ग से भारतवासियो मे मद्यपान, विलायती ऐशो आराम व अन्य प्रदर्शन हेतु सामान खरीदने की प्रकृति बढती जा रही है।[2] जबकि पूर्व भारतीय समाज मे इसको घृणित स्थान प्राप्त था, तथा शिक्षित लोग इसे पिछडे होने के रूप मे देखते थे। लेकिन इस शताब्दी मे इसका प्रचलन बहुत तीव्रता से हुआ। इस सन्दर्भ मे बगाल की स्थिति का वर्णन एन० एस० बोस ने किया ''व्यक्तिगत एव समूह गत रूप से मादक पदार्थो का सेवन किया जाता था, यहा तक कि इस कार्य के लिए कलकत्ता मे समितियॉ भी थी। रईसो के मध्य थोडी-थोडी आत्मप्रसशा, मिथ्या अहकार, विश्वासघात सामान्य दुर्गुण थे। कर्त्तव्य निष्ठा एव सच्चे व्यक्ति

---

1 प० मुन्दरलाल, भारत मे अग्रेजी राज, 1961 पृ० 578

2 वही, पृष्ठ 579

समाज मे बहुत कम थे।[1] धीरे-धीरे इस कर्म को धार्मिकता से जोड दिया गया तथा अनेक धार्मिक अनुष्ठानो मे इसका प्रयोग होने लगा। अब यह अभिजात्य वर्ग से निम्न तथा मध्यमवर्ग मे भी प्रचलित हो गया जिसमे चलते आर्थिक स्थिति पर फर्क पडने लगा तथा भविष्य चौपट होने लगे।

दहेज जैसी कुप्रथा भी इस शताब्दी तक भारतीय समाज मे अपनी जडे जमा चुकी थी। आधुनिक शिक्षा के साथ ही साथ दहेज बढता गया।[2] अनेक माता-पिता अपनी पुत्री के विवाह मे इतने अधिक ऋणग्रस्त हो जाते थे कि उन्हे अपना शेष जीवन ऋणी या बधक व्यक्ति के रूप मे व्यतीत करना पडता था। क्योकि वे उसका भुगतान नही कर पाते थे।[3] प्रचीन समय मे दहेज का प्रचलन नही था। पिता अपनी क्षमतानुसार अपनी पुत्री को उसके नव जीवन की सफलता की कामना करते हुए तथा उसके गृहस्थ जीवन मे सहयोग देने के उद्देश्य से उसे धन धान्य एव गृहस्थ जीवन से जुडी हुए वस्तुए प्रदान करता था। इसमे कोई माग नही होती थी। अर्थात् यथाशक्ति पुत्र का पिता खर्च करता था। उसके लिए कोई बाध्यता नही होती थी। लेकिन शिक्षा के बढने के साथ-साथ दहेज की माग बढती चली गयी और परिणाम यह हुआ कि दहेज कन्या के माता-पिता के लिए भयकारक होता चला गया। दहेज प्रथा के चलते पिता हमेशा वर पक्ष से दबा रहता था तथा हमेशा वर पक्ष भी आर्थिक दृष्टि से सन्तुष्टि करने का प्रयास करता था। यदि वर पक्ष द्वारा मागे गये दहेज की पूर्ति कन्या का पिता नही कर पाता था तो उसकी लडकी आजीवन यातना, प्रताडना तथा घुटन की जिन्दगी बिताते हुए असम्मानित जीवन जीती थी। जिससे उसका स्वाभाविक विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता था उन्हे पैदा होते ही मार डाला जाता था। कभी-कभी पिता के कष्टो को कम करने के लिए

---

1 व्यास एन० एस०,इण्डियन अवकनिग एण्ड बगाल 1960 पृ० 6

2 ज० एन० फुर्कहर मार्डन रिलीजियस मूवमेन्टस इन इण्डिया ओरियण्टल पब्लिशर्स एण्ड बुकसलर्स, दिल्ली 1967, पृ० 406

3 ज० एन० फुकहर, वही, पृ० 406

कन्याये स्वय आत्म हत्या कर लेती थी।[1] दहेज से जुडी अन्य कुरीतिया बढने लगी थी क्योकि कभी-कभी दहेज न दे पाने की स्थिति के चलते कन्याओ का विवाह किसी भौतिक वस्तु से कर दिया जाता था, या फिर उन्हे आजीवन मन्दिरो की सेवा के लिए समर्पित कर दिया जाता था जिससे वे देवदासी बन जाती थी, और इस प्रकार पण्डे पुजारियो के द्वारा उनका दैहिक और यौन शोषण होने लगता था। बाल विवाह भी इसी कडी का एक अग था। बचपन मे विवाह करने पर विवाह कम दहेज मे हो जाता था जिससे बाल विवाह प्रचलित होने लगे। कन्या भ्रूण की हत्या भी इसी से सम्बन्धित एक कारण है। माता-पिता जन्म लेने से पहले या जन्म के बाद कन्या होने की दशा मे ऐसे बच्चो की हत्या कर देते थे। दहेज के चलते कन्या के माता-पिता धन प्राप्ति की अभिलाषा से अवैध कार्यो मे भी लिप्त हो जाते ते। जिससे समाज मे अनैतिक और गैर कानूनी कार्यो को बढावा मिलता था। क्योकि दहेज आर्थिक स्थिति से जुडी समस्या है अतः इसका कुप्रभाव गरीबो को तोड देता था। तथा गरीब और अधिक गरीब हो जाता था। और बधुवा मजदूर तक बनने को बाध्य हो जाता था। अमीरो के लिए तो यह प्रदर्शन का एक बहाना होता था। इसके द्वारा वे अपने धन और वैभव का प्रदर्शन करते थे। धनी वर्ग को तो दहेज की कोई चिन्ता नही थी क्योकि वे दहेज देने मे सक्षम थे। बगाल के बहुतरे जमीदार तो पशुओ के विवाह मे हजारो रूपये व्यय कर देना अपना सम्मान समझते थे।[2]

तत्कालीन समय मे समाज मे एक धूर्तता और भी व्याप्त थी। वह थी ढगी। ढगी से तात्पर्य जालसाजी से है। अर्थात् किसी के भोलेपन का लाभ उठाकर उससे धन या वस्तुओ को ऐठना इसके अतिरिक्त ठगी जैसे घृणित कार्य को भी इस सदी के समाज मे दैवी प्रकोप के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इससे पतित सामाजिक स्थिति और क्या हो सकती है। रास्ता चलते राहजनी करना तथा चोरी

---

1 एस० नटराजन ए सेन्चुरी ऑफ सोशल रिफार्म इन इण्डिया, पृ० 406

2 एन० एस० बोस इण्डियन अवेकनिग एण्ड बगाल, फर्मा के० एल० मुखोपाध्याय कलकत्ता, 1960, पृ० 5

करके हत्या कर देना आम बात थी ठगो के प्रति सामान्य धारणा यह थी कि ठगी व्यक्ति के दुर्भाग्य से होती है और उसके विरुद्ध कार्यवाही के लिए पहल करना 'देवीगणो' को सताकर देवी को रूष्ट करना है।[1]

इस सभी सामाजिक कुप्रथाओ के प्रचलन के पीछे अध विश्वास एव धर्म के सही स्वरूप का ज्ञान का न होना ही था, और ऐसा इसलिए था कि बहुसख्यक जनता अशिक्षित थी। अशिक्षा के चलते वे तार्किकता से काम न लेकर लकीर ही पीटते थे। और ऐसी स्थिति मे उसका लाभ समाज मे धूर्त लोग उठाते थे। सस्कृत शिक्षा का पूर्णत: लोप हो गया था जिसके कारण हम अपने वेद या धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन नही कर पाते थे। अत: जो धर्म के बारे मे पुरोहित या ब्राह्मण कह देते थे, उसे ही स्वीकार कर लिया जाता था। सस्कृत शिक्षा का विनाश इस सदी की देन नही वरन् यह तो मुगलकाल से ही अपने मृतप्राय अवस्था मे जा चुकी थी। उच्च सस्कृत शिक्षा के लिए प्रमुख प्रमुख नगरो मे विद्यापीठ होते थे। दैनिक जीवन के लिए उपयोगी गणित व भाषा आदि की शिक्षा इन विद्यालयो मे दी जाती थी। सामान्य जनों की शिक्षा के लिए टोल, मकतब और मदरसे थे जिनमे उर्द एव फारसी की शिक्षा दी जाती थी।[2]

शिक्षा के प्रसार मे मुख्य बाधा प्रथम तो विद्यालयो मे भवन का अभाव, उचित वेतनमान के अभाव मे शिक्षक का पेशा कम आकर्षक, बगाल एव बिहार मे बर्नाकुलर शिक्षको का वेतन 3 रुपये प्रति माह था जो कि कलकत्ता के घरेलू नौकरो के बराबर तो दूर आधा भी नही था। इसके अतिरिक्त शिक्षकों का व्यक्तित्व भी इतना प्रभावशाली नही था कि विद्यार्थी उससे आकर्षित होते।[3] इसके अतिरिक्त शिक्षा का पाठ्यक्रम भी बडा ही निम्न स्तरीय था। शिक्षा के नाम पर कपोलकल्पित कथाये

---

1 दि केम्ब्रिज शार्टर हिस्ट्री ऑफ इडिया, पृ० 725

2 एन० एस० बोस दि इण्डियन अवकनिग एण्ड बगाल, फर्मा क० एल० मुखापाध्याय कलकत्ता, 1960, पृ० 6

3 आर० सी० मजूमदास ग्लिम्पसेज ऑफ बगाल इन नाइनटीन्थ सन्चुरी फर्मा के० एल० मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1960, पृ० 92

या देवी देवताओ की महत्ता का गुणगान होता था, तथा पाठ को तोता रटन्त विद्या से पढना पडता था। अंग्रेजी के चार टूटे फूटे अक्षरो के ज्ञान को ही शिक्षा समझा जाता था, तथा जो लोग अंग्रेजी के अल्पज्ञान को प्राप्त कर लेते थे वे समाज मे प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते ते। नारी की शिक्षा तो और भी निम्न स्तरीय थी।[1]

अत: शिक्षा के अभाव मे भारतीय समाज आधुनिक विश्व के नवीन ज्ञान, नवीन दार्शनिक एव राजनैतिक उदारवादी सिद्धान्तो तथा तथ्यो से अनभिज्ञ रह गया था। जिसके चलते न तो उनमे सामाजिक चेतना थी न ही राजनैतिक चेतना। उन्नीसवी सदी मे भारत की इस सामाजिक दशा का पुनरोद्धार मे आन्दोलन को समझने मे, उदारवादी मूल्यो की स्थापना मे, पृष्ठभूमि के रूप मे महत्वपूर्ण योगदान होगा। क्योकि कोई भी विचार या आन्दोलन अपनी परिस्थितियो एवं दशाओ से प्रभावित होता है।

धर्म ने प्राचीन समय से ही भारतीय जीवन मूल्यो को प्रभावित एव निर्देशित किया है। हिन्दु दर्शन मे धर्म एक प्रमुख पुरुषार्थ है। धर्म जो की आस्था और विश्वास का प्रश्न है अर्थात् धर्म को किसी पर थोपा नहीं जा सकता है। अर्थात् धर्म को मानने के लिए बाध्य नही किया जा सकता है। हिन्दू धर्म तो ऐसा ही उदारवादी धर्म है कि इसको पालन करने की विभिन्न धाराये है तथा अपने विश्वास और आस्था के अनुसार आप अपने तरीके से धर्म का पालन कर सकते है। लेकिन उन्नीसवीं तक के एक लम्बे यात्रा काल मे हिन्दू धर्म तमाम प्रकार के झझावतो को सहते हुए दिग्भ्रमित हो गया था। जब धर्म ही अपने मूल उद्देश्य से भटक जाय तो उस पर आधारित सामाजिक राजनीतिक व्यवस्थाओ का ह्रास होना तो स्वभाविक ही है। वास्तव मे इस सदी तक धर्म अपने मूल उद्देश्य एव स्वरूप का परित्याग कर चुका था। हिन्दू धर्म तमाम प्रकार के पाखण्डो से युक्त हो रहा

---

1 आर० सी० मजूमदार, वही, पृ० 92

था। हिन्दू धर्म मे आयी बुराईयों ने इसको बहुत आघात पहुँचाया तथा यह कमजोर होता चला गया। रही-सही कसर अग्रेजो ने पूरे कर दिये अग्रेजी साम्राज्यवादियो ने हिन्दू धर्म पर प्रारम्भ से ही अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये थे। ईसाई धर्म का प्रचार भी जोर-शोर से प्रारम्भ हो चुका था। जो इसे अपना ध्येय बना कर कार्य कर रहे थे कि हर परिस्थितियो मे भारत मे ईसाई धर्म का प्रसार एव प्रचार करना आवश्यक है।[1] ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अध्यक्ष मैगल्स ने 1857 मे पार्लियामेन्ट के अदर कहा था कि , "परमात्मा ने हिन्दूस्तान का विशाल साम्राज्य इगलिस्तान को इसलिए सौपा है कि ताकि हिन्दुस्तान मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक ईसा मसीह का विजयी पताका फहराने लगे। हममे से हर एक को अपनी पूरी शक्ति इस कार्य में लगा देनी चाहिए ताकि सारे भारत को ईसाई बना लेने के महान कार्य मे पूरे देश भर के अदर कही पर किसी कारण जरा भी ढील न आने पावे।[2]

हिन्दू धर्म मे मूर्ति पूजा का एक विशिष्ट स्थान था। आदिम अवस्था में भी व्यक्ति अपने लाभ हानि के भय से अग्नि, वायु, जल आदि की उपासना करता था। इस उपासना का कोई सस्थागत आयाम नही था। ब्रिटिश काल मे मूर्तिपूजा ने अपना सस्थागत स्वरूप बना लिया था। इस काल मे ईसाई धर्म का प्रचार तथा प्रसार करना उनका परम ध्येय था। मिस्टर कैनेडी ने लिखा है : "हमारा प्रमुख कार्य भारत भूमि मे ईसाई धर्म का प्रचार करना है। जब तक कन्याकुमारी से हिमालय तक का पूरा भारत इस्लाम तथा हिन्दू धर्म को छोडकर ईसाई मत ग्रहण नही करता, हमारी कोशिसे दृढता से जारी रहनी चाहिए। इस कार्य म सफलता प्राप्त करने हेतु हमे अपनी सारी राजनीतिक शक्ति भी लगा देनी चाहिए।"[3]

---

1 आर० सी० अग्रवाल, भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एव सविधान एस० चन्द कम्पनी लि० रामनगर नई दिल्ली, 1992-पृ० 27

2 आर० सी० अग्रवाल, वही, पृ० 27

3 कनडी इण्डियन फ्रीडम स्ट्रगल, सेन्चुरी सावेनियर पृ० ३१

इस समय हिन्दू समाज मे मूर्तिपूजा मे मूर्तियो की स्थापना, पूजा पाठ तथा देव मूर्तियो की सेवा सुश्रुवा की रीतियो बडी कठिन थी। मूर्तियो को स्नान करना, वस्त्र पहनाना, श्रृंगार करना, भोजन कराने, सुलाने व उनको दर्शन हेतु देवालयो से बहार लाने के कार्य निष्ठापूर्वक एव शास्त्रो के निर्देशो के अनुसार ही किया जाता था।[1] देवी पूजा मे बकरो तथा भैसो का बलिदान दिया जाता था। लोगो मे अंध विश्वास की भावना भी पूर्ण रूप से घर कर गयी थी कि गगा स्नान करने से, ब्राह्मणो, वैष्णों को दान देने से तीर्थो में भ्रमण करने से, अन्नजल छोडकर व्रत करने से सारे पापो से मुक्ति मिल सकती है। मूर्ति पूजा से भाग्यवाद अधविश्वास तथा दैवी न्याय के प्रति आस्था प्रबल हुयी तथा आत्मविश्वास की भावना मे कमी आयी जो कि राष्ट्रीय हितो की दृष्टि से घातक था।[2]

तत्कालीन समाज मे विभिन्न प्रकार के कर्मकाण्ड, धार्मिक प्रतीक, व्रत साधु व फकीर, श्मसान मकबरो व समाधियो की पूजा, जादू होटे, भूत-प्रेत पूजा, पेड-पौधो की उपासना सर्वत्र विद्यमान थी। दैवी न्याय के सिद्धान्त को स्वीकार कर भाग्यवाद पर भरोसा किया जाने लगा था अपनी इन्ही कमजोरियो के कारण मूर्ति पूजा पर अन्य धर्म की ओर से कटु प्रहार किये जा रहे थे। ईसाई मिशनरियो ने मूर्ति पूजा पर आरोप लगाते हुए कहा ''तुम्हारे देवता शैतान है और कुछ नही, मूर्तिपूजा के अपराध के प्रायश्चित स्वरूप तुम नर्क की शाश्वत ज्वालाओ मे जलोगे।''[3] तथा हिन्दू देवताओ की मूर्तियो को घृणित एव विचित्र राक्षसो की सज्ञा दी गई।[4]

मूर्ति पूजा की तरह बहु देववाद भी हिन्दू धर्म के अन्दर एक अन्य कुप्रथा थी जिसके कारण धार्मिक सकीर्णता का जन्म हुआ, और वह राष्ट्रीय एकता के मार्ग मे बाधक सिद्ध हुयी। वैदिक

---

1 एबे० जे० दुबाय हिन्दू मैनर्स कस्टम एण्ड सेरेमनीज, पृ० 581

2 एने० जे० दुबाय वही, पृ० 581

3 Relience—एने० जे० दुबाय, हिन्दू मैनर्स कस्टम एण्ड सेरेमनीज पृ० 576 58

4 Relrence—एन० एस० बोस इडियन अनेकनिग इन बगाल पृ० 8

कालीन वर्ण व्यवस्था से ही ब्राह्मण समाज मे सम्मानपद जीवन व्यतीत कर सामाजिक जीवन के आदर्श बने हुए थे। पी० वी० काणे ने ब्राह्मणो की स्थिति के बारे मे बताया : ''ऐसी बात नही है कि ब्राह्मणो ने जानबूझकर अपनी महत्ता बढाने के लिए धर्मशास्त्रो एव अन्य धार्मिक ग्रन्थो मे अपनी स्तुतियाँ कर डाली है क्यकि जब तक उन्हे अन्य वर्गो द्वारा सम्मान प्राप्त न होता और वह शताब्दियो तक अक्षण्ण चला न जाता तब तक उन्हे इतनी महत्ता प्राप्त नही हो सकती थी क्योकि ब्राह्मणो के हाथ मे राज्य की सैनिक शक्ति नही थी कि वे जो कुछ चाहते वही होता। यह तो उनकी जीवानचर्या, जीवन मार्ग व आचरण शैली थी जिससे इतनी महत्ता उन्हे प्राप्त हो सकी।------ यह मानी हुई बात है कि सभी ब्राह्मण एक से नही थे किन्तु बहुत से ऐसे थे जिन पर आर्य जाति की सम्पूर्ण सस्कृति का भार रखा जा सका और उन्होने उसका विकास, सरक्षण तथा सवर्धन करने मे अपनी ओर से कुछ भी उठा न रखा। इसी से आर्य जाति सदैव से ब्राह्मणो के समक्ष नत रही है।[1]

समाज मे पुरोहित का वर्चस्व बढ़ गया था। सामाजिक और धार्मिक जीवन पूर्णत: पुरोहित के अधिपत्य मे थे। पुरोहित को सामाजिक तथा धार्मिक जीवन मे कुछ विशेष दायित्वो का निर्वाह करना पडता था। जैसे किसी कार्य के प्रारम्भ करने का मुहूर्त, नक्षत्रो एव ग्रहो की शाति के लिए मत्रो द्वारा प्रार्थना, शिशुओं का नामकरण, जन्मकुण्डली निर्माण, अशुद्रो की शुद्धि, नवनिर्मित गृहो एव जलाशयो के लिए शुभकामना मदिरो एव मूर्तियो मे मन्त्रशक्ति से देवत्व स्थापना आदि।[2] धार्मिक एकाधिकार के कारण समाज के सारे नियम एव व्यवस्थाए इन्ही के हाथो मे एकत्रित थी। वेद और उपनिषदो का अध्ययन समाप्त हो गया था विवेकपूर्ण विचारो का स्थान अधविश्वास व बुद्धिहीन सनातनत्व ग्रहण करता गया।[3]

---

1 पी० वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० 156

2 एने० जे० दुब्राम हिन्दू मेनर्स कस्टमस एण्ड सेरेमनीज पृ० 134

3 एन० एस० बोस इण्डियन अवेकनिग एण्ड बगाल फमा के० एल० मुखोपाध्याय कलकत्ता, 1960 पृ० 7

सामाजिक कुरीतियो और धार्मिक विश्वास ने न केवल समाज की विकास की धारा मे अवरोध का काम किया बल्कि आर्थिक विकास को भी पगु कर दिया। परम्परागत भारतीय जीवन दर्शन का आदर्श था निर्धनता एव त्याग की भावना, आर्थिक उपलब्धिया, आध्यात्मिक उपलब्धियो के सामने नगण्य थी। लेकिन वर्तमान समय मे लोग की चिनता छोडकर वे वर्तमान स्थिति पर ही सर्घष करने लगे थे तथा परलोक सम्बन्धी चिन्तन मे अकर्मण्य एव पलायनवादी हो गये थे। जिसका असर भारत की आर्थिक स्थिति पर पड़ा। दूसरी तरफ विदेश यात्रा निषेध की भावना ने भारतीयो को कूप मन्दूक बना दिया था। विश्वास के आगे तर्क का कोई महत्व नही रह गया था। अपनी यथास्थिति पर सन्तोष और भाग्य का फल मानकर कर्म हीनता की स्थिति आ गयी थी। समाज मे श्रम एवं पूजी की गतिशीलता जाति व्यवस्था के कारण अवरुद्ध हो गयी थी। भारतीयो का नैतिक तथा चारित्रक दृष्टि से पूर्णत: पतन हो गया था। विदेशी नकल ने सासकृतिकता का भी ह्रास कर दिया था। इसी के चलते भारत ने अपना विश्व मे जो स्थान बना रखा था उसको खो दिया। अब आवश्यकता इसी बात की थी कि भारत की उस पुरानी गौरव शाली परम्परा को पुर्नजीवित किया जाए और भारत के सम्मान को पुन: लौटाया जाय और भारत एक बार फिर से अपनी आर्थिक सामा्जिक राजनैतिक, सास्कृतिक, आध्यात्मिक परम्पाओ के सहारे विश्व का गुरू बन सके।

राजनीतिक विचार—उन्नीसहवी शताब्दी मे जहा भारत सामाजिक, धार्मिक आर्थिक एव सास्कृतिक दृष्टिकोण से पूर्ण पतन के गर्त मे चला गया था, वही राजनीतिक स्थिति भी अधिक दयनीय हो गयी थी। इस सदी के आते-आते अग्रेजो ने राजनीतिक दृष्टिकोण से भारत मे प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। व्यापारी बन कर आये हुए अग्रेजो ने शासको का स्थान ले लिया। अब जो बची खुची रियासते थी उनको भी किसी न किसी बहाने से अग्रेज अपने अधीन करते जा रहे थे आर्थिक रूप से तो भारतीय पहले ही गुलाम हो गये थे अब राजनीतिक रूप से भी गुलामी हो गयी थी। क्योकि अग्रेज कोई भी बहाना ढूढ कर भारतीय राजाओ को अपने अधीन होने को बाध्य कर देते थे। ऐसा न करने की स्थिति मे आक्रमण रूपी हथियार तो उनके पास था ही।

उन्नीसहवीं सदी का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि क्या इस शताब्दी मे भारत एक राष्ट्र था? क्या राष्ट्रीय भावनाए भारतवासियो के अत:करण मे उचित मात्रा मे थी? इसका उत्तर नकारात्मक ही होगा। भारत मे राष्ट्रवाद के मूल तत्वो का भी लोप हो गया था। भारत की तात्कालिक राजनीतिक मनोवृत्तियो पर थामस मुनरो ने लिखा है—"राजनीतिक क्रान्तियो या परिवर्तनो मे उनकी कोई रूचि नही है, शासको की विजय या पराजय से वे अपने को सम्बद्ध नही मानते, यह केवल शासको के सौभाग्य या दुर्भाग्य का प्रश्न होता था, कि वे दूसरो को उतना सम्मान देते हैं। जितना कोई उनके धार्मिक विश्वासो को मान्य करते है।[1] इस सबध मे यह भी कहा जा सकता है कि जिस देश मे जाति, धर्म सस्था व भाषा पृथक-पृथक है वहा राजनीतिक एकता का प्रश्न ही नहीं उठता है। विदेशी अधिपत्य के सयोग मात्र से समूह बद्ध हो गए थे। प्राचीनकाल की स्मृतियो को सजोए हुए पृथक तत्व की भावना से लोग रहते थे। दुर्बल शासको महत्वाकाक्षी तथा निरकुश सेनापतियों राजनीतिक विप्लवो लूटमार आदि के कारण जीवन मे कोई व्यवस्था नही रह गयी थी। भारतीय समाज की इन सामाजिक धार्मिक कुरीतियो तथा फूट के कारण राजनीतिक दासता व साम्राज्यवादी आर्थिक शोषण संभव हुए। इन्ही परिस्थितियो का लाभ उठाकर अग्रेजो ने भारत मे ब्रिटिश राज्य की नीव सुदृढ की। भारत के सम्पूर्ण भाग मे रहने वाले विभिन्न वर्गो मे एकता परस्पर स्नेह एव सहानुभूति का व्यवहार नही थे। राजनीतिक दृष्टि से वे परस्पर ईर्ष्या करते थे। उत्तरी भारत के लोग बगालियो को अग्रेजो की भाति विदेशी मानते थे। मराठो के द्वारा अतीत मे जो व्यवहार एव अत्याचार बगालियो पर किए गये थे, उस कारण से बगाली मराठो को न केवल अग्रेजो की भाति विदेशी मानते थे वरन् उनसे घृणा भी करते थे। इसीलिए अग्रेजो ने बगाल को अपना मुख्यालय बनाकर मराठा व गोरखा आदि शक्तियो से युद्ध किया था। धनाण्य एव प्रतिष्ठित बगाली ब्रिटिश सेना

---

1 एच० एच० ड्राइवेल द्वारा सम्पादित शार्टर हिस्ट्री आफ इडिया पप्र 71।

के भारत विजय अभियानों की सफलता के लिए नियमित रूप से प्रार्थना किया करते थे तथा स्वेच्छा से अग्रेजों को सहायता धनराशि भी दिया करते थे।[1]

1757 के प्लासी युद्ध मे ब्रिटेन की विजय ने भारतीयो की कमजोरी को उजागर कर दिया था। भारत की रही सही शक्तियो का पूर्णत: पतन हो गया था। 1757 से 1857 के काल मे अग्रेजों ने सारे देश के लिए समान शासन नीति तथा प्रशासनिक व्यवस्था बनायी और समूचे राष्ट्र केऊपर अग्रेजों का प्रबुद्ध कायम हो गया। ब्रिटिश उपनिवेश वादियो ने आरम्भ से ही फूट डालों और शासन करो की नीति को अपनाकर भारत की राजनीतिक एकता को विनष्ट कर दिया था उन्नीसवी शताब्दी मे अपने साम्राज्य के विस्तार करने के लिए अपनी इन्ही कूटनीतिक चाल भरी नीतियो से सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक सभी क्षेत्रों मे शोषण करना प्रारम्भ कर दिया।

सन् 1821 मे एक अग्रेज अधिकारी ने लिखा "राजनैतिक अथवा सैनिक क्षेत्र मे हमारे प्रशासन का मूल सिद्धान्त 'फूट डालो और शासन करो' होना चाहिए। सन् 1857 के पश्चात एक उच्च सैनिक अधिकारी ने कहा हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि भिन्न-भिन्न धर्मो और जातियो के लोगो मे सौभाग्य से जो भेदभाव उपस्थित है उसे पूरे जोरो से कायम रखा जाय। हमे उन्हे मिलाने की कोशिश नही करनी चाहिए।"[2]

सन् 1813 मे सर जान मैकलन ने जो उन खास अनुभवी नीतिज्ञो मे से था जिन्होने उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ मे भारत के अन्दर अग्रेजी राज्य को विस्तार दिया। ब्रिटिश ससदीय जॉच समिति के समक्ष कहा था। " इस समय हमारा साम्राज्य इतनी दूर तक फैला हुआ है कि जो असाधारण ढग की हुकूमत उस देश मे कायम की है उसके बने रहने के लिए केवल एक बात का ही हमे सहारा है

---

1 आर० सी० मजूमदार ग्लम्पसेज ऑफ बगाल इन दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी फर्मा के० एल० मुखोपाध्याया कलकत्ता 1960, पृ० 18

2 आर० पी० दत्त 'आज का भारत' द मेकमिलन कम्पनी ऑफ इडिया लिमिटेड 1977 पृ० 463

वह यह है कि जो बडी-बडी जातिया है और जातियो मे फिर अनेक जातिया एव उपजातियो है जब तक ये लोग एक दूसरे से बँटे रहेगे तब तक इस बात का डर नही है कोई भी बलवा हमारी सत्ता को हिला सके।''[1] सन् 1813 मे ही जॉच के समय मेजर जनरल स्मिथ ने कहा था कि ''अभी तक हमने साम्प्रदायिक और धार्मिक पक्षपात द्वारा ही युवक को वश मे रखा है ---- हिन्दूओ के खिलाफ मुसलमानो को और इसी तरह उप जातियो को एक दूसरे के खिलाफ -----।''[2] सन् 1857 के विद्रोह के पश्चात् अपनी उनिवेशवादी नीत को स्पष्ट करते हुए कर्नल जॉन कोक ने लिखा, ''हमारी कोशिश यही होनी चाहिए कि भिन्न-भिन्न धर्मो एव जातियो के लोगो मे हमारे सौभाग्य से जो एकता मौजूद है उसे पूरे जोरो मे कायम रखा जाय। हमे उन्हे मिलाने की कोशिश नही करनी चाहिए। भारत सरकार की नीति यही होनी चाहिए कि 'फूट डालो और राज्य करो।''[3]

अग्रेजो की इसी नीति के कारण राजनीतिक दासता व साम्राज्यवादी शोषण सम्भव हुए साथ ही अग्रेजी राज्य ने अपनी ध्वन्सात्मक भूमिका भी अदा की और भारत मे राष्ट्रवादी भावना को जन्म दिया। अपने राज्य से सलग्न भारतीय राज्यो से मैत्री दिखाकर तथा अन्य पडोसी अथवा बाहरी शक्तियो के आक्रमण का भय दिखाकर अग्रेजो ने उन राज्योके शुभ चिन्तक होने का स्वाग रचा जो आपस मे अपनी-अपनी शक्ति को बढाने का उपाय सोच रहे थे। इन राज्यो को सैनिक सहायता का आश्वासन देकर अपने ऊपर आश्रित कर लिया। इस प्रकार अग्रेजो के भारतीय नरेशो की नीति पर नियत्रण स्थापित किया। धीरे-धीरे अग्रेजो ने अपनी सेना के खर्चे का बोझ राज्यो पर लाद दिया और अग्रेजी साम्राज्य के विस्तार का भारी बोझ भी भारतीय नरेशो पर डाल दिया। यह आक्रामक नीति वेलेजेली की सहायक सन्धि के नाम से जानी जाती है। इस प्रकार की नीति के फलस्वरूप भारतीय

---

1 प० मुन्दर लाल भारत मे अग्रेजी राज्य, सूचना एव प्रसारण मत्रालय दिल्ली 1961 पृ० 990

2 प० सुन्दरलाल वही, पृ० 990

3 प० सुन्दर लाल भारत मे अग्रजी राज्य सूचना एव प्रसारण मत्रालय दिल्ली 1961 990

राज्यो की समाज तथा आन्तरिक प्रभुता का निरन्तर अतिक्रमण होता था। इस प्रकार उन्नीसवी सदी के मध्य तक अग्रेजी हस्तक्षेप व्यापक हो गया। जिसके फलस्वरूप प्रशासनिक अव्यवस्था फैलती गयी क्योकि यह हस्तक्षेप बिना उत्तरदायित्व के थे।[1]

वेलेजली की सहायक सन्धि के द्वारा चौथे आग्ल मैसूर युद्ध (1799) के पश्चात दक्षिणी कन्नड तट, द० पू० प्रदेश मे वैनाड कोयम्बटूर, दारूपुरम और श्रीरगापट्टम अपने क्षेत्र में शामिल कर लिए। इसके अतिरिक्त 12 अक्टूबर 1800 की निजाम से सशोधित सहायक सन्धि से कम्पनी को बलेरी और कुड्डापह जिले मिल गये। अवध के नवाब बजीर को सन्धि के लिए बाध्य किया जिससे कम्पनी को रूहेलखण्ड फरूर्खाबाद, मैनपुरी, इटावा, कानपुर, फतेहगढ, इलाहाबाद, आजमगढ, वस्ती तथा गोरखपुर जिले मिले। इसी क्रम मे द्वितीय आग्ल मराठा युद्ध से कम्पनी को ऊपरी दोआब, जयपुर, जोधपुर, गोहद की राजपूत रियासते भडौच का भाग, अहमदनगर के दुर्ग तथा उडीसा मे कटक मिल गये। वेलेजली ने तजौर, सूरत और कर्नाटक का शासन भी अपने हाथो मे ले लिया।[2]

देशी नरेशो के शासन काल मे उच्च पदो के लोगो को जो विशेषाधिकार तथा सुविधाए प्राप्त थी वह कम्पनी के शासन के स्थापित होने से वे उनसे वचित कर दिए गए। इससे भारत मे बड़ा ही असन्तोष फैला, ब्रिटिश राज्य की राजनीतिक एव प्रशासनिक सस्थाओ मे भारतीयो को नही रखा जाता था क्योकि अग्रेज अधिकारी भारतीयो को लालची बेईमान व रिश्वत खोर मानते थे।[3] इस परिपेक्षय मे 1802 मे ढॉका के मिस्टर पैटर्सन के विचार प्रासगिक होगे, ''वे जड से नैतिक विचार

---

1 दाना नाथ वमा आधुनिक भारत, पृ० 191

2 बी० एल० ग्रोवर एवम् यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास [illegible] कम्पनी लिमिटेड नई दिल्ली, 1981 पृ० 143

3 डॉ० ताराचन्द हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमन्टस इन इण्डियाप्रथम खण्ड पृ० 299

शून्य, अत्यधिक चालाक व नीच है वे निरोधमी फूहड रूप से असमयी क्रूर एव डरपोक है सक्षेप मे उनमे किसी प्रकार के गुण नही है।''[1]

लार्ड वेलेजली ने सभी भारतीय अधिकारियो के स्थान पर अग्रेज अधिकारियो की नियुक्ति कर भारत मे ब्रिटिश नौकरशाही के लौह ढॉचे की नीव रखी। किसी भी शासन की पहचान एव उसके गुण दोष का पता उसकी न्याययिक प्रणाली के ढग से पता चलता है। अग्रेजों की न्याय व्यवस्था पक्षपात पूर्ण थी तथा भारतीयो के अनुकूल नही थी। जहॉ एक ओर अग्रेज न्यायधीशो की अधिकता थी वहीं दूसरी ओर कुछ भारतीय होते भी थे तो उनको अग्रेजो के मुकदमे सुनने का अधिकार नही था। यदि भारतीय न्यायाधीश किसी अग्रेज के विपक्ष मे फैसला दे भी देते थे तो वह मान्य नही होता था। अग्रेज न्यायाधीश अपनी जाति के साथ पक्षपात करते थे। न्यायिक प्रणाली मे निर्णय, दीर्घ प्रक्रिया के बाद एव अनिश्चित होता था। गरीब व्यक्ति के मुकदमे मे धन और समय दोनो ही नष्ट होता था। न्याय तब भी नही मिल पाता था। विधि प्रणाली तथा सम्पत्ति के अधिकार पूरी तरह से सशोधित थे।

अग्रेजो ने वैसे तो अपनी निहित स्वार्थो को ध्यान मे रखकर देश को राजनीतिक एकता के सूत्र मे बाधकर भारत मे नयी समाज व्यवस्था का भौतिक आधार तैयार किया। लेकिन इसके दुरगामी परिणाम भारत के लिए लाभप्रद हुए। नयी व्यवस्था ने भारत का सम्पर्क विश्व बाजार के साथ किया। डाक-तार एव दूरभाष जैसी सचार व्यवस्था, रेल का चालन, देशको जोडने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसके बाद आधुनिक उद्योग धन्धो तथा वैज्ञानिक योग्यता वाले आवश्यक कर्मियो को प्रशिक्षित किया गया। हॉलाकि ये सारे काम उतने गुणवत्ता पूर्ण नही थे। क्योकि अग्रेजी राज्य का योगदान ध्वसात्मक अधिक था।[2]

---

1 एन० एम० बोस इण्डियन अर्वकनिग एण्ड बगाल पृ० 4

2 आर० पी० दत्त आज का भारत, द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इडिया लि० 977 पृ० 316

भारत जिसकी अर्थ व्यवस्था कृषि आधारित थी जिसकी बुनियादी इकाई ग्राम समाज थी जिसको ब्रिटिश पूजीपति वर्ग ने लूट खसोट नीति के तहत नष्ट भ्रष्टकर दिया। प्लासी के युद्ध मे विजय के परिणाम स्वरूप अग्रेजो ने भारत के किसी भी राष्ट्रीय उद्योग को पनपने न देने और उसकी वृद्धि को कुण्ठित करने की नीति अपनायी। 1793 का इस्तमदारी बन्दोबस्त कानून और 1818 का रैयतवाडी प्रथा कानून ये ऐसे कानून थे जिन्होन ग्राम समुदाय वाली प्रणाली पर सीधे चोट की। और भारत मे बडे जमीदार वर्गो की रचना की। अब इससे किसान सरकारी जमीन के किराएदार बन गए। चूँकि किराये बहुत ऊँचे थे इसलिए जमीन धीरे-धीरे सूदखोरो और मुनाफाखोरो के हाथो मे चली गयी। जिससे वे अब जमीदार खुद ही बन गये। कम्पनी की भूमि सम्बन्धी नीति से गाव के पट्टेदार किसान, कारीगर, दस्तकार आदि सभी तबाह हो गए। सूदखोर और बडे जमीदारो की मौत आ गई।[1]

इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति को ऊर्जा औपनिवेशिक लूट खसोट से ही प्राप्त हो रही थी। क्योकि भारत से कच्चा माल, सस्ता श्रम एव सस्ती तकनीकि प्राप्त होने के कारण कम लागत मे अधिक मुनाफा कमाया जाता था। इसके अतिरिक्त इग्लैण्ड के फैक्ट्रियो मे बने हुए माल को खपाई के लिए भारत का बाजार था ही। 1795 से पूर्व के बन्दरगाहो की और इग्लैण्ड के सूती माल का निर्यात कई गुना बढ गया था। ब्रिटिश उत्पादन की खपत के लिए भारत ही मुख्य बाजार था कृषि का काम अब विदेशी बाजारो की आवश्यताओ के अनुसार माल तैयार करना था।[2]

1813 मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का चार्टर परिवर्तन करते समय ब्रिटिश ससद ने कम्पनी का एकाधिकार समाप्त कर, सभी अग्रेज व्यापारियो को भारत के साथ उन्मुक्त व्यापार करने की अनुमति दे दी। क्योकि नेपोलियन बोनापार्ट ने ब्रिटिश निर्मित वस्तुओ को यूरोपीय बन्दरगाह मे जाने से रोक

---

1 क दामादरन भारतीय चिन्तन परम्परा पीपुल्स पब्लिशिग हाउस न० दिल्ली पृ० 543 344

2 आर० सी० दत्त ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास ज्ञानमण्डल कार्यालय 1922 पृ० 108

दिया था। अतः अग्रेज उद्यमियों और व्यवसायियो को अपनी वस्तुओ की खपत के लिए नवीन बाजारो की आवश्यकता थी। इसी के साथ उन्मुक्त व्यापार से आर्थिक लूट की प्रक्रिया तेज हुई।[1]

भारत मे ब्रिटेन का उपनिवेशी खूनी पजा, दिनोदिन कसता जा रहा था ब्रिटिश शासन की आर्थिक निर्गत की नीति ने भारत की अर्थ व्यवस्था की जर्जर कर दिया था। जिससे देश परावलम्बी होता जा रहा था वह उस पर विदेशी ऋण की वृद्धि होती जा रही थी। विदेशी वस्तुओं का आयात बहुत तेजी से हो रहा था उसकी तुलना मे निर्यात बहुत मन्द गति से हो रहा था। इससे असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। एक तरफ तो व्यापारिक तरीके से तथा दूसरी ओर ब्रिटिश अधिकारियो द्वारा लूट खसोट्, भ्रष्टाचार, इनाम और इकराम के माध्यम से धन सचित करके अपने देश मे भेजा जा रहा था। दूसरी तरफ सभी पदों पर अग्रेज अधिकारी के रूप मे विद्यमान थे। सेवा निवृत्ति के पश्चात वे इग्लैण्ड चले जाते थे तथा साथ ही साथ जीवन की सभी बचत व आय भी ले जाते थे। पेशन के रूप मे भी अत्यधिक धानराशि उन्हे भारत से ही जाती थी। भारत के प्रशासनीय तकनीकी व राजनीतिक अनुभव भी इग्लैण्ड चले जाते थे। यह भारत का नैतिक निर्गम था।[2] अंग्रेजों ने भारत देश के शोषण का एक और तरीका अपनाया वे इतना अधिक टैक्स वसूल कर लेते थे जितना देश की किसी अन्य सरकार ने कमी जरूरत ने कमी नही किया था। परन्तु उसका अधिकांश खर्च अग्रेज अपने ही ऊपर कर लेते थे। जिससे गरीबी, बेबसी और भूखमरी दिनो दिन बढती जा रही थी, लेकिन इसका एक लाभ यह भी हुआ कि अग्रेजो के प्रति कटुवाहट बढने लगी। और देश वासी एकता के महत्व को समझने लगे। अग्रेजो के इस अमानवीय व्यवहार के प्रति खौफ क्रोध, विद्रोह की भावना बढती चली गयी ऐसे मे देश मे राष्ट्रीयता की भावना ने जन्म लिया।

---

1 आर० सी० दत्त वही पृ० 105

2 दादाभाई नारोजी पावर्टी एण्ड ब्रिटिश रूल इन इण्डिया मिनिस्ट्री ऑफ इन्फार्मेशन एण्ड ब्राडकास्टिग, नई दिल्ली, 1962, पृ० 50

अग्रेजो द्वारा ने केवल आर्थिक शोपण हो रहा था अपितु धार्मिक शोषण भी होने लगा। इसके लिए अग्रजो को पूर्ण रूप से दोपी ठहराना उचित नही हे क्योकि इसके लिए समाज भी जिम्मेदार हैं लेकिन ईसाई मिशनरियो एव पादरियो के धर्मान्तरण के घृणित खेल से मुख भी नही मोडा जा सकता जिसका एक मात्र उद्देश्य देश का ईसाई करण करना था। जैसा कि सर्वविदित है इतिहास अपने को दोहराता है। और प्रकृति का चक्र कभी रात कभी दिन, कभी सुख: कभी दुख: ऋतुओ का आना जाना चन्द्र की कलाए, ज्वार भाटा सभी चक्र अपने क्रम से चलते रहते है। उसी प्रकार भारतीय समाज अपने बुरे दिनो से जो रात्रि के समान थे सुबह की प्रथम किरण भी देखने के लिए अब तैयार हो गया था। इस प्रथम किरण को ऊर्जा एव प्रकाश देने के लिए बाल गगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले पूरब के सूर्य की तरह प्रात की लालिमा लेकर भारतीय क्षितिज मे अवतरित हुए और दु:ख दारिद्रय कष्ट, शोषण, की इस लम्बी रात को सुखद, सुबह मे परिवर्तित करने के लिए तत्पर हुए। इस प्रकार तिलक और गोखले ने अपने अपने नेतृत्व के द्वारा पीडित भारतीय जनमानस के कष्टो को दूर किया। उन्होने देश मे समी प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एव धार्मिक, समस्याओ जो अग्रेजो के द्वारा या पूर्व से चली आ रही थी, के समाधान हेतु अपनी सेवाए प्रस्तुत की। भारत की धरती के इन महान् सपूतो ने भारत माता को हर तरह की बुराइयो से मुक्त कराने का बीडा उठाया तथा यह भी प्रण किया कि भारत देश अपनी पुरानी अस्मिता को और सम्मान को फिर से प्राप्त करेगा।

तिलक और गोखले दोनो ही भारत की महान् विभूतिया थी। दोनो का ही साध्य एक था अर्थात् देश की प्रगति लेकिन साधन अलग-अलग थे। उनमे आपस मे किन्हीं बिन्दुओ मे समानता थी तो किन्ही बिन्दुओ मे मन वैभिन्य। क्योकि प्रकृति ने सबको एक समान नही बनाया है जिसके चलते विचारो मे विभिन्नता पाया जाना स्वभाविक है। दोनो के व्यक्तित्व का मूल्याकन करना तो अत्यधिक कठिन है किन्तु कार्य प्रणाली से, सोचने के तरीके मे तथा लक्ष्यो की दृष्टि से इतिहास इन दोनो को तिलक को उग्रवादी तथा गोखले को उदारवादी की सज्ञा देता है। लेकिन यह कार्य करने की प्रणाली है व्यक्तिगत जीवन मे दोनो ही बडे ही सरल एव उदारवादी थे।

<u>अध्याय—2</u>

तत्कालीन भारत में उदारवाद तथा उग्रवाद की अवधारणा

भारत मे उदारवादी तथा उग्रवादी चितन ने देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एव धार्मिक समस्याओं के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए। उदारवादियो तथा उग्रवादियो दोनों ही का देश की परतन्त्रता को समाप्त करने, तथा भारत मे नव जागरण लाने मे विश्वास रहा है। उदारवाद उव उग्रवाद का भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रारम्भिक काल मे विशेष एव पृथक् महत्व रहा है। पाश्चात्य शिक्षा तथा भारत में अग्रेजी राज की स्थापना ने जिस राजनीतिक चेतना का संचार भारत मे किया, उदारवाद तथा उग्रवाद उसी चेतना का प्रतिफल था। इस नवीन चेतना के सचार ने भारतीयों के एक वर्ग को इस पाश्चात्य प्रभाव से इतना अधिक प्रभावित किया कि वे इसके अलावा, उससे पृथक् और इसके विपरीत कुछ मानने को तैयार ही नही थे। दूसरी ओर चिन्तको का ऐसा समुदाय था जिसका उद्देश्य पाश्चात्य प्रभाव की चकाचौध को समाप्त करने तथा भारतीय गौरव एवं महानव का सदेश देकर विचारो का भारतीयकरण करने को तत्पर था। उदारवादी एवं उग्रवादी चिन्तन अनेक समस्याओ पर विपरीत दृष्टिकोण रखने के बावजूद समान रूप से स्वाधीनता प्राप्ति के लिए दृढ सकल्प रहा। अन्त मे दोनो ही विचारधाराओ का समन्वय प्रारम्भ हुआ और यही समन्वय भारत की स्वतंत्रता के लिए उत्तरदायी माना गया।

उदारवाद एव उग्रवाद ये दोनो ही शब्द कालवाची या समयवाची कहे जा सकते है। तिलक के अनुसार ''आज के उदारवादी कल के उग्रवादी थे। इसी प्रकार से आज के उग्रवादी कल के उदारवादी हो जायेगे।''[1] इस प्रकार तिलक के विचार से यह स्पष्ट होता है कि उदारवादी तथा उग्रवादी दोनो ही परिवर्तनशील है।

---

1 डा पुरषोत्तम नागर, आधुनिक भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1980 पृ 88।

तिलक ने अपना जीवन एक उदारवादी के रूप मे प्रारम्भ किया किन्तु कालान्तर मे ब्रिटिश शासन के प्रति विरोध की बढती हुई भावना ने उन्हें उग्रवादी बना दिया।[1]

विचारो की दृष्टि से उदारवाद पाश्चात्य चिन्तन की देन रहा है। उदारवाद राजनीतिक व्यवस्था को व्यक्तिवाद पर अवस्थित करता है। प्रत्येक व्यक्ति की नैतिक उपादेयता को उदारवाद ने उभारा है।[2] यूरोप मे पुर्नजागरण के समय से यह विचारधारा विद्यमान रही है। उदारवाद विवेक, वैचारिक स्वतत्रता, सहिष्णुता, प्राकृतिक अधिकार, समानता तथा प्रगति मे विश्वास आदि अवधारणाओ पर आधारित है।

उदारवादी विचारधारा से प्रभावित होकर दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले, श्री निवास शास्त्री आदि ने जिन विचारो का प्रतिपादन किया इन्हें भारतीय मितवादी अथवा उदारवादियो की सज्ञा दी गयी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दो मे "इग्लैण्ड हमारा राजनीतिक पथ प्रदर्शक है। हम इग्लैण्ड से सम्बन्ध विच्छेद करना नही वरन् एकीकृत होनाचाहते है, स्थायी रूप से उस महान साम्राज्य के एक आन्तरिक अग बनना चाहते है जिसने शेष विश्व को स्वतत्र सस्थाओ के आदर्श रूप प्रदान किये है।"[3] भारत मे उदारवादियो ने अनेक सामाजिक सस्थाओ एव रीति-रिवाजो में सामाजिक समानता तथा व्यक्तिगत सस्थाओ की स्थापना और नागरिक स्वतत्रता की माग प्रस्तुत करते थे। राजनीतिक अधिकारो की प्राप्ति के लिए उदारवादियो ने सवैधानिक आन्दोलन का समर्थन किया। उनके द्वारा जिस राजनीतिक आन्दोलन का प्रारम्भ किया गया, वह भारत की एकता, जातीय एवं साम्प्रदायिक समन्वय आधुनिकीकरण, सामाजिक रूढिवादिता एव भेदभाव का विरोध, नवीन आर्थिक प्रगति तथा औद्योगिकीकरण का समर्थन करता था।

---

1 डा पुरुषात्तम नागर, आधुनिक भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1980 पृ 88।

2 डा पुरुषोत्तम नागर, वही, पृ 89।

3 A R Desais Social Background of Indian Nationalism| PP 296 297

उदारवादियो ने सेवाओ के भारतीयकरण, पाश्चात्य शिक्षा के विस्तार, व्यवस्थापिका सभाओ के चुने हुए सदस्यो की सख्या मे वृद्धि, विधि का शासन, स्वतत्रता के अधिकार का व्यापक प्रयोग आदि पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया।[1]

1857 के विद्रोह की असफलता ने सगठन और नियोजन सम्बन्धी भूलो को रेखाकित करते हुए राष्ट्रीय राजनीतिक मच के रूप मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना 1885 मे की गयी। जिसके मूलभूत लक्ष्यों मे राष्ट्रवादी भावना का प्रचार-प्रसार करने तथा ब्रिटिश शासन से बेहतर शासन सुधारों को क्रियान्वित करने के लिए लोकतात्रिक दबाव बनाने को शामिल किया। काग्रेस के प्रारम्भिक नेताओ ने, राजाराममोहन राय द्वारा स्थापित उदारवादी परम्परा को आगे बढाया। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक नेता उदारवादी परम्परा से प्रभावित हुए और उन्होने भारतीय जनता मे उदारवादी परम्पराओ के अनुकूल नागरिक अधिकारो एव प्रतिनिधि सस्थाओ की माग करते हुए भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नए अध्याय का सूत्रपात किया। सभी उदारवादी नेता अपनी राजनीति की व्यवस्था 'उदारवाद और सयम' (Liberalism and Moderation) के समन्वय से करते थे। इनके ढगो के विषय मे **महादेव गोविन्द रानाडे ने लिखा था,** "सयम का अर्थ यह है कि उपवस्तु की अथवा उन आशा की झूठी आस्था ही मत करो जो मिलनी असम्भव है, अपितु समीपतम वस्तु की ओर समझौते और न्याय सगत भावना से प्रेरित होकर दिन-प्रतिदिन आगे बढते जाओ।"[2]

इसमे सन्देह नही कि प्रारम्भिक वर्षो मे काग्रेस का सचालन करने वाले उदारवादी उच्चकोटि के देश भक्त थे, लेकिन वे अपनी देश भक्ति के बावजूद ब्रिटिश शासन के बडे प्रशसक थे। ब्रिटिश राज्य के उपकारो के प्रति उनके हृदय मे कृतज्ञता का भाव था और वे ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति राजभक्ति

---

1 पुरुषोत्तम नागर, आधुनिक भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन पृ ४४।

2 बी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि० रामनगर, नई दिल्ली, 2002, पृ० 300

भी रखते थे। काग्रेस के दूसरे अधिवेशन मे दादा भाई नौरोजी अपने सहयोगियो की सामान्य भावना को ही व्यक्त कर रहे थे, जबकि उन्होने यह घोषणा की थी कि ''आओ, हम पुरुषो की तरह बोले और घोषणा कर दे कि हम आचूड राजभक्त है।''[1] इन नेताओ के सम्बन्ध मे **एनी बेसेण्ट** ने कहा था कि ''इस काल के नेता अपने को ब्रिटिश साम्राज्य की प्रजा मानने मे गौरव का अनुभव करते थे।''[2]

उदारवादियो को अग्रेजो की न्यायप्रियता मे अटूट विश्वास था और वास्तव मे इस विश्वास ने ही उनमे राजभक्ति की भावना को जन्म दिया था। **डॉ० पट्टाभि के अनुसार** ''उदारवादी नेता इस बात पर विश्वास करते थे कि अग्रेज स्वभाव से न्यायप्रिय होते है तथा यदि उन्हे भारतीय दृष्टिकोण का सही ज्ञान करा दिया गया तो वे इसे स्वीकार कर लेगे।''[3] 12वे अधिवेशन के सभापति पद से **रहीमतुल्ला सयानी** ने घोषित किया था कि, ''अग्रेजो से बढकर सच्चरित्र तथा सच्ची जाति इस सूर्य के प्रकाश के नीचे नही बसती।''[4] अन्य उदारवादी नेताओ की भी यही भावना थी।

ये उदारवादी दल अग्रेजी साम्राज्य के बने रहने, अपितु उसको सुदृढ करने के पक्ष म थे। उन्हे डर था कि अग्रेजो के जाने पर अव्यवस्था फैल जाएगी। अग्रेजी राज्य शाति और व्यवस्था का घोतक था और भारत मे बहुत लम्बे समय तक इसका बना रहना परमावश्यक है। इसी भावना को व्यक्त करते हुए गोखले ने कहा था, ''अग्रेज नौकरशाही कितनी ही बुरी क्यो न हो----परन्तु आज केवल अग्रेज ही व्यवस्था बनाए रखने मे सफल है और व्यवस्था के बिना कोई उन्नति सम्भव ही

---

1 ताराचन्द भारतीय स्वतत्रता आन्दोलन का इतिहास सूचना एव प्रसारण मत्रालय नइ दिल्ली 1972-पृ० 481

2 ताराचन्द, वही पृ० 481

3 पट्टाभि सीतारमय्या काग्रस का इतिहास, सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली 1935 पृ० 63

4 A more honest or Sturdy nation does not exit under the sun tham this English nation - Quoted from Annie Beasant, How Indie wrought for Freedom P 232

नही हे।"[1] इस उदारवादी दल के लोग वास्तव मे विश्वास करते थे कि उन्नति केवल अग्रेजी देखरेख मे ही सम्भव है इसीलिए ये लोग क्राउन के प्रति राजभक्त थे। एक बार काग्रेस अध्यक्ष **बदुरूद्दीन तैय्यबजी ने कहा,** "महारानी की करोडो प्रजा मे से कोई अन्य लोग इतने राजभक्त नही जितने भारतीय शिक्षित लोग।"[2] अत. ये लोग अग्रेजी साम्राज्य को शक्तिहीन बनाने को उद्यत नही थे, क्राउन के प्रति राजभक्ति उनका राजनीतिक धर्म था।

अधिकाश प्रारम्भिक राष्ट्रीय नेता पश्चिमी शिक्षा के परिणाम थे और उनका विचार था कि ब्रिटिश शासन ने अग्रेजी साहित्य, शिक्षा पद्धति, यातायात और सचार की व्यवस्था, न्याय व्यवस्था और स्थानीय स्वायत्त शासन के रूप मे, हमे एक प्रगतिशील सभ्यता प्रदान की है और ब्रिटिश शासन ही आन्तरिक अशांति और बाहरी आक्रमण से भारत की रक्षा करने मे समर्थ है। **फिरोजशाह मेहता ने कांग्रेस के छठे अधिवेशन के सभापति पद से कहा था,** "इग्लैण्ड और भारत का सम्बन्ध इन दोनो देशो और समस्त विश्व की आने वाली पीढियो के लिए वरदान होगा।"[3]

ह्यूम ने काग्रेस, लार्ड डफरिन से परामर्श करके ही आरम्भ की थी। काग्रेस के नेता अग्रेजी इतिहास और सस्कृति से बहुत प्रभावित थे और अग्रेजी सम्पर्क को 'ईश्वर की अनन्य कृपा' मानते थे। उन्हे पूर्ण विश्वास था कि अग्रेजी शासन भारत के हित मे है, एतएव वे लोग अग्रेजी सरकार को शत्रु नही अपना मित्र समझते थे। वे आशा करते थे कि कालान्तर मे अग्रेज उन्हे अपनी परम्पराओ के अनुसार स्वशासन करने के योग्य बना देगे। 1886 मे **दादा भाई नौरोजी ने** काग्रेस के अध्यक्ष पद से भापण देते हुए अग्रेजी राज्य के लाभो का सविस्तार वर्णन किया और प्रतिनिधियो ने जोर-जोर से

---

1 बी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि० रामनगर नई दिल्ली, 2002 पृ० 300

2 बी० एल० ग्रोवर, वही, पृ० 301

3 विपिन चन्द्र अमलेश त्रिपाठी वरुण दे स्वतत्रता सग्राम नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया नयी दिल्ली, 1972, पृ० 27

तालिया बजाकर उसका अनुमोदन किया। ह्यूम साहिब के कहने पर सम्मेलन ने महारानी विक्टोरिया के लिए तीन बार जयध्वनि की, और उनकी दीर्घायु के लिए प्रार्थना की।[1] **आनन्द बोस** ने काग्रेस अध्यक्ष के रूप मे यह घोषणा की, कि "शिक्षित वर्ग इग्लैण्ड का शत्रु नही अपितु उसके सम्मुख बडे कार्य मे उसका प्राकृतिक और आवश्यक सहयोगी है।"[2] अत. यह समझा जाता था कि भारत की उन्नति मे बाधा अग्रेजी उपनिवेशवादी नीति नही अपितु भारतीयो का सामाजिक और आर्थिक पिछडापन था अथवा प्रतिक्रियावादी ऐंग्लो-इण्डियन नौकरशाही ही था।

उदारवादी राजनीतिक क्षेत्र मे क्रमबद्ध विकास की धारणा मे विश्वास करते थे, और इस तथ्य से परिचित थे कि एकदम ही प्रतिनिध्यात्मक शासन के लक्ष्य को प्राप्त नही किया जा सकता। तात्कालिक रूप मे वे प्रशासन मे आवश्यक सुधारो, विधायी परिषदो, सेवाओ, स्थानीय स्वायत्त सस्थाओ और रक्षा सेवाओ मे सुधार से ही सन्तुष्ट थे और वे क्रान्तिकारी परिवर्तन के विरुद्ध थे।[3] उदारवादी नेता यद्यपि क्रमिक सुधार मे विश्वास करते थे लेकिन इन वैधानिक सुधारो का अन्तिम लक्ष्य भारतीयो के लिए स्वाशासन की प्राप्ति थी। वे ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत स्वशासन की स्थापना चाहते थे। **श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने** काग्रेस के दूसरे अधिवेशन मे ही स्वासासन की बात कही थी, और 1906 के काग्रेस अधिवेशन मे दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता मे काग्रेस द्वारा स्वाशासन के इस लक्ष्य को स्पष्ट रूप से अपनाया गया।[4] काग्रेस के प्रथम अधिवेशन से ही नरम शब्दावलियो का प्रयोग प्रस्तावो मे किया गया। अध्यक्षीय भाषण मे नम्रता से कहा गया कि "अधिकारी वर्ग के प्रति राजभक्ति

---

1 ताराचन्द्र, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, सूचना प्रसारण मत्रालय नइ दिल्ली 1972 पृ० 485

2 बी० एल० ग्रावर तथा यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि० रामनगर, नई दिल्ली 2002 पृ० 300

3 सुभाष कश्यप, भारत का सवधानिक विकास एव स्वाधीनता सघर्ष पृ० 54

4 सुभाष कश्यप वही, पृ० 54

का इजहार करती हुई कांग्रेस केवल इतनी माग करती है कि सरकार के आधार को विस्तृत किया जाय और जनता को सरकार मे उसका उचित हिस्सा दिया जाय।[1]

उदारवादी राष्ट्रवादी ब्रिटिश लोकतत्र, पाश्चात्य समाज की दृष्टि से पाश्चात्य विचारको से लॉक, रूसो, मिल इत्यादि से प्रभावित थे और वे ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही सवैधानिक सुधारो की माँग करने पर विश्वास करते थे।[2]

उदारवादी नेताओ मे शीर्षस्थ, गोपाल कृष्ण गोखले ने अपने गुरु **महादेव गोविन्द रानाडे** के उस राष्ट्रीयकरण का उल्लेख किया जिसे उन्होने नरमपथी विचारधारा के सन्दर्भ मे दिया था। रानाडे ने कहा था "उदारवाद एव मितवादी हमारे सघ के सिद्धान्त होगे। उदारवाद की भावना मे जाति और धर्म के मतमतान्तरो से मुक्ति, मनुष्य एव मनुष्य के बीच न्याय की कामना करने वाले सभी लोगो के प्रति श्रद्धा, शासको के प्रति वैधानिक रूप मे उचित स्वामिभक्ति, पर साथ ही कानूनी हक के रूप में लोगो के लिए समानता के अधिकार की माग सन्निहत है। मितवाद मे यह विचार सन्निहत है कि उन आदर्शो अथवा लक्ष्यो के लिए व्यर्थ मे पागल न हुआ जाए जिन्हे प्राप्त करना असम्भव है अथवा जो पहुँच से बाहर दूर है, बल्कि प्रतिदिन उन आदर्शो एव अधिकारो की प्राप्ति के लिए स्वाभाविक विकास के रूप मे कदम उठाये जाते रहे जो निकटवर्ती हो और उन्हे आपसी समझदारी तथा सद्भावना से प्राप्त किया जा सकता है।[3]

रानाडे के इस स्पष्टीकरण से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के उन नेताओ के विचारो, सत्ता के साथ उनके सम्बन्धो तथा उनकी कार्य प्रणाली की स्पष्ट झलक प्राप्त होती है, जिन्होने राजाराममोहन राय,

---

1 सुभाष कश्यप, भारत का सवैधानिक विकास एव स्वाधीनता सघष पृ० 56 57

2 ताराचन्द भारतीय स्वतत्रता आन्दोलन का इतिहास सूचना एव प्रसारण मत्रालय नई दिल्ली 1972-पृ० 482

3 डी० वी० माथुर गोखले ए पोलिटिकल बायोग्राफी मानकतॉज बम्बइ 1966 37

एव उनके अनुयायियो द्वारा भारतीय सदर्भ मे जिसने आरम्भ किए गए उदारवादी परम्परा को विकसित किया।

भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस जिसे भारतीय स्वतत्रता सग्राम का नेतृत्व किया, ब्रिटिश भारत का सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक सगठन था। 1885, जबकि इसका जन्म हुआ, से लेकर 1905 तक भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस पर उन्ही नेताओ का प्रभुत्व रहा जिन्हे कि उदारवादी मिद्यवादी कहा गया। इसलिए 1885 से 1905 तक की अवधि को भारतीय उदारवाद का युग कहा गया। सन् 1885 एव 1905 के मध्य का समय भारतीय राष्ट्रवादिता के बीजारोपण का समय था, और उस दौर के राष्ट्रवादीयो ने उस बीज को अच्छी तरह और गहराई मे बोया।----- परिणाम यह हुआ कि उन्होने एक ऐसा समान राजनीतिक एव आर्थिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसमे भारत के विभिन्न वर्गो के लोगो को विभाजित करने की जगह एकताबद्ध कर दिया। बाद मे भारतीय जनता उस कार्यक्रम से सम्बद्ध हुयी और उसने एक सशक्त सघर्ष प्रारम्भ किया।[1]

1905 के पश्चात उदारवादी नेताओ के प्रभुत्व तथा नेतृत्व को उग्र पथियो द्वारा चुनौती मिली और 1907 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस स्पष्ट रूप से दो सम्प्रदायो मे विभाजित हो गयी। उदारवादी एव उग्रवादी सम्प्रदाय।[2] 1915 तक काग्रेस के ये दोनो सम्प्रदाय अलग-अलग कार्य करते रहे। 1916 मे एनीबेसेण्ट के प्रयत्नो से दोनो सम्प्रदायो मे मेल हुआ, किन्तु यह विलय दीर्घकालीन न रह सका।[3]

उग्रवादियो के अलावा इस समय तक नरम पधियो को एक अन्य क्षेत्र से भी चुनौती मिलनी प्रारम्भ हो गयी थी। यह शक्ति थी महात्मा गॉधी का भारत के राजनीतिक पटल पर अभ्युदय, जो एक

1 विपिन चन्द्र, अमलेश त्रिपाठी, वरुण द भारतीय स्वतत्रता सगाम पृ० नशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया नयी दिल्ली, 1972 पृ० 79-80

2 ताराचन्द भारतीय स्वतत्रता आन्दोलन का इतिहास सूचना प्रसारण मत्रालय नई दिल्ली 1972 पृ० 486

3 ताराचन्द्र, वही, पृ० 486

अखिल भारतीय नेता के रूप मे सामने आये और उन्होने तथा उनके समर्थको ने शीघ्र ही लगभग अन्य सभी राजनीतिक नेताओ के प्रभाव को पीछे छोड दिया, फलत. नरमपथियो के प्रभाव मे तेजी से ह्रास होने लगा।[1] अत: उन्होने काग्रेस से अपना नाता तोड लिया और 1918 मे भारतीय उदारवादी सघ (इण्डियन लिबरल फेडरेशन) की स्थापना की और इस सघ के माध्यम से अपने उदारवादी, मितवादी, सिद्धान्तो पर अमल करते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन मे अपनी भूमिका निभाते रहे। 1918 के बाद काग्रेस मे गाधी जी के नेतृत्व के सामने इन नेताओ को मात खानी पडी, और एक बडी राजनीतिक शक्ति के रूप मे उदारवादी अथवा नरमपथी, अपने प्रभाव को खो बैठे।[2]

उदारवादियों की सफलताए और भारतीय राजनीतिक मे इनका स्थान—बीसवी शताब्दी के आरम्भिक वर्षो मे उग्रवादियो ने इस काल की उपलब्धियो की निन्दा की। इसको राजनीतिक भिक्षावृत्ति (Political Mendicancy) का नाम दिया। लाला लाजपत राय ने इसे अवसरवादी आन्दोलन कहा।[3] उग्रवादियो के अनुसार उदार राष्ट्रवादियो द्वारा अपनाई गयी वैधानिक पद्धति प्रभावदायक नही थी। सन् 1918 तक उनकी अनेक प्रार्थनाओ और याचनाओ के बावजूद भी अग्रेजी शासन ने उनकी नितान्त उचित एव वैध मागो के प्रति कोई रूचि नही दिखायी थी। उन्होने जिन साधनो का प्रयोग किया, वे अत्यन्त साधारण कोटि के थे तथा ब्रिटिश शासन पर उनका कोई प्रभाव नही पडा। इन सबके अतिरिक्त उदार राष्ट्रवादिता की धारा का नेतृत्व करने वाले व्यक्ति जन नेता नहीं थे। इनका साधारण जनता से कोई सम्पर्क नही था। **गुरुमुख निहालसिह** लिखते है, ''सम्भवत: गोखले को छोडकर काग्रेस के नरम नेताओ मे स्वतत्रता के लिए व्यक्तिगत बलिदान करने और आपत्तियॉ सहने को कोई तैयार नही था।''[4]

---

1 विपिन चन्द्र, अमलेश त्रिपाठी, वरुण द भारतीय स्वतत्रता सग्राम नशनल बुक ट्रस्ट इण्डियन 1972-पृ० 81 82

2 आर० सी० मजूमदार भारती मे स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास 1971 पृ० 327

3 बी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि० रामनगर नई दिल्ली 2002 पृ० 301

4 इन्द्र विद्या वाचस्पति भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम का इतिहास पृ० 18

वर्तमान समय मे उदार राष्ट्रवादियो के कार्यो की चाहे कैसी ही आलोचना क्यो न की जाय, इस बात से इकार नही किया जा सकता कि उन परिस्थितियो मे उदार राष्ट्रवादियो द्वारा अपनाया गया मार्ग नितान्त औचित्यपूर्ण और व्यवहारिक था। भारतीय जनता मे अपनी जडे गहरी जमा लेने के पहले ही यदि उनके द्वारा ब्रिटिश राज के अन्त या भारतीय स्वतन्त्रता की बात कहना प्रारम्भ कर दी जाती, तो यह बचकाना बात तो होती ही, सम्भवतया इससे इस सस्था के अस्तित्व पर ही कुठारा घात हो जाता। उनके द्वारा अपनाया गया मार्ग नितान्त स्वाभाविक और विवेकपूर्ण था और उदारवादी समय की गति के अनुसार आगे बढने मे पीछे नही रहे। उदारवादियो द्वारा किये गये कार्यो के महत्व को निम्न रूपो मे देखते है।[1]

ब्रिटिश शासन के दोष स्पष्ट करना—काग्रेस के द्वारा अपनी स्थापना के समय से ही उदारवादियो ने ब्रिटिश शासन की बुराईया बताने और उसे जनहितकारी रूप प्रदान करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये गए। नौकरशाही की बुराइया बताने के क्रम मे उन्होने विदेशी शासन के दोष स्पष्ट कर दिए और उग्रवादी तत्व को विदेशी शासन के विरुद्ध लडने के लिए शक्तिशाली शस्त्र प्रदान किया। इस प्रकार शुरू के दिनो मे भी काग्रेस "सरकार का एक प्रतिपक्ष बन गयी, किन्तु वह कोई मित्रतापूर्ण परामर्शदाता प्रतिपक्ष न बनी अपितु वह एक ऐसा प्ररिपक्ष बनी, जिसने सरकार की हैसियत और अधिकार को चुनौती दी।[2]

भारतीय राष्ट्रीयता के जनक—उदारवादियो के कार्य तात्कालिक रूप मे अधिक महत्वपूर्ण न होते हुए भी ऐसे थे, जिनके सुदूरव्यापी और अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम हुए। भारत मे राष्ट्रीयता के जनक ये उदार राष्ट्रवादी ही थे। उन्होने देशवासियो को शिक्षा दी कि वे साम्प्रदायिक और प्रान्तीय

---

1 R C Majumdar _ History of Freedom movement in India Cal Firma K L Mukhopadhyay 1971 P-352

2 M C Donald Government of India

धरातलो से उठकर सामान्य राष्ट्रीयता की भावना को अपने हृदय मे विकसित करे। **श्री गुरुमुख निहालसिंह के शब्दो में** "प्रारम्भिक काग्रेस के राजभक्ति की प्रतिज्ञाओ, नरम नीति, आवेदन ही नही अपितु भिक्षावृत्ति के बावजूद भी उन दिनो राष्ट्रीय जागरण, राजनीतिक शिक्षा, भारतीयो को एकता के सूत्र मे आबद्ध करने तथा उनमे सामान्य राष्ट्रीयता की भावना का निर्माण करने मे कठिन परिश्रम किया था।"[1]

भारतीयो को राजनीतिक शिक्षा— उदारवादियो ने भारतीय जनता को राजनीतिक शिक्षा प्रदान की और उसमे प्रजातन्त्र तथा स्वतत्रता के आदर्शो को प्रसारित किया। समाचार पत्रो के जरिये उन्होने निरतर सरकार के गुण दोष का विवेचन किया। उन्होने उच्च सरकारी अफसरो और ब्रितानी ससद को अनेको याचिकाये और स्मरण पत्र भेजे। प्रत्यक्ष रूप मे वे याचिकाए सरकार को सबोधित होती थी लेकिन उनका वास्तविक उद्देश्य भारतीय जनता को शिक्षित करना होता था। उदाहरण स्वरूप 1891 मे पूना सार्वजनिक सभा द्वारा सावधानीपूर्वक तैयार किये हुये स्मरण पत्र का सरकार की ओर से दो पक्तियो मे उत्तर आया और उस पर गोखले ने निराशा प्रकट की तो **न्यायाधीश रानाडे** ने उत्तर देते हुये कहा

"आप यह महसूस नही करते कि हमारे देश के इतिहास मे हमारा क्या स्थान है। ये स्मरण पत्र सरकार को नाममात्र के लिए सबोधित किये जाते है। वास्तव मे वे सबोधित होते है जनता को, ताकि वह जान सके कि इन मामलो मे कैसे सोचा जाता है। क्योकि इस तरह राजनीति यहॉ के लिए एकदम नयी है, अत: किसी और परिणाम की आशा किए बगैर इस काम को आने वाले अनेको वर्षो तक करते रहना आवश्यक है।"[2]

---

1 जी० एन० सिह भारत का वैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास पृ० 12।

2 विपिन चन्द्र, अमलेश त्रिपाठी वरुण दे स्वतत्रता सग्राम नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया नयी दिल्ली 1972 पृ० 67

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का आधार तैयार करना— यद्यपि उदारवादियो के द्वारा स्वय गम्भीरतापूर्वक स्वतंत्रता की मॉग या इस हेतु कोई आन्दोलन नही किया गया, लेकिन एक पृष्ठभूमि तैयार की, जिसके आधार पर ही भविष्य मे स्वतत्रता हेतु विभिन्न आन्दोलन किये जा सके। **श्री के० एम० मुन्शी लिखते है कि** "यदि पिछले 30 वर्षो मे काग्रेस के रूप मे एक अखिल भारतीय सस्था देश के राजनीतिक क्षेत्र मे कार्यरत न होती तो ऐसी अवस्था मे गाधी जी का कोई महान आन्दोलन सफल न होता।"

पट्टाभि सीतारमैय्या के अनुसार-"जिस समय भारत के राजनीतिक क्षेत्र मे उन्होने पदार्पण किया, उस समय वे अकेले थे। उन्होने जो नीतिया अपनायी, उनके लिए हम उन्हे दोष नही दे सकते। किसी भी आधुनिक इमारत की नीव मे 6 फुट नीचे जो ईट, चूना और पत्थर गढे है, क्या उन पर कोई दोष लगाया जाता है? क्योकि वही तो आधार है जिसके ऊपर सारी इमारत खडी हो सकी है। सर्वप्रथम औपनिवेशिक शासन, फिर साम्राज्य के अन्तर्गत होम रूल, उसके बाद स्वराज्य तथा सबके शीर्ष पर स्वाधीनता की मजिले एक के बाद एक ही बन सकी है।"[1]

उदारवादी राष्ट्रीयता की तात्कालिक सफलता 1892 का भारतीय परिषद अधिनियम द्वारा यद्यपि यह भारतीयो को सन्तुष्ट न कर सका लेकिन फिर भी देश के वैधानिक विवाद की दिशा मे यह एक निश्चित प्रगतिशील चरण था।[2] अपनी सफलताओ के होते हुए भी आरम्भिक राष्ट्रवादियो ने राष्ट्रीय आन्दोलन की नीव बहुत दृढ रखी ताकि उस पर यह आन्दोलन अग्रसर हो सके और इसलिए ये लोग आधुनिक भारत के निर्माताओ मे उत्तम स्थान के अधिकारी है। **गोपाल कृष्ण गोखले**— "हमे यह नही भूलना चाहिए कि हम देश की उन्नति के उस चरण पर हे जहॉ हमारी उपलब्धियॉ थोडी ही

---

1 पट्टाभि सीतारमय्या हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन नशनल काग्रस वाल्यूम I (1885 1935) पद्मा पब्लिकेशन्स लिमिटेड बम्बई, 1935

2 ताराचन्द भारतीय स्वतत्रता आन्दोलन का इतिहास सूचना एव प्रसारण मत्रालय नई दिल्ली 1972, पृ० 488

होगी और हमारी निराशाए अधिक और कठोर। विधि का ऐसा ही विधान है कि हमे इस सघर्ष मे यही भूमिका मिली है और जब हमने अपना कार्य सम्पन्न कर दिया है तो हमरा उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। नि.सन्देह हमारी देशवासियों की आने वाली पीढियॉ अपनी सफलताओ से भारत की सेवा करेगी। हम आज की पीढी अपनी असफलताओ से ही इसकी सेवा कर सतोष प्राप्त करे। यद्यपि यह बहुत कठिन है, इन सफलताओ से ही वह शक्ति आएगी जो अन्त मे बडे कार्य करने मे सफल होगी।''[1]

विपिन चन्द्र—''1885 से 1905 तक का काल भारतीय राष्ट्रवाद मे बीज बोने का समय था और आरम्भिक काल के राष्ट्रवादियो ने ये बीज, गहरे और अच्छे ढग से बोए।''[2]

भारत में उग्रवाद

भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षो मे जिन उदार राष्ट्रवादियो के प्रभाव मे थी, उनका लक्ष्य भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था मे क्रमिक सुधार करना था, और जो इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सवैधानिक साधनो के प्रयोग मे विश्वास रखते थे, लेकिन 1885 ई० से 1905 ई० के बीच के काल मे भारत और विदेशो मे कुछ ऐसी घटनाए घटित हुयी और कुछ ऐसी शक्तियो क्रियाशील हुयी जिन्होने भारतीय राष्ट्र के अपेक्षाकृत युवा वर्ग को पूर्ण स्वतत्रता की मॉग के लिए प्रेरित किया, और सवैधानिक साधनो के प्रति अविश्वास की भावना को जन्म दिया। पूर्व स्वतत्रता की मॉग और उसकी प्राप्ति हेतु जन आन्दोलन के मार्ग को अपनाने वाली इस धारा को ही 'उग्र राष्ट्रीयता' के नाम से जाना जाता है।

---

1 लाजपत राय, यग इण्डिया, पृ० 156

2 बी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास एस० चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर नई दिल्ली, 2002 पृ० 302

उदारवादी राष्ट्रवादियो से भिन्न दूसरे प्रकार के राष्ट्रवादी जिन्हे गरमपथी अथवा अतिवादी कहा गया, अपने विचारो की प्रेरणा भारतीय परम्परा, बैद्धिक साहित्य, तथा ऐतिहासिक महापुरूषो से ग्रहण कर रहे थे। पुनः इनका लक्ष्य राष्ट्रवादी एकता सुदृढ करते हुए ब्रिटिश शासन से मुक्ति का था, और इसके लिए वे किसी भी प्रकार की कार्य प्रक्रिया को, जहॉ तक कि हिसा को भी समान रूप से मान्यता देने मे हिचकिचाहट नही करते थे।

1892 के पश्चात् जबकि नरमपथियो के सुधार प्रस्तावो को स्वीकार नही किया गया तो गरमपथियो को अपने विचारो को व्यापक रूप मे क्रियान्वित करने का अवसर उपलब्ध हो गया। इस प्रकार 1905 तक दोनो ही दृष्टिकोण के राष्ट्रवादियो द्वारा आन्दोलन को सचालित करने का अवसर मिला तथा प्रत्यक्ष रूप से विरोधी होते हुए भी परोक्षत राष्ट्रवादी आन्दोलन के विकास मे दोनो ने ही सम्पूरक भूमिका निभाई क्योकि नरमपथियो द्वारा यदि एक ओर आन्दोलन को आरभिक रूप से ब्रिटिश दमन से बचाया (क्योकि उनका दृष्टिकोण विधिक और सविधानिक था) तो गरमपथियो से भारतीयो के क्षीण मनोबल तथा सकल्प को पुनः प्राप्त करने मे सहायता दी। यही कारण है कि इस आरभिक चरण मे रखी गयी सुदृढ नीति के सहारे ही राष्ट्रवादी स्वाधीनतावादी आन्दोलन का विकास सम्भव हुआ।[1]

उदारवादियो, तथा उग्रवादियो दोनो मे लक्ष्य, विचार स्रोत तथा कार्यपद्धति को लेकर अन्तर था लेकिन दोनो ही समान रूप से राष्ट्रवादी तथा स्वाधीनतावादी थे।

उग्रराष्ट्रीयता के उदय के कारण—उग्रराष्ट्रीयता का उदय न तो आकस्मिक था और न ही अन्य परिस्थितियो से अलग एक पृथक् परिवर्तन, वरन् यह तो विभिन्न घटनाओ, परिस्थितियो और शक्तियो

1 आर० सी० अग्रवाल भारतीय सविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन एस० चन्द कम्पनी लि० रामनगर नई दिल्ली 1992 पृ 263

का स्वाभाविक परिणाम था।[1] उग्र राष्ट्रीयता के उदय के कारणो की व्याख्या हम निम्न सदर्भ मे कर सकते है।

सवैधानिक सुधार की दिशा मे राष्ट्रीय काग्रेस के 7 वर्षो के प्रयत्नो का परिणाम 1882 का भारतीय परिपद अधिनियम था लेकिन यह अधिनियम स्वय मे निहित कमियो और त्रुटियो के कारण राष्ट्रीय काग्रेस या सामान्य भारतीयो को सन्तुष्ट न कर सका। इस अधिनियम मे औपनिवेशिक तथा प्रान्तीय विधान परिषदो को अतिरिक्त सदस्यो की सख्या बढाकर 6 से 10 और फिर 10 से 16 कर दी गई। इनमे से कुछ का निर्वाचन नगरपालिकाओ, जिला बोर्डो आदि के जरिए अप्रत्यक्षत: किया जा सकता था, लेकिन सरकारी बहुमत बरकरार रहा। सदस्यो को वार्पिक बजट पर बहस करने का अधिकार भी दे दिया गया, लेकिन उस पर मतदान करने या उम बारे मे कोई सशोधन दाखिल करने के अधिकार से उन्हे वचित रखा गया। वे सवाल तो पूछ सकते थे, लेकिन उनका जबाव आने पर पूरक सवाल नही कर सकते थे और जवाबो पर बहस भी नही कर सकते थे। बहरहाल, इस सशोधित औपनिवेशिक विधान परिपद की बैठक भी 1909 तक साल मे ओसत 13 दिन की दर से ही हुई और गैर-सरकारी भारतीय सदस्यो की सख्या थी, 24 मे सिर्फ 5।[2] अधिनियम की उपर्युक्त त्रुटियो के कारण सवैधानिक पद्धति के आधार पर कुछ प्राप्त कर सकने की आशा समाप्त हो गयी और अब काग्रेस के अन्दर तथा बाहर एक ऐसे वर्ग का जन्म हुआ जो क्रमिक परिवर्तन के स्थान पर आधारभूत परिवर्तन और प्रार्थना के मार्ग के स्थान पर आन्दोलन के मार्ग को अपनाने पर जोर देने लगा।

उग्रवादी राष्ट्रवादी 1892 के अधिनियम से पूर्णत असन्तुष्ट थे। इसे वे अपनी मॉगो के साथ मजाक मानते थे। परिपदे नपुसक थी और सरकार की सत्ता पूर्णत निरकुश। अब उनकी मॉग यह थी कि

1 आर० सा० अग्रवाल, वही, पृ० 264

2 विपिन चन्द्र भारत का स्वतत्रता सघर्ष हिन्दी माध्यम कायान्वयन निदशालय दिल्ली विश्वविद्याल 1990 पृ०-77

विधान परिषदो मे गैर-सरकारी निर्वाचित सदस्यो का बहुमत हो और उन्हे बजट पर मतदान करने तथा इस तरह सार्वजनिक कोष पर नियत्रण रखने का अधिकार है। उनका नारा था "अप्रतिनिधित्व के बिना कर नही।"[1] असल मे, उन्होने अपनी माँगो को धीरे-धीरे एक शक्ल दी। बहुत से नेताओ ने जैसे 1904 मे दादाभाई नौरोजी 1905 मे गोपाल कृष्ण गोखले और 1906 मे लोकमान्य तिलक ने कनाडा और आस्ट्रेलिया के स्वशासित उपनिवेशो की तर्ज पर भारत मे स्वशासन की माँग रखनी शुरू कर दी।

1893 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के लाहौर अधिवेशन के सभापति पद से बोलते हुए **दादा भाई नौरजी ने ये विचार व्यक्त किए** "1892 के अधिनियम के अनुसार किसी सदस्य को कोई प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार नही होगा ना ही वित्तीय विचार विनिमय मे सदन का मत विभाजन मागने का और न ही इस अधिनियम के अधीन बनाए नियमो अथवा इसके अधिकार द्वारा दिये प्रश्नो के उत्तर मे ऐसा करने का अधिकार होगा। इस अधिनियम के अधीन दिये गए अधिकार इतने व्यर्थ है। इस ऐक्ट के अधीन बनाए गए नियमो को समाप्त करने अथवा उनमे परिवर्तन करने का अधिकार उस सभा को नही होगा जो कानून तता नियम बनाने के लिए बुलाई जाएगी। इस प्रकार हम लोग सभी अभिप्राय तथा उद्देशयो के लिए एक मनमानी सरकार के अधीन होगे।"[2]

चुनाव के नियम बहुत ही असतोपजनक थे। **गोखले के शब्दो मे** "अधिनियम की वास्तविक कार्यशीलता से उसके खोखलेपन का ठीक-ठीक ज्ञान हुआ। बम्बई प्रेसिडेन्सी को 8 स्थान मिले। भारत सरकार ने नियमो के अनुसार उनमे से 2 तो बम्बई विश्वविद्यालय तथा, नगर निगम को दे दिये। बम्बई सरकार ने 2 स्थान यूरोपीय व्यापार समुदाय को दे दिये, और एक स्थान दक्कन के सरकारो को दे दिया, एक सिन्ध के जमीदारो को, ओर केवल दो स्थान साधारण जनता को मिले।"[3]

---

1 विपिन चन्द्र वही पृ० 77

2 बी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास एस० चन्द कम्पनी लि० रामनगर नई दिल्ली, 2002 पृ० 383

3 दुर्गादास कर्जन से नहरू तक रूपा पपरबैक 1969 पृ० 468

निष्कर्ष के रूप मे हम यह कह सकते है कि 1892 का अधिनियम काग्रेस की मागो से बहुत ही कम था।

काग्रेस के प्रारम्भिक नेता पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित थे और अपनी मानसिक पृष्ठभूमि के कारण ब्रिटिश शासन को भारत के हित मे मानते थे, लेकिन कालान्तर मे धार्मिक पुनरूत्थान के परिणाम-स्वरूप काग्रेस मे ही एक ऐसे वर्ग का जन्म हुआ, जो भारतीय धर्म, सभ्यता और सस्कृति के गौरव से परिचित था और जिसका विश्वास विदेशी शासन की समाप्ति मे था।

स्वामी वेवेकानन्द ने 1893 मे शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन मे हिन्दू धर्म की विजय दुन्दुभी बजायी थी और अरविन्द घोष तथा तिलक आदि उग्रवादी नेता धार्मिक पुनस्थान के ही परिणाम है। **अरविन्द घोष** ने कहा था कि "स्वाधीनता हमारा लक्ष्य है और हिन्दुत्व ही हमारी यह आकाक्षा पूर्ण कर सकता है।"[1] धार्मिक पुनरूत्थान से प्रभावित होने के कारण ही तिलक ने भारत की स्वाधीनता के लिए हिन्दू उत्सवो और हिन्दू सगठन पर बल दिया था। ये उग्रवादी नेता भारतीय स्वतत्रता की प्राप्ति को अपना परम पवित्र धार्मिक कर्तव्य समझते थे।

आरम्भिक काल के नेताओ ने अपने अथक अध्ययन तथा लेखो द्वारा लोगो को भारत मे अग्रेजी राज्य के सच्चे स्वरूप को समझने का प्रयत्न किया। उन्होने आकडो से यह सिद्ध किया कि अग्रेजी राज्य तथा उसकी नीतिया ही भारत की दरिद्रता का मूल कारण है। दादा भाई नौरोजी ने अग्रेजी राज्य की शोषण नीतियो का अनावरण कर दिया और कहा कि यह राज्य भारत को दिन प्रतिदिन लूटने मे रत है।[2] इमी प्रकार आनन्द चारलू, आर० एल० मुधोतकर, दिनशा वाचा, गोपाल कृष्ण गोखले,

---

1 विपिन चन्द्र भारत का स्वतत्रता सघप, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदशालय दिल्ली विश्वविद्यालय 1990, पृ० 89

2 बी० एल० ग्रावर तथा यशपाल आधुनिक भारत का इतिहाम एस० चन्द कम्पनी लि० रामनगर नई दिल्ली 2002, पृ० 304
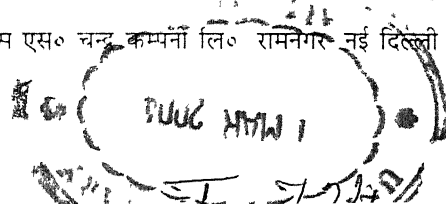
मदनमोहन मालवीय इत्यादि अन्य राष्ट्रीय नेताओ ने अग्रेजी राज्य के ढोल की पोल खोल दी और बताया कि इस राज्य का वास्तविक रूप केवल शोपक ही है।[1] श्री सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने यह स्पष्ट किया कि सेवाओ की भर्ती मे अग्रेजो की कथनी और करनी मे बहुत अधिक अन्तर है। काग्रेस के दूसरे अधिवेशन मे ही भारत की बढती हुई दारिद्रता की और ध्यान आकर्पित किया गया और यह प्रस्ताव प्रत्येक वर्प पारित किया जाता था। इसके लिए उन्होंने सैनिक और असैनिक पदो पर ऊँचे-ऊँचे वेतन, गृहशासन के बढ़ते हुए व्यय, भेदभाव पूर्ण आयात तथा निर्यात की नीति, अदूरदर्शी भूमि कर नीति, भारत के उद्योगीकरण के प्रति उदासीनता और भारतीयो को अच्छे पदो और सेवाओ से वचित रखना इत्यादि तथ्यों को उत्तरदायी ठहराया। रानाडे की Essays in Indian Economics दादा भाई नौरोजी की Indian Poverty and Un-British Rule in India (1901) इत्यादि पुस्तको ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नई पीढी के नेताओ ने इन्ही पुस्तको से तथ्य लेकर अग्रेजी राज्य की आलोचना की।[2]

काग्रेस के पहले पन्द्रह-बीस वर्ष की उपलब्धियो से तरुण लोग सन्तुष्ट नही थे। उनका अग्रेजो की न्याययिका तथा बराबरी की भावना पर कोई विश्वस नही था। वे लोग शातिमय और सवैधानिक ढगो के आलोचक बन गए और वे समझने लगे कि याचना, प्रार्थना तथा प्रतिवाद (Patition Prayer and Protest) करने की नीति से कुछ नही मिलने वाला। उन्होने यूरोपीय साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए यूरोपीय ढग ही अपनाने पर बल दिया।[3]

1905 मे लाला लाजपतराय ने इग्लैण्ड से लौटने पर अपने देशवासियो को यह बतलाया कि अग्रेजी प्रजातन्त्र अपनी ही समस्याओ मे इतना उलझा हुआ है कि उनके पास हमारी समस्याओ के

---

1 बी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल, वही, पृ० 304

2 बी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास एम० चन्द कम्पनी लि० रामनगर नई दिल्ली 2002, पृ० 304

3 दुर्गादास कर्जन मे नेहरू ओर उसक पश्चात् रूपा पपरबेक 1969 पृ० 468

लिए कोई समय नही। वहॉ के समाचार पत्र हमारा पक्ष प्रस्तुत नही करेगे और वहॉ किसी को अपनी बात सुनने का अवसर प्राप्त करना बहुत कठिन है। उन्होने कहा कि यदि आप स्वतत्रता चाहते है तो स्वय कार्य करना पडेगा और अपनी तत्परता के स्पष्ट प्रमाण देने होगे।[1]

उग्रवादी राष्ट्रवादीयो ने उदारवादियो पर यह दोष लगाया कि वे केवल मध्यम वर्गी बुद्धिजीवियो के लिए काम करते है और काग्रेस की सदस्यता इन मध्यम वर्गीय लोगो तक ही सीमित है। उन्हे यह भय है कि यदि जन साधारण इस आन्दोलन मे आ गए तो उनका नेतृत्व समाप्त हो जाएगा। अत· उदारवादी दल वालो को देशभक्ति के नाम पर व्यापार करने का दोपी ठहराया गया। **तिलक ने कांग्रेस** को चापलूसो का सम्मेलन (Congress of Flatterers)[2] और काग्रेस के अधिवेशनो को छुट्टियो का मनोरजन (a holiday recreation) बतलाया और **लाला लाजपतराय** ने काग्रेस सम्मेलनो को **"शिक्षित भारतीयों का वार्षिक राष्ट्रीय मेला "**[3] (The annual national festival of educated indians)। दोनो ही काग्रेस कार्यो के बडे आलोचक थे। तिलक ने तो यहॉ तक कहा था, "यदि हम वर्ष मे एक बार मेढक की भॉति टर्राए तो हमे कुछ नही मिलेगा।"[4]

लार्ड बेकन का यह कथन भारत के उग्रवाद पर पूरे तौर से लागू होता है कि 'अधिक दरिद्रता और आर्थिक असन्तोष क्रान्ति को जन्म देता है।"[5] सरकार द्वारा निरन्तर भारत विरोधी नीतिया अपनायी जा रही थी। शासन के द्वारा 1894 मे विदेशी माल पर आयात कर समाप्त कर दिया गया, इससे देशी समान महॅगा हो गया और विदेशी सामान सस्ते दामो पर बिकने लगा। सरकार की इस

---

1 लाजपत राय यग इण्डिया, पृ० 170

2 रामगोपाल लोकमान्य तिलक, पृ० 130

3 लाजपतराय यग इण्डिया, पृ० 170

4 बी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास एस० चन्द कम्पनी लि० रामनगर, नई दिल्ली 2002 पृ० 305

5 ए० आर० देसाई भारतीय राष्ट्रवाद की समाजिक पृष्ठभूमि द मकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लि० 1976 पृ० 181।

नीति के कारण ही स्वदेशी आन्दोलन चला। इसके अलावा शिक्षण सस्थाओ की वृद्धि के साथ-साथ शिक्षित भारतीयो की सख्या मे तेजी से वृद्धि हो रही थी, लेकिन शासन द्वारा शिक्षित भारतीयो को उनकी योग्यता के अनुसार पद प्रदान नही किए जारहे थे। इससे भी उन्हे निराशा और तीव्र असन्तोष की भावना उत्पन्न हुई। **श्री ए० आर० देसाई के अनुसार** "भारत मे उग्रवाद के उदय का एक प्रमुख कारण शिक्षित भारतीयो मे बेकारी से उत्पन्न राजनीतिक असन्तोष था।"[1]

उन्नीसवी शताब्दी के अतिम वर्षो मे भारत की बिगडती हुई आर्थिक स्थिति ने भारतीय राष्ट्रीय प्रक्रिया मे उग्रवाद के उदय मे विशेष योगदान दिया। 1896-97 और 1899-1900 के भीषण अकाल और महाराष्ट्र के प्लेग से लाखो लोग मृत्यु ग्रस्त हो गए।[2] सरकारी सहायता कार्य बहुत थोडा था तथा बहुत धीरे-धीरे होता था और व्यवस्था भी ठीक नही थी। **तिलक के अनुसार**— "सरकारी अधिकारी कठोर और भ्रष्ट थे और सहायता के स्थान पर अधिक हानि कारक थे। उन्होने तो यहॉ तक कहा, "प्लेग हमारे लिए सरकारी प्रयत्नो से कम निर्दयी है।"[3] दक्कन मे दगे हो गये। सरकार ने लोक मत तथा दगो को दबाने का प्रयत्न किया। जनता ने अकालो को भी सरकार की नीतियो का परिणाम ही बताया। 1903 की काग्रेस के अध्यक्षीय भाषण मे लाल मोहन घोष ने 1902 के दरबार का उल्लेख इस प्रकार किया, "एक सरकार का निर्धन जनता पर भारी कर लगाकर एक बडे भारी समारोह का मनाना जिसमे अतिशबाजी और भव्य दृश्यो पर रुपया व्यय किया जाए, जबकि लाखो लोग भूख से मर रहे है, इससे अधिक हृदयहीनता कुछ नही हो सकती।"[4] इस तरह के व्यवहार को जनता सहन न कर सकी और इसके परिणामस्वरूप जनता मे इतना रोष फैल गया कि रैण्ड और उसके एक साथी अर्येस्ट को एक नवयुक द्वारा गोली से उडा दिया गया।

---

1 ए० आर० दसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि-पृ० 182

2 बी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास एस० चन्द कम्पनी लि० रामनगर नई दिल्ली 2002 पृ० 305

3 राम गोपाल लोकमान्य तिलक पृ० 137

4 Congress Presidential Addresses (Madras) Vol I P -62

उग्र राष्ट्रीय उदय का एक अन्य कारण था—अग्रेजो का भारतीयो के प्रति अहकार युक्त व्यवहार और आग्ल भारतीय पत्रो का भारत विरोधी दृष्टिकोण और प्रसार। दिन प्रतिदिन के जीवन मे भारतीयो के साथ अपमान जनक व्यवहार किया जाना, अनेक बार ब्रिटिश सैनिको और अन्य व्यक्तियो ने भारतीयो के साथ घातक मारपीट की और कई बार आहत व्यक्ति मर भी गये, लेकिन अग्रेज अपराधी दण्ड से बच गये या उन्हे बहुत साधारण सा दण्ड दिया गया। लार्ड रोनाल्डशे अपनी पुस्तक मे इस प्रकार की दो घटनाओ के उदाहरण देते है।[1] इन अपराधो और हत्याओ से भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण बात यह थी कि आग्ल भारतीय समाचार पत्रो द्वारा इस प्रकार के व्यवहारो को प्रोत्साहित किया जाता था। लाहौर से प्रकाशित आग्ल भारतीय दैनिक 'दो सिविल एण्ड मिलिट्री गजट' तो भारतीयो को भी खोलकर गालियॉ देता था और पढे लिखे भारतीयो को '**बलबलाते बी० ए०, वर्णशंकर बी० ए० गुलाम दास जाति और कलकी जाति** जैसे अपमानजनक शब्दो से सम्बोधित करता था।[2] इस अपमानजनक व्यवहार की भारतीयो मे प्रतिक्रिया होना नितान्त स्वाभाविक था।

ब्रिटिश उपनिवेशो विशेषकर नेपाल और दक्षिणी अफ्रीका मे भारतीयो के साथ किये जाने वाला दुर्व्यवहार उग्रवादी राष्ट्रीयता को पनपने का एक अन्य कारण था। इस दुर्व्यवहार के कारण 1903 मे दक्षिणी अफ्रीका से लौटकर **Dr -B S Moonje** ने दु ख पूर्वक कहॉ—Our rulers do not belive that we are men[3] भारतीयो के द्वारा यह अनुभव किया गया कि उन भारतीयो के साथ भारत राष्ट्र की पराधीनता के कारण ही दुर्व्यवहार किया जारहा है और इसकी समाप्ति का एकमात्र उपाय भारत के लिए स्वतत्रता की प्राप्ति है।

---

1 Ronaldshay Life of Lord Curzon Vol II P-246

2 विपिन चन्द्र, अमलेश त्रिपाठी, वरुण द स्वतत्रता सग्राम नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया नइ दिल्ली 1972 पृ० 71

3 Dr B S Moonja Quoted from Dr pattabhis History of I N C Vol I Padma Publication 1935 P 47

जब भारतीयो के अग्रेजी भाषा और पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के माध्यम मे मैजिनी, र्ष्क, गैरी वाल्दी और वाशिगटन के स्वतन्त्रता युद्ध, आयरलैण्ड का सघर्ष, इग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रान्ति का इतिहास पढा, तो वे स्वतत्रता की ओर बढे ओर उनके द्वारा उग्र राष्ट्रीयता का मार्ग अपना लिया गया।

उग्र राष्ट्रीयता के उदय मे बाल गगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिन चन्द्र पाल तथा अरविन्द घोष का नेतृत्व एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण था। ये नेता अटूट देशभक्त और ब्रिटिश शासन के कट्टर शत्रु थे। इन नेताओ ने नये दल की नीतियो की परिभाषा की, इनकी अभिलाषाओ को व्यक्त किया और इनके कार्यो का मार्गदर्शन किया। **तिलक ने यह कहकर** कि ''स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मै इसे लेकर रहूँगा।'' इन लोगो को एक नारा दिया। उन्होने कहा था—''स्वधम अथवा स्वशासन, सन्दर्भ के लिए आवश्यक है। स्वराज्य के बिना कोई सामाजिक सुधार नही हो सकते, न कोई औद्योगिक प्रगति, न कोई उपयोगी शिक्षा और न ही राष्ट्रीय जीवन की परिपूर्णता। यही हम चाहते है और इसी के लिए ईश्वर ने मुझे ससार मे भेजा है।''[1] **विपिन चन्द पाल** ने इस दल की मागो की इस शब्दो मे व्याख्या की . ''देश मे नया सुधार (reform) नही, अपितु पुनर्गठन (re-form) की आवश्यकता है। इग्लैण्ड को भारतीय सरकार की नीति निर्माण का अधिकार छोड देना चाहिए और एक विदेशी सरकार को जो कानून चाहे बना सकने का अथवा अपनी इच्छा से जैसा चाहे शासन करे, यह अधिकार त्याग देना चाहिए। उन्हे अपनी इच्छा से कर लगाने, और अपनी इच्छा से धन को व्यय करने का अधिकार भी छोडना होगा।''[2]

लाला लाजपतराय ने अपनी सशक्त वाणी मे कहा, ''अग्रेज भिखारी से सबसे अधिक घृणा करते है और मै सोचता हूँ कि भिखारी घृणा का पात्र है भी। अत हमारा यह कर्तव्य है कि हम सिद्ध कर

---

1 टी० वी० पर्वते बाल गगाधर तिलक शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पना आगरा 1968 पृ० 298

2 बी० एल० ग्रावर तथा यशपाल आधुनिक भारतीय इतिहास एस० चन्द कम्पनी लि० रामनगर नयी दिल्ली 2002, पृ० 306

दे कि हम भिखारी नही है।''[1] इन नेताओ ने भिक्षावृत्ति का मार्ग त्यागकर आन्दोलन का मार्ग अपनाने पर जोर दिया और महाराष्ट्र, पजाब, बगाल तथा अन्य क्षेत्रो मे जागृति की अपूर्व लहरउत्पन्न कर दी। **लाला लाजपत राय** ने आगे कहा, ''जैसे दास की आत्मा नही होती इसी प्रकार दास जाति की कोई आत्मा नही होती। और आत्मा के बिना मनुष्य केवल पशु है। इसलिए देश के लिए स्वराज्य परम आवश्यक है और सुधार अथवा उत्तम राज्य इसके विकल्प नही हो सकते।''[2]

अरविन्द घोष स्वराज्य को ''भारत के प्राचीन जीवन को आधुनिक परिस्थितियो मे परिपूर्ण होना और राष्ट्रीय गौरव का सतयुग मानते थे जिसमे भारत पुन एक गुरू और मार्गदर्शक के रूप मे अपनी भूमिका निभाए, लोगो की आत्ममुक्ति हो ताकि राजनीतिक जीवन मे वेदान्त के आदर्श प्राप्त किए जा सके। यही भारत के लिए सच्चा स्वराज्य होगा।''[3] उनके अनुसार, ''राजनीतिक स्वतत्रता एक राष्ट्र का जीवन श्वास है। बिना राजनीतिक स्वतत्रता के सामाजिक तथा शैक्षणिक सुधार, औद्योगिक प्रयास, एक जाति की नैतिक उन्नति इत्यादि की बात सोचना मूर्खता की चरम सीमा है।[4]

भारत मे उग्रवाद के उदय के लिए यदि कोई एक कारण सबसे अधिक प्रमुख रूप से उत्तरदायी कहा जा सकता है तो वह है लार्ड कर्जन का प्रतिक्रियावादी शासन। 1898 से 1905 तक भारत के गवर्नर जनरल के रूप में नौकरशाही के साक्षात प्रतिरूप लार्ड कर्जन ने ब्रिटिश साम्राज्य के लिए वही कार्य किया, जो मुगल साम्राज्य के लिए औरगजेब ने किया था।[5]

---

1 आर० सी० अग्रवाल भारतीय सविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन एस० चन्द कम्पनी लि० रामनगर नई दिल्ली 1992, पृ० 263

2 बी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल आधुनिक भारतीय इतिहास एस० एन० कम्पनी लि०, रामनगर नई दिल्ली 2002 पृ 306

3 Aurobindo Bande Matram 3 May 1908

4 Aurobindo _ Bande Matram 3 May 1908

5 इन्द्र विद्यावाचस्पति भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास पृ० 10

लार्ड कर्जन ने 1891 मे 'कलकत्ता कारपोरेशन अधिनियम' पास कर कॉरपोरेशन मे भारतीयो की सदस्य सख्या घटाकर आधी कर दी। इसी प्रकार 1904 मे 'भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम' पास कर विश्वविद्यालय की सीनेट और सिण्डीकेट मे भारतीयो का प्रतिनिधित्व कम कर दिया गया। 1904 के 'प्रशासकीय गुप्तता अधिनियम' के द्वारा उन्होने समाचार पत्रो की स्वतत्रता को और सीमित कर दिया। 1905 मे कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति पद से दिये गये **दीक्षान्त भाषण मे कर्जन ने कहा** कि, "भारतवासियो मे सत्य के प्रति आस्था नही है और वास्तव मे भारत वर्ष मे सत्य को कभी आदर्श माना ही नही गया है।"उन्होने कहा भारत नाम की कोई वस्तु ही नही है।" लार्ड कर्जन द्वारा व्यक्त किये गये इन अपमानजनक शब्दो का विरोध करने के लिए एनी बेसेण्ट के शब्दो मे सारा भारत राष्ट्र एक व्यक्ति के रूप मे उठ खडा हुआ।"[1]

लार्ड कर्जन का सबसे घृणित कार्य बगाल को दो भागो मे अथवा बगाल तथा पूर्वी बंगाल और असम मे विभाजित करना था। (1905) यह कार्य बगाल ओर भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस[2] के कडे विरोध की उपेक्षा करके किया गया। यद्यपि इस विभाजन के पक्ष मे सरकार का कथन था कि बगाल जैसे बडे प्रान्त पर एक ही केन्द्र से शासन नही किया जा सकता और सुशासन के हित मे उसका विभाजन आवश्यक है लेकिन वास्तव मे, जैसा कि **जकारिया ने लिखा है** "उद्देश्य और प्रभाव की दृष्टि से बगाल के विभाजन का कार्य नितान्त धूर्ततापूर्ण था।"[3] वास्तव मे बगाल का यह विभाजन 'फूट डालो और राज्य करो मे कर्जन का उद्देश्य बगाल मे बढती हुई राष्ट्रीयता की भावना को कुचल देना था, लेकिन व्यवहार मे इस कार्य के परिणामस्वरूप न केवल बगाल वरन् सम्पूर्ण भारत मे राष्ट्रीयता की अभूतपूर्व भावना को जन्म दिया।

---

1 Durga Das India from curzon to Nehru and after Alld Rupa Paper back c 1969-p-2

2 Report on the Twentieth Congress 1904 Resolution XIV

3 विपिन चन्द्र, अमलेश त्रिपाठी, वरुण द, स्वतत्रता सगाम नशनल बुक टस्ट इण्डियन नइ दिल्ली 1972-पृ० 72

उपर्युक्त सभी कारणो के परिणामस्वरूप भारत मे उग्र राष्ट्रवाद का उदय नितान्त स्वभाविक ही था।

उग्रवादियो ने राष्ट्रवाद को केवल नागरिक, आर्थिक एव राजनीतिक आदर्श न मानकर एक पुनीत धर्म का स्वरूप दिया। अन्य समस्त आदर्शो का प्रस्फुटन इसी आदर्श के सम्बन्धित माना। उनका राष्ट्रवाद यूरोप के राष्ट्रवाद सदृश्य स्वार्थपरायणता पर आधारित नही था। देश के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की धार्मिक प्रेरणा से इस राष्ट्रवाद को अनुप्राणित किया गया। तर्क के स्थान पर आस्था एव उपदेश के स्थान पर अनुभूति का इसमे प्राधान्य था। ज्ञान के स्थान पर भक्ति एव कर्म की इसमे विशेष स्थिति स्वीकृत हुयी थी।[1]

उग्रराष्ट्रवाद मानसिक दृष्टि से दासता से उन्मुक्ति का पोषक था। दर्शन एव साहित्य के क्षेत्र मे भारतीयो के योगदान को किसी भी दृष्टि से हेय नही स्वीकार किया गया था। वेदो की प्राचीनता एव उनमे निहित ज्ञान समस्त ससार के मार्गदर्शन का आधार माना गया था। मानसिक दासता से मुक्ति दिलाने के रचनात्मक प्रयास मे उग्रवादियो ने उदारवादियो के ''वदेमातपितरौ''[2] के रवैये के विपरीत ''वन्देमातरम'' का सन्देश उद्घोषित किया।

कांग्रेस में फूट का आरम्भ उदारवादी ओर उग्रवादी— 1905 का बनारस अधिवेशन— भारतीय राजनीति मे उग्रवाद के उदय से काग्रेस सगठन का प्रभावित होना नितान्त स्वाभाविक था। 1905 के बनारस अधिवेशन मे बाल गगाधर तिलक के नेतृत्व मे राष्ट्रवादियो के एक वर्ग ने उदारवादियो की 'राजनीतिक भिक्षा वृत्ति की नीति की तीव्र निन्दा की और इस बात का प्रतिपादन किया कि सगठित

---

1 पुरुषोत्तम नागर आधुनिक भारतीय समाजिक एव राजनीतिक चिन्तन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1980, पृ० 91

2 पुरूषोत्तम नागर वही, पृ० 91

निष्क्रय प्रतिरोध के मार्ग को अपानाकर ही भारत के राष्ट्रीय जीवन पर विदेशी नौकरशाही के प्रभुत्व का अन्त किया जा सकता है। उन्होने यह भी कहा कि ब्रिटिश माल और सरकारी शिक्षण सस्थाओ का भी सगठित और निरन्तर बहिष्कार किया जाना चाहिए, लेकिन उदारवादी निष्क्रिय प्रतिरोध को कम अधिक रूप मे अव्यवहारिक मानते थे और उनका विचार था कि इससे राष्ट्रीय प्रगति अवरूद्ध ही होगी। उदारवादियो को अब भी ब्रिटिश न्याय भावना और सवैधानिक साधनो की प्रभावदायकता मे विश्वास था। काग्रेस के दोनो वर्गो मे स्वराज्य की व्यवस्था के सम्बन्ध मे भी भेद था।

उदारवादियो तथा उग्रवादियो के उपर्युक्त मतभेदो के कारण 1907 के सूरत अधिवेशन मे काग्रेस विधिवत् रूप से दो वर्गो मे बॅट गयी—उदारवादी काग्रेस तथा उग्रवादी काग्रेस।[1]

उग्र राष्ट्रवाद उश्वारवाद के विरुद्ध भी उदारवाद ही बडा विद्रोह था, जितना कि स्वय साम्राज्यवाद के विरुद्ध।[2] उदारवादी समझते थे कि ब्रिटेन और भारत के अन्तिम हित समान है और ब्रिटिश साम्राज्य स्वय भारत के हित मे है लेकिन उग्रवादियो के अनुसार ब्रिटेन और भारत के हित परस्पर नितान्त विरोधी है, और ब्रिटिश साम्राज्य के साथ कितना ही सहयोग क्यो न किया जाय, उसके द्वारा भारत अपने राजनीतिक लक्ष्य की प्राप्ति नही कर सकता। **विपिन चन्द्र पाल का** मत था कि ब्रिटेन के आर्थिक हितो की दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक था कि भारत पर उसका राजनीतिक नियन्त्रण बना रहे, अत· युद्ध के बिना भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त होना नितान्त असम्भव है। लाला लाजपत राय और अन्य उग्रवादियो का विचार था कि "व्यापारियो का यह राष्ट्र (ब्रिटेन) केवल दबाव की भाषा ही समझता है।"[3]

---

1 विपिन चन्द्र भारत का स्वतन्त्रता सघर्ष, हिन्दी माध्यम कायान्वय निदशालय 1990

2 A R Desais Social Background of Indian Nationalism P 298

3 ताराचन्द भारतीय स्वतत्रता आन्दोलन का इतिहास सूचना एव प्रसारण मत्रालय नइ दिल्ली 1972 पृ० 484

उदारवादियो तथा उग्रवादियो मे राजनीतिक लक्ष्य का अन्तर भी था। उदारवादियो का विचार था कि ब्रिटिश शासन मे सुधार किया जा सकता है एव क्रमिक सुधार ही उपयुक्त और भारत के हित मे है। इसी कारण उनके द्वारा विधायी परिषदो के सुधार और उनकी शक्ति मे वृद्धि, भारतीयो के लिए उच्च सरकारी पद और स्थानीय स्वशासन सस्थाओ की स्थापना आदि की मागे की जाती थी। लेकिन उग्रवादियो का विचार था कि ब्रिटिश शासन मे सुधार किया ही नही जा सकता, उसका तो अन्त किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध मे अपनी विचारधारा स्पष्ट करते हुए **विपिन चन्द्र पाल** ने मद्रास के अपने एक भाषण मे कहा था, ''हमे यह देखना चाहिए कि 50, 100, 200 या 300 भारतीय अधिकारी क्या इस सरकार को भारतीय सरकार बना देगे? —सभी अफसर भारतीय हो जाये तब भी वे नीति निर्धारित नही कर सकते, शासन नही चला सकते, वे तो सिर्फ हुक्म बजा सकते है—अफसर गोरा हो या काला उसे परम्पराए निबाहनी होती है, कानून और नीति का पालन करना पडता है और जब तक परम्पराए न तोडी जायॅ, सिद्धान्त न बदले जाये, नीति न बदली जाए, गोरे अधिकारियो की जगह काले अधिकारियो की नियुक्ति कर देने से स्वराज्य नही आ जायेगा।[1]

राजनीतिक विचारधारा और लक्ष्य की दृष्टि से तो उग्रवादी उदारवादियो से भिन्न थे ही, इन दोनो मे से इससे भी अधिक महत्वपूर्ण अन्तर साधन सम्बन्धी था। **नेविन्सन ने तिलक को यह कहते हुए उद्धत किया है** कि It is not by our purpse but by methods only that our party has earned the name of extremists'[2] **विपिन चन्द्र पाल का विचार था** कि स्वराज्य स्वालम्बन के आधार पर ही प्राप्त किया जा सकता है। उनका कहना था कि ''यदि सरकार मेरे पास आकार कहे कि स्वराज्य ले लो तो मै उपहार के लिए धन्यवाद देते हुए कहूगा कि मै उस वस्तु को स्वीकार नही कर सकता जिसको प्राप्त

---

1 रामगोपाल भारतीय राजनीति —पृ० 97

2 A Quoted by Nevinson The New Spirit in India P-226

करने की सामर्थ्य मुझमे नही है।[1] तिलक उग्रवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहते थे, "हमरा ।आदर्श दया याचना नही, आत्मा निर्भरता है।" वे उग्रवादी शासको के प्रति भक्ति और सहयोग की नीति अपनाने के स्थान पर 'निष्क्रय प्रतिरोध के कार्य क्रम को अपनाने के पक्ष मे थे।[2] इस निष्क्रिय प्रतिरोध के सम्बन्ध मे **विपिन चन्द्र पाल ने कहा** कि "सरकार के कार्य को कई प्रकार से ठप किया जा सकता है। ऐसा सम्भव नहीं है कि प्रत्येक मजिस्ट्रेट कार्य करने से इकार कर दे तथा एक व्यक्ति के त्यागपत्र देने पर उसके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति न मिले। परन्तु सारे देश मे यह भावना जाग्रत हो जाय तो समस्त सरकारी कार्यालयो मे हडताल की जा सकी है—हम उस भारतीय की स्थिति जो सरकारी कर्मचारी है, ऐसी कर सकते है कि जैसे वह भारतीय नागरिक के सममान से नीचे गिर गया हो।"[3]

बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा— उग्रवादियो ने विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी माल अगीकार करने को कहा। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय शिक्षा और सत्याग्रह पर भी बल दिया गया। उग्रवादियो के बहिष्कार आन्दोलन की मुख्य प्रवृत्ति तो विदेशी वस्तुओ के ही विरुद्ध थी, परन्तु इसकी व्यापक व्याख्या मे, इसमे सरकार के साथ सहयोग, सरकारी नौकरियो, प्रतिष्ठानो तथा उपाधियो का बहिष्कार भी शामिल था। उग्रवादियो की मान्यता थी कि बहिष्कार विदेशी शासन की प्रतिष्ठा और हितो के ऊपर एक सीधा आघात होगा। **लाला लाज पत राय के अनुसार,** "दुकानदारों की जाति ब्रिटिश राज्य को नैतिकता के ऊपर आश्रित तर्को की अपेक्षा व्यापार मे घाटा होने की बात अधिक प्रभावित कर सकती है।"[4] एक दूसरे स्थान पर वे बहिष्कार आन्दोलन मे निहित विचारधारा

---

1 Valantine Chirol Indian Unrest PP 11-12

2 पुरूषोत्तम नागर, आधुनिक भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 180 पृ० 91

3 पट्टयाभि सीतारमैया काग्रेस का इतिहास भाग I पदमा पब्लिकशन्स 1935 पृ० 64

4 बी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास एस० चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड रामनगर नई दिल्ली उन्नीसवा सम्करण 2002 पृ० 307

को स्पष्ट करते हुए लिखते है, "हम अपने मुख सरकारी भवनो से हटाकर साधारणजनो की कुटियो की तरफ ले जाना चाहते है। बहिष्कार आन्दोलन का यही मनोवैज्ञानिक, यही नैतिक और यही आध्यात्मिक महत्व है।"[1] उग्रवादी नेता दृढतापूर्वक स्वदेशी को स्वदेश की मुक्ति का मार्ग समझते थे। तिलक ने केसरी मे लिखा, "हमारा राज्य एक वृक्ष की तरह है जिसका मूल तना स्वराज्य है और स्वदेशी तथा बहिष्कार उसकी शाखाएँ।"[2]सरकार नियन्त्रित शिक्षा सस्थाओ के स्थान पर एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना बनाई गई। उग्रवादी दल की योजना थी कि विद्यार्थियो को देश सेवा मे लगाया जाए। सर गुरूदास बैनर्जी ने बगाल राष्ट्रीय शिक्षा परिपद बनाई। मद्रास मे पछैय्या राष्ट्रीय कॉलेज स्थापित किया गया। पजाब मे डी० ए० वी० आन्दोलन ने जोर पकडा[3]

भारत मे उग्र राष्ट्रीयता के जन्मदाता तथा निर्मयता से राष्ट्र की वेदना को प्रकट करने वाले सर्वप्रथम व्यक्ति बालगगाधर तिलक थे। डॉ० आर० सी० मजूमदार लिखते है—"अपने देशप्रेम तथा अथक प्रयत्नो के परिणाम स्वरूप बाल गगाधर तिलक 'लोकमान्य' कहलाये जाने लगे और उनकी एक देवता के समान पूजा होने लगी। वह जहॉ कही भी जाते थे, उनका राजकीय सम्मान तथा स्वागत किया जाता था।[4]

उदारवादियो तथा उग्रवादियो दोनो मे कुछ अन्तर होते हुए भी ये दोनो सच्चे देशभक्त थे और इस दृष्टि से वे एक दूसरे के विरोधी नही वरन् सच्चे अर्थो मे एक दूसरे के पूरक थे। श्रीराम नाथ सुमन ने इस सम्बन्ध मे "हमारे राष्ट्र निर्माता" मे लिखा है, "जब हम नरम व गरम दोनो दलो की प्रवृत्तियों

---

1 बी० एल० ग्रोवर वही, पृ० 307

2 विपिन चन्द्र, अमलश त्रिपाठी, वरूण दे, स्वतत्रता सग्राम, नेशनल बुक ट्रस्ट, इजिया नयी दिल्ली , 1972 पृ० 89

3 वी० एल० ग्रोवर तथा यशपाल आधुनिक भारत का इतिहास, एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि० रामनगर, नई दिल्ली 2002 पृ० 307

4 R C Majumdar History of Freedom Movemat in India Cal Firma K L Mukhopadhayay 1971-P 356

का विश्लेषण और अध्ययन करते है तो स्पष्ट होता है कि हमारे राष्ट्रीयता के विकास मे दोनो एक दूसरे के पूरक हैं और दोनो हमारी राजनीति के स्वभाविक उपकरण हे। वस्तुत: वे दोनो एक ही आन्दोलन के दो पक्ष है। एक ही दीपक के दो परिणाम है। पहला प्रकाश का द्योतक है तो दूसरा गर्मी का। पहला बुद्धि पक्ष है, दूसरा भाव पक्ष। पहला जहॉ कुछ सुविधाए प्राप्त करना चाहता है, वहॉ दूसरे का उद्देश्य राष्ट्र मे मानसिक परिवर्तन करना है।''[1]

---

1 राम नाथ सुमन हमार राष्ट्र निमाता पृ० 167

अध्याय—3

बालगंगाधर तिलक के राजनीतिक और सामाजिक विचार

उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे भारत मे राष्ट्रवाद की चेतना विकसित करने मे देश के बौद्धिक वर्ग की विशेष भूमिका रही। जिस प्रकार यूरोप मे इटली के पुर्नजागरण और जर्मनी के सुधारवाद ने यूरोपीय राष्ट्रीयता की बौद्धिक आधारशिला रखी उसी प्रकार भारत मे विभिन्न समाज सुधारकों अध्यात्म पुरूषो एव प्रबुद्ध राजनेताओ ने स्वराज भावना से राष्ट्रयता के प्रति देश मे तीव्र लालसा उत्पन्नकी।

धर्म दर्शन और सस्कृति के नवीन सस्कार चेतना को ग्रहण करते हुये भारतीय राष्ट्रीयतावाद, पुर्नजागरण के रूप मे देश के समक्ष आया, किन्तु यहाँ भारतीय और यूरोपीय पुर्नजागरण मे मौलिक अन्तरथा। यूरोपीय पुर्नजागरण मुख्यत· बौद्धिक तथा भावनात्मक था जबकि भारतीय पुर्नजागरण नैतिक और आध्यात्मिक सृजनात्मक चेतना से सस्कारित था। ब्रह्म समाज, आर्य समाज जैसी अनेक सस्थाओ ने भारतीय पुर्नजागरण को एक नई दिशा दी। ब्रह्म समाज ने सामाजिक जड़ता को तोडा तो आर्य समाज ने बौद्धिक पुर्नरूत्थान के सशक्त पक्षधर होने के बावजूद राष्ट्रीयता के उत्थान मे विशेष भूमिका निभाई।

राजाराममोहन राय, विवेकानन्द, अरविन्द घोष, महात्मा गॉधी, मानवेन्द्र नाथ राय आदि अनेक प्रबुद्ध व्यक्तियो ने भारतीय पुर्नजागरण को केवल राजनीति के क्षेत्र तक ही सीमित नही रहने दिया बल्कि उस धार्मिक, सामाजिक ओर अनन्त सास्कृतिक क्षत्र मे भी नई चेतना के साथ सम्पृक्त किया।

इन्ही प्रबुद्ध व्यक्तियो मे लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, ओर गोपाल कृष्ण गोखले का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होने नवीन, दृढ स्वावलम्बी राष्ट्रवादी भावना और अपने सामाजिक और राजनीतिक विचारो से पुर्नजागरण की चेतना को प्रबुद्ध ओर पुष्ट किया।

1856 मे महाराष्ट्र के रत्नागिरि शहर मे जन्मे बाल गगाधर तिलक, देशभक्त , राष्ट्रनिर्माता, वेदवेत्ता, महान गणितज्ञ, भागवद्गीता के विशाल भाव्यप्रणेता का हमारे देश के इतिहास मे एक अनूठा स्थान है। राष्ट्रवादी आन्दोलन के राष्ट्रीय मच पर बाल गगाधर तिलक का अद्‌भुत स्थान था और लोग स्नेह तथा सम्मान से उन्हे 'लोकमान्य जनता के प्रिय नायक, 'सर्व सम्मानित कहकर पुकारते थे। लोकमान्य तिलक का राजनीतिक मन्त्र—"स्वशासन मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मै उसे लेकर रहूँगा"—अधिकाश सजग भारतीयो के होठो पर था। तिलक ऐसे अग्रणी नेता थे जिन्होने राजनीतिक आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने के लिए धार्मिक उत्साह का प्रयोग किया। वे काग्रेस के उग्रवादी नेता थे और जीवन के प्रत्येक पहलू मे खरे उतरे, उन्हेने आदर्श और यथार्थ दोनो का निर्वाह किया। गीता दर्शन पर उनकी टिप्पणी और 'आर्कटिक होम इन दि वेदाज' नाम वह ग्रन्थ जिसने हिन्दूओ के आदि ग्रन्थ वेदो का जन्म स्थान आर्जटिक प्रदेश मे सिद्ध किया गया है—उनके विशाल अध्ययन तथा अनुसधान मे उनकी गहरी रूचि का प्रमाण है।[1]

तिलक समाज सुधार से पहले राजनैतिक सुधार करने पर जोर देते थे, किन्तु वह कभी भी रूढिवादी न थे, और पुरानी परिपाटी को बदलने के पक्ष मे थे।[2] उनके अनुसार, "मै इसमे विश्वास नहीं करता कि राजनैतिक मक्ति के पूर्व ही सामाजिक पुन-निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए। जब तक हमे अपना भविष्य स्वय निश्चित करने की शक्ति नही प्राप्त हो जाती, तब तक मेरी राय मे, राष्ट्रीय पुनर्जागरण नही लाया जा सकता। मैने अपने जीवन मे सदा इसी विश्वास का प्रचार किया है। जन मैने 'एज ऑफ कन्सेन्ट बिल' का विरोध किया था, तो वह मुख्यटया केवल इसी आधार पर। मै न तो तब समझता था और न ही अब समझता हूॅ कि ऐसा कोई भी विधान मण्डल, जो जनता के प्रति उत्तरदायी नही है, सामाजिक विषयो पर कानून बनाने के लिए सक्षम है।[3]

---

1 दुगादास भारत कर्जन से नेहरू ओर उसके पश्चात पृ० 60

2 एन० जी० जोग आधुनिक भारत के निर्माता, लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग 1969, पृ० 27

3 एन० जी० जोग आधुनिक भारत क निमाता लाकमान्य बाल गगाधर तिलक पकाशन विभाग 1969 पृ० 36

राजनीतिक विचार— भारतीय उग्रराष्ट्रवाद के जनक तिलक थे जिन्होंने भारतीय राजनीतिक को एक नई दिशा प्रदान करके काग्रेस को एक जन आन्दोलन मे परिणत किया। तिलक ने जनता और नेताओ के सामने एक रचनात्मक कार्यक्रम विकसित किया और स्वतन्त्र भारत की भूमिका की और संकेत किया—"एशिया तथा ससार की शक्ति के लिए यह नितान्त आवश्य है कि भारत को आत्म शासन प्रदान करके पूर्व मे स्वतन्त्रता का गढ बना दिया जाय।"[1] 1889 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की सदस्यता प्राप्त करने से ही तिलक का राजनीतिक विचारो का क्रम प्रारम्भ होता है।[2]

राजनीतिक चिन्तन के आधार— राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र मे तिलक ने एक यर्थाथवादी व्यवहारिक नेता की भूमिका अदा की। यद्यपि तिलक के विचार और दृष्टिकोण मे हमे यर्थाथवाद का तत्व देखने को मिलता है लेकिन वे मै मैकिमावली और हाब्स की भॉति के यर्थाथवादी नही थे और नही उन्हेने प्लेटो, अरस्तू या सिसरो की भाति सर्वोत्तम राज्य के लक्षणो और सम्माभना का विवेचन किया।[3] तिलक के राजनीतिक चिन्तन मे हमे भारतीय दर्शन की कुछ प्रमुख धारणाओ, तथा आधुनिक यूरोप के राष्ट्रवादी और लोकतात्रिक विचारो का समन्वय देखने को मिलता है।[4] तिलक वेदान्ती थे उनके राजनीतिक विचारो पर तत्वशास्त्रीय मान्यताओ का अधिक प्रभाव पडा। उनके अनुसार वेदान्त के अद्वैतवादी तत्वशास्त्र मे प्राकृतिक अधिकारो की राजनीतिक धारणा निहित है। परमात्मा ही परम् सत् है और सब मनुष्य उसी परमात्मा के अश है। इसलिए उन सबमें वही स्वतन्त्र आध्यात्मिक शक्ति अन्तर्निहत है जो परमात्मा मे पायी जाती है। अत: तिलक के अद्वैतवाद मे स्वतन्त्रता की धारणा की सर्वोच्चता का सिद्धान्त पाया जाता है।[5] "स्वतन्त्रता ही होमरूल आन्दोलन

---

1 रामगोपाल लोकमान्य तिलक, एशिया पब्लिशिग हाऊस बम्बइ 1965 पृ० 43

2 रामगापाल वही, पृ० 43

3 वी० पी० वर्मा आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अगवाल पुस्तक प्रकाशन एव विक्रेता हास्पिटल रोड, आगरा, 1971, पृ० 251

4 वा० पा० वमा वही पृ० 25

5 तिलक गीता रहस्य, चित्रशाला स्टीम प्रस पूना 1916 पृ० 390

का प्राण थी। स्वतन्त्रता की ईश्वरीय भावना कभी वार्धक्य को प्राप्त नही होती।-----स्वतन्त्रता ही व्यक्तिगत आत्मा का जीवन है और व्यक्तिगत आत्मा ईश्वर से भिन्न नही है बल्कि वह स्वय ईश्वरहै। यह स्वतनत्रता एक ऐसा सिद्धान्त है जिसका कभी विनाश नही हो सकता।[1] तिलक का विचार था कि विदेशी साम्राज्यवाद का कोई भी स्वरूप स्वतन्त्रता के लिए घातक है, क्योकि वह राष्ट्र की आत्मा को विनष्ट कर देता है।[2]

तिलक के राजदर्शन मे पाश्चात्य राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और आत्मनिर्णय के सिद्धान्तो का प्रभाव पडा। 1908 मे उन्होने राजद्रोह के मुकदमे के सम्बन्ध मे न्यायालय मे भाषण दिया उसमे जॉन स्टुअर्ट मिल की राप्ट्र की परिभाषा को स्वीकार किया।[3] 1919 मे उन्होने वितसन के राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को स्वीकार किया, और मॉग की कि उसको भारत के परिपेक्ष्य मे लागू किया जाय।[4] अत: तिलक का राजदर्शन आत्मा की परम स्वतन्त्रता के वेदान्ती आदर्श और बर्क, मिल और वितसन की पाश्चात्य धारणा का समन्वय थी। इस समन्वय को उन्होने 'स्वराज्य' शब्द के द्वारा व्यक्त किया। स्वराज्य एक वैदिक शब्द है जिसका प्रयोग महाराष्ट्र मे शिवाजी के राज्यतन्त्र के लिए किया गया।

तिलक के आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण वे स्वराज्य को मनुष्य का अधिकार ही नहीं, बल्कि धर्म भी मानते थे।[5] उन्होने स्वराज्य की नैतिक और आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की। राजनीतिक रूप मे उन्होने स्वराज्य का अर्थ स्वशासन (होमरूल) बताया किन्तु नैतिक सन्दर्भ मे इसका अर्थ आत्मनियन्त्रण की पूर्णता माना जो कि सबसे बडा स्वधर्म है। स्वराज्य का आध्यात्मिक महत्व बताते

---

1 स्पीचज एण्ड राइटिग ऑफ तिलक, जी० ए० नटेसन एण्ड कम्पनी मद्रास पृ० 354

2 स्पीचज एण्ड राइटिग वही, 356

3 Tilak s Trial 1980 P-138

4 तिलक का वितसन और क्लीमशा को 1919 मे दिया गया पत्र। यह पत्र महाराष्ट्र मे प्रकाशित हुआ था।

5 तिलक का 1916 की काग्रेस के उपरान्त भवत्माल में दिया गया भाषण Speeches पृ० 256

हुए तिलक ने कहा कि इसका आशय अधिक स्वतन्त्रता से है। स्वराज्य की प्राप्ति आत्मा की स्वतन्त्रता के आधार पर ही हो सकती है।

तिलक के शब्दो मे, "अपने मे केन्द्रित और अपने पर निर्भर जीवन ही स्वराज्य है। स्वराज्य परलोक मे है और इस लोक मे भी है। जिन ऋषियो ने स्वधर्म के नियम का प्रतिपादन किया, उन्होने अन्त मे वन की राह पकडी, क्योकि जनता स्वराज्य का उपभोग कर रही थी, और उस स्वराज्य की रक्षा का भार क्षत्रिय राजाओ पर था। मेरा विश्वास है कि जिन लोगो ने इस ससार मे स्वराज्य का उपभोग नही किया है वे परलोक मे भी स्वराज्य के अधिकारी नही हो सकते।"[1] अत· तिलक ने राजनीतिक और आधात्मिक दोनो ही प्रकार की स्वतन्त्रता की बात की।

अपने समकालीन लालालाजपत राय, तथा विपिनचन्द्र पाल के समान तिलक भी प्रारम्भ मे उदारवादी विचारधारा के थे। प्रारम्भ मे उन्होने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विचार प्रकट करना प्रारम्भ नही किया था। वे भी अन्य उदारवादियो की तरह काग्रेस के कार्यक्रम का समर्थन करते थे, और अपनी काग्रेस की प्रारम्भिक दिनो की सदस्यता मे यह स्वीकार करते थे कि काग्रेस ने अपनी सवैधानिक नीति तथा प्रस्तावित सुधारो की माग से अनेक उपलब्धियॉ प्राप्त की। वे भी सरकार से सुविधाओ की माग तथा प्रार्थना पर विश्वास करते थे। इस सम्बन्ध मे 1891 के काग्रेस के नागपुर अधिवेशन मे उन्होने कहा था, कि उनका लक्ष्य शासन को दुर्बल बनाना नही है। वे शासन को मजबुत बनाना चाहते थे ताकि भारत की सरकार अपने बाह्य विरोधियो का सामना कर सके।[2] किन्तु

---

1 बा० जी० तिलक, "कर्मयोग एण्ड स्वराज्य "स्पीचज एण्ड राईटगस आफ तिलक पृ० 280

2 रामगोपाल लोकमान्य तिलक, एशिया पब्लिशिग हाउस बम्बई 1965 पृ० 13

तिलक के यह विचार अधिक दिनो तक स्थिर न रह सके। भारत मे ब्रिटिश सरकार के राष्ट्र विरोधी कार्यो ने तथा उनके स्वय के राष्ट्रवादी विचारो ने उन्हे सदा के लिए उदारवादियो से अलग कर दिया। 1895 मे वे अग्रेजो की न्यायप्रियता तथा उनकी दयालुता के झूठे दम्भ के विरोध मे आवाज उठाई। वे मानने लगे कि भारतीयो के एव ब्रिटिश शासको के हित समान नही है। परिवर्तित विचारो के द्वारा वे उदारवादियो की प्रार्थना एव याचिकाओ की नीति को भिक्षावृत्ति मानने लगे। उनके विचारो की उग्रता 1905 के बगाल विभाजन के समय और भी स्पष्ट रूप से सामने आयी।[1]

राष्ट्रवाद तथा पुनरूत्थानवाद— तिलक की राष्ट्रीयता पुनरूत्थानवादी और पुनर्निर्माणवादी थी। उन्होने वेदो और गीता से आध्यात्मिक शक्ति, तथा राष्ट्रीय उत्साह ग्रहण करने का सन्देश दिया और भारत की प्राचीन स्वरूप परम्पराओ के आधार पर भारतीय राष्ट्रवाद की स्थापना करनी चाहिए। 13 दिसम्बर 1919 को मराठा के अक मे उन्होने लिखा—"सच्चा राष्ट्रवादी पुरानी नींव पर ही निर्माण करना चाहता है, जो सुधार पुरातन के प्रति घोर असम्मान की भावना पर आधारित है, उसे सच्चा राष्ट्रवादी रचनात्मक कार्य नही समझता। हम अपनी सस्थाओ को अग्रेजियत के ढाचे मे नही ढालना चाहते, सामाजिक तथा राजनैतिक सुधार के नाम पर हम उनका अराष्ट्रीयकरण नही करना चाहते।"[2] इसलिए तिलक ने समझाया कि उन्होने शिवाजी और गणपति उत्सवो को प्रोत्साहन इसलिए दिया है कि उनके द्वारा वर्तमान घटनाो और आन्दोलनो का ऐतिहासिक परम्पराओ के साथ सम्बन्ध जोडा जा सके।[3]

---

1 एम० ए० बुच, राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ मिलिटेन्ट नेशनलिज्म गइ कम्पनियन्स बडादा 1940 पृ० 45

2 तिलक का 13 दिसम्बर 1919 का 'मराठा' का लिखा गया पत्र।

3 एम० एन० राय—India in Transition मे पृ० 14

तिलक ने राष्ट्रवाद को एक आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक धारणा बताया। उन्होने कहा कि प्राचीनकाल मे आदिम जातियो के मन मे अपने कबीले के प्रति जो भक्ति रहती थी, उसी का आधुनिक नाम राष्ट्रवाद है। इस राष्ट्रवाद का सम्बन्ध तीव्र सवेगो और अनुभूतियो से होता है। पहले जो आत्मिक प्रभाव और लगाव एक क्षेत्र विशेष तक सीमित थे वे अब राष्ट्रवाद के अन्तर्गत सम्पूर्ण राष्ट्र मे व्याप्त हो गए है, यही कारण है कि आज राष्ट्रवाद की भावना किसी क्षेत्र विशेष के प्रति नही वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति अनुभव की जाती है। जो राष्ट्रवाद राष्ट्रीय एकता पर आधारित होता है वही सच्चा और स्वस्थ्य राष्ट्रवाद है।[1] तिलक की मान्यता थी कि विभिन्न विचारधाराओ जाति भेदो, अस्वस्थ मत मतान्तरो आदि के कारण देश मे राष्ट्रीयता की भावना उस तेजी से नही पनप सकती जिस तेजी से यह समान भाषा, समान धर्म और समान सस्कृति वाले देश मे पनप सकती है। इसलिए उन्होने भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक तत्वो पर बराबर बल दिया। ये तत्व प्राचीन काल से ही भारत मे विद्यमान थे पर अब आवश्यकता उन्हे फिर से जगाने और प्राप्त करने की थी।

तिलक के जीवनीकार रामगोपाल ने तिलक की राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय एकता की भावना को व्यक्त किया—''तिलक के प्रत्येक काम और प्रत्येक भाषण मे एकता की भावना सर्वोपरि रहती थी, चाहे वह धार्मिक भाषण हो चाहे राजनीतिक, सामाजिक हो या कोई अन्य। वे जनता की राजनीतिक चेतना को ही नही वरन् गत और अनागत के सयोग से जनता की आत्मा को भी जानना चाहते थे समाज सुधार आन्दोलन से अलग होने के फलस्वरूप उन्होंने पुराणपन्थी और धार्मिक भारत को जनतान्त्रिक राजनीति के पथ पर लाने के लिए विश्वस्त और अधिकारी नेता की अनोखी भूमिका

---

1 वी० पी० वर्मा आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अगवाल पुस्तक प्रकाशक एव विक्रता, हास्पिटल राड आगरा 3 1971-पृ० 253

निभाई। अपनी इस स्थिति के कारण वे नई राजनीतिक भावना का समन्वय ऐतिहासिक प्राचीनता की भावना तथा परम्परा से करने मे सफल हुए।''[1] तिलक ने यह भी बताया कि भारत मे किस प्रकार एकता लाई जा सकती है। उन्होने कहा, ''ये विभिन्न पन्थ वैदिक धर्म की शाखाएँ, प्रशाखाए है। यदि यह बात ध्यान मे रखी जाए और हम विभिन्न मतो के बीच एकता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हो तो यह एक महान शक्ति बन सकती है। जब तक आपके बीच भेद है, और आप विभाजित है, जब तक एक मत दूसरे मत ने सामजस्य तथा एकता का अनुभव नही करता, आप हिन्दुओ के रूप मे आगे नही बढ सकते।''[2]

तिलक ने सक्रिय राजनीति मे अपनी वापसी की सूचना 4 जून 1899 को 'केसरी' मे प्रकाशित 'पुनश्च हरि ओम्' शीषर्क अग्रलेख के माध्यम से दी।[3] इसमे उन्होने एकता के लिए जोरदार अपील की . ''हम देखते है कि महामारी (प्लेग) मे प्रकोप और सरकार के कोप के कारण हमारी सारी गतिविधिया ठप्प पड गई है। अगर हमे फिर से उन्हे चालू करना है, तो पहले हमे अपने मतभेद को पाटकर एकता लानी होगी। क्या पिछले दो वर्षो के अनुभव से हमारी ऑखे नही खुल सकती? दोनो राजनीतिक दल इस बात पर सहमत है कि हमे अग्रेजी सरकार से किन अधिकारो को लेना है। यदि यह सत्य है तो नरम और गरम विचारो की चर्चा ही बेकार है। सरकार ने पहले से ही हमारे वाक् स्वतत्रता पर रोक लगा दी है। अत: हम सबको गलत सन्देह और मतभेद पैदा करके परस्पर एक दूसरे को अलग नही रखना चाहए।[4]

---

1 रामगोपाल लोकमान्य तिलक, एशिया पब्लिशिग हाउस, बम्बइ 1965 पृ० 112

2 रामगोपाल वही पृ० 113

3 तिलक का 4 जून 1899 को केसरी म प्रकाशित एक लख पुनश्च हरि आम' शीर्षक म।

4 तिलक का 14 जून 1899 का कसरी म प्रकाशित एक लख, पुनश्च हरि हाम शापक म।

गणपति तथा शिवाजी उत्सव—तिलक ने राष्ट्रवाद के विकास मे स्र्वाजनिक उत्सवो को महत्वपूर्ण स्थान दिया। राष्ट्रीयता के आवेश को आध्यात्मिक रग देने के लिए उन्होने गणपति उत्सव तथा शिवाजी उत्सव का आयोजन किया। गणपति उत्सव द्वारा उन्होने एक धार्मिक उत्सव को सामाजिक एव राजनीतिक अर्थ दिया तथा शिवाजी उत्सव द्वारा राष्ट्रीय भावनाओ को उभारने और संगठित करने का काम किया। उत्सवो का दोहरा महत्व है—एक ओर तो इनके माध्यम से एकता की भावना अभिव्यक्त होती है और दूसरी ओर उत्सवो मे भाग लेने वाले व्यक्ति यह अनुभव करने लगते है कि उनके सगठन और उनकी एकता को किसी श्रेष्ठतर कार्य मे लगाया जा सकता है। राष्ट्रीय उत्सव राष्ट्रगान, राष्ट्रध्वज आदि देशवासियो के सवेगो और मानो मे तीव्रता लाते है तथा उनकी राष्ट्रवादी भावना को जाग्रत करते है इससे सास्कृतिक अभिवृद्धि होती है और समूह राष्ट्रवाद का निर्माण होता है।[1]

गणपति उत्सव को सार्वजनिक रूप से मनाये जाने का आयोजन हिन्दू मुस्लिम दगो के पीछे प्रारम्भ हुआ था और मुसलमानो के मुहर्रमो के उत्सवो के आयोजन से हिन्दुओ को अलग करने का एक प्रयत्न था।[2] तिलक गणपति उत्सव को सार्वजनिक रूप देना चाहते थे जिससे मुहर्रम का आकर्षण कम हो, और हिन्दू लोग उसमे न शामिल हो। गणेश विद्या के प्रतीक है और सारी कठिाइयो को दूर करने वाले हैं। हर शुभ अवसर मे उनकी पूजा की जाती है। अत: तिलक को गणपति जनप्रिय देवता मिले। गणपति उत्सव की योजना कुछ मुसलमानो के हिन्दू विरोधी कार्यो तथा सरकार द्वारा उनके पक्षपात के विरोध मे बनाई गई। इससे जनता को तुरन्त आकर्षित किया और सामाजिक एकता और राजनैतिक जागृति का एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हुयी।

---

1 वी० पी० वर्मा आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन लक्ष्मीनारायण अगवाल पुस्तक प्रकाशन एव विक्रेता, हास्पिटल गड आगरा 3, 1971 पृ० 293

2 टी० वी० पर्वते बाल गगाधर तिलक, शिवलाल अगवाल एण्ड कम्पनी पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता, आगरा, 1968 पृ० 122

सुधारको ने गणपति पूजा की हसी उडाई, क्योकि उसकी कार्यविधि धार्मिक त्योहारों का अनुकरण थी। **तिलक ने इसके आलोचकों को उत्तर देते हुए कहा .** "जो यह कहते है कि गणपति की झाकिया मुसलमानो के ताजियो की नकल है, उन्होने आषाढ और कार्तिक की एकादशी की भजन मण्डलियो को नही देखा है लेजिम का खेल, नगाडो की गडगडाहट और इसी प्रकार के अन्य कार्य प्रायः हर मेले मे होते है। पिछले दो तीन सौ वर्षो से बहुत से हिन्दू मुहर्रम के अवसर पर मुसलमान पीरो की मनोनी मानते रहे है। कारण हम हर धर्म का मान करते है। लेकिन मुसलमान पुराने मेलजोल को छोडकर, बदमाशो के बहकावे मे आकर हिन्दू साधुओ को नियमित रूप से तग करने लगे। इससे भेदभाव उत्पन्न होना अनिवार्य ही था।"[1]

तिलक ने 'केसरी' के द्वारा और अपने भाषणो से सारे महाराष्ट्र मे उसका प्रचार भी किया। प्राचीन यूनान देश के ओलम्पिक त्यौहार और अन्य देशो के राष्ट्रीय पर्वो का उदाहरण देते हुए उन्होने जोरदार शब्दो मे जनता से अनुरोध किया कि वह गणपति उत्सव मे पूरा सहयोग दे। यह उत्सव शुरू से ही बिना जात पात के भेदभाव के मनाया जाता था।[2]

तिलक ने कहा, "धार्मिक विषयो का चिन्तन और पूजा तो एकान्त मे ही सम्भव है, किन्तु जनता को पुनर्जाग्रत करने के लिए कुछ प्रदर्शन आवश्यक है। इसी राष्ट्रीय भाषा के कारण यह उत्सव केवल पारिवारिक त्यौहार न रहकर शीघ्र ही सार्वजनिक पर्व बन गया। यह परिवर्तन ध्यान देने योग्य है, क्योकि हिन्दू धर्म मे पूजा अधिकतर वैयक्तिक या पारिवारिक रूप मे होती है—ईसाई धर्म या इस्लाम की भाति हिन्दुओ में सामूहिक रूप से पूजा नही होती, किन्तु राष्ट्रीयता की भावना का विकास होने से गणपति उत्सव शीघ्र ही सामूहिक रूप पा गया।"[3]

---

1 एन० जी० जोग वही, पृ० 50

2 प्रधान तथा भागवत लोकमान्य तिलक ए० बायोग्राफी, जको पब्लिशिग हाउस बम्बइ 1959, पृ० 181

3 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग १९६९ पृ० 50 51

यद्यपि इस पर्व का उद्देश्य सामाजिक एकता और पुनरूत्थान था, पर इससे राजनैतिक जागृति मे भी बडी सहायता मिली। तिलक ने इसको कभी छिपाने का प्रयत्न भी नही किया : ''जब ईसाई धर्मोपदेशक अपने भाषणो मे राजनैतिक विषयो की चर्चा कर सकते है तो कोई कारण नही कि इस उत्सव मे मेले वाले भी देश की राजनैतिक परिस्थितियो की चर्चा न करे। यदि उत्सव मे कुछ गीत अन्य विषयो के गाए जाते है तो इसमे कोई बुराई नही। इस धार्मिक पर्व को इसी कारण केवल राजनैतिक प्रचार का बहाना बताना अनुचित है।''[1]

तिलक के विरोधियो ने इन पर्वो को केवल सरकार विरोधी प्रचार का साधन बताया था। **'इंडियन अनरेस्ट' मे वैलेण्टाइन चिरोल ने लिखा:** ''इन उत्सवो मे धार्मिक गीत गाए जाते है और नाटक खेले जाते है जिनमे पौराणिक आख्यानो का उपयोग विदेशियो-मलेच्छो के प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। 'म्लेच्छ' शब्द का व्यवहार यूरोपियो और मुसलमानो के लिए होता है। इस पर्व के जुलूस आदि मुसलमानो और पुलिस के साथ झगडे करने की दृष्टि से ही निकाले जाते है। इन झगडो के कारण जो अदालती कार्रवाही होती है, उसका उपयोग भी उत्तेजक भाषणो के लिए होता है। गणपति उत्सव प्रारम्भ होने के साथ ही तिलक का प्रचार क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है।''[2]

शिवाजी उत्सव का आरम्भ 1896 मे हुआ। जहॉ गणपति पौराणिक देवता थे वहाँ मराठा साम्राज्य के सस्थापक शिवाजी ऐतिहासिक व्यक्ति थे। इस उत्सव का उद्देश्य भारत के नवयुवको को शिवाजी के पद चिह्नो, पर चलने के लिए प्रेरित करना था, जिससे भारत की राजनीतिक दासता का

---

1 एन० जी० जोग, वही, पृ० 51

2 टी० वी० पर्वते बाल गगाधर तिलक, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता, आगरा 1968, पृ० 130

अन्त किया जा सके।[1] 14 जून 1897 मे केसरी मे नवयुवको को शिवाजी के चरित्र से प्रेरणा प्राप्त करने का उपदेश देते हुए तिलक ने कहा था, ''शिवाजी ने अच्छे उद्देश्य से दूसरो, के लाभ के लिए अफजलखॉं की हत्या की थी। उसी प्रकार हमारे मकान मे चोर घुस जाएॅं और हममे उन्हे भगाने की ताकत न हो तो हमे नि:सकोच उन्हे बन्द कर जिन्दा जला देना चाहिए। भगवान ने भारत के राज्य का पट्टा ताम्रपत्र पर खोदकर म्लेच्छो के नाम नही कर दिया है।----कुएॅं मे मेढक के समान अपनी दृष्टि को सकुचित मत करो। दण्ड विधान के घेरे से बाहर आ जाओ, 'भगवत् गीता' की उच्चतम भूमि मे प्रवेश करो और तुम महापुरूषो के कार्यो पर विचार करो।''[2] आगे उन्होने कहा ''भाट की तरह गुनगान करने से स्वतन्त्रता नही मिल जायेगी। स्वतन्त्रता के लिए शिवाजी व बाजी की भाति साहसी कार्य करने पडेगे।''[3]

तिलक को शिवाजी उत्सव का विचार रायल एशियाटिक सोसाइटी बम्बई मे एक पारसी विद्वान आर० पी० करकेरिया द्वारा पढे गए एक लेख से प्राप्त हुआ था। यह लेख शिवाजी और उनके गढो पर था। पहले तिलक के मन मे केवल उन गढो (रायगढ मे शिवाजी की समाधि) की मरम्मत का ही विचार था, किन्तु बाद मे वह इस महान योद्धा के नाम से सम्बद्ध एक राजनैतिक उत्सव के विषय मे भी सोचने लगे।[4] **'मराठा' में उन्होने लिखा;** ''वीर पूजा मानव का स्वभाव है और अपनी राजनैतिक आकाक्षाओ को मूर्त करने के लिए एक भारतीय महाबीर के आदर्श की हमे आवश्यकता थी। इसके लिए शिवाजी से उत्तम चरित्र मिलना असम्भव था। हम अकबर या भारतीय इतिहास के अन्य चरित्र की याद मे उत्सव आरम्भ करने के विरुद्ध नही। इनका भी अपना एक महत्व होगा,

---

1 गमगापाल भारतीय राजनीति, पृ० 134

2 14 जून 1897 मे केसरी म लिखा

3 गमगोपाल भारतीय राजनीति, पृ० 134

4 एन० जी० जोग आधुनिक भारत क निमाता लाकमान्य बाल गगाधर तिलक पकाशन विभाग 1969 पृ० 52

किन्तु शिवाजी का नाम सारे देश के लिए एक विशिष्ट महत्व लिए हुए है और हर देशवासी का यह कर्त्तव्य है कि वह इस चरित्र को विस्मृत और विकृत न होने दे। हर महापुरूष, चाहे वह भारत का हो या यूरोप का, अपने युग के अनुकूल ही कार्य करता है। यह सिद्धान्त यदि हम मान ले तो हमे शिवाजी के जीवन मे कोई भी कार्य ऐसा नही मिलेगा जिमकी हम निन्दा कर सके। शिवाजी के हृदय मे स्वतन्त्रता की जो भावना आरम्भ से अन्त तक थी, उसी भावना के कारण वह राष्ट्र के आदर्श माने जाते है।''[1]

तिलक ने अग्रेज पत्रो के इस आरोप का खण्डन किया कि यह पर्व केवल मुसलमानो के विरुद्ध हिन्दुओ को भडकाने के लिए आरम्भ किया गया है। उन्होने सिद्ध किया कि शिवाजी मुसलमानो की धार्मिक भावनाओ का सदा आदर करते थे और उनके साथियो मे अनेक ऐसे मुसलमान भी थे जिन्होने मुगलो के विरुद्ध उनका साथ दिया था। उन्होने उदाहरण स्वरूप बताया कि ब्रिटेन मे नेतसन की पूजा होती है और फ्रास मे नेपोलियन की, फिर भी इससे दोनो देशो मे कोई द्वेष नही है।[2] अत: उन्होने मुसलमानो को आश्वस्त किया : ''शिवाजी उत्सव का उद्देश्य यह कतई नही कि आपका परित्याग या किसी तरह से आपको तग किया जाए। अब समाज बदल गया है और हिन्दू मुसलमान, दोनो की दशा एक ही है। अत· ऐसी दशा मे क्या हम दोनो शिवाजी के महान चरित्र से प्रेरणा नही ले सकते?''[3]

तिलक व्यक्तिगत रूप से हिन्दू धर्म के अनुयायी थे किन्तु राजनीति मे उनका दृष्टिकोण व्यापक रहा। जकारिया का आरोप है कि ''तिलक हिन्दुओ की मुस्लिम विरोधी बदले की भावना के

---

1 एन० जी योग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग 1969 पृ० 52 53

2 एन० जी० जोग वही, पृ० 53

3 एन० जी० जोग वही, पृ० 53

प्रतिनिधि थे।''[1] **रजनी पामदत्त के अनुसार :** ''तिलक ने राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ हिन्दुत्व भावना का मम्मिश्रण कर दिया था और इसलिए मुसलमानो ने राष्ट्रीय आन्दोलन से विमुखता ग्रहण की।''[2] वेलेन्टाइन शिरोल ने भी तिलक को अति परम्परावादी बताते हुए मुस्लिम विरोधी सिद्ध करने की चेष्टा की।

तिलक एक महान राष्ट्रवादी विचारक और देशभक्त थे जिनके हृदय मे मुसलमानो के प्रति या अन्य धर्मावलम्बियो के प्रति कोई द्वेषभाव नही था। उनका अपराध केवल यही था कि वे एक यथार्थवादी राजनीतिज्ञ थे जो अन्याय के आगे सिर नही झुका सकते थे, और उन्हे सरकार की इस चाल से घृणा थी कि वह हिन्दुओ के हितो पर कुठाराघात करते हुए मुसलमानो का पक्ष ले तथा हिन्दूओ के विरुद्ध उन्हे उकसाये। हिन्दू मुस्लिम द्वेप के विपय मे तिलक ने अपने विचार स्पष्ट करते हुये लिखा कि, ''सरकार हिन्दुओ का पक्षपात करेगी तो मुसलमान क्षुब्ध होगे, और यदि वह मुसलमानो का पक्ष लेगी तो हिन्दू उत्तेजित होगे ओर इसी उत्तेजना से दगे आरम्भ होगे।''[3] अत: तिलक ने सरकार से अपील की कि वह दोनो सम्प्रदायो के बीच निष्पक्षता बरते और उनके द्वेष को समाप्त करे : ''यदि कोई कट्टरपथी हिन्दू मुसलमान के क्षेत्र मे जैकर कसाई के हाथो से एक गाय को बचाने का प्रयत्न करता है तो वह निश्चय ही दण्ड का भागी है। इसी प्रकार यदि कोई मुसलमान कहे कि गणेश चतुर्थी के अवसर पर निकलनेवाले भक्तो के जुलूस से उसके नमाज मे बाधा पडती है तो उसे समझना पडेगा कि यह अनुचित है। हिन्दू मुस्लिम एकता का उपदेश देते समय (बम्बई के

---

1 Zacharia Renascent India P -121

2 R Pam Dutt India Today P 383

3 तिलक का 1893 मे केसरी मे लिखा गया लेख।

गवर्नर) लार्ड हैरिस को अपने अधिकारियो को आदेश देना चाहिए कि वे दोनो सम्प्रदायो के बीच निष्पक्ष भाव रखे और एक को दूसरे के विरुद्ध भडकाने की चेष्टा न करे।''[1]

तिलक की राष्ट्रवादी भावनाओ की प्रशसा, जिन्ना, असारी और हसन इमाम ने की थी। शैकत अली ने लिखा—मै पुन: सौर्वा बार कहना चाहता हूँ कि मुहम्मद अली और मै तिलक के पार्टी के थे और आज भी है।''[2] तिलक के ही विवेकपूर्ण परामर्श के फलस्वरूप 1916 का लखनऊ समझौता सम्पादित हो सका। तिलक ने ही मुसलमानो के खिलाफत आन्दोलन मे सहयोग का प्रस्ताव किया था। अली बन्दुओ की मुक्ति का प्रस्ताव भी काग्रेस मे तिलक ने ही किया था।[3] अत: व्यक्तिगत जीवन मे हिन्दू प्रिय होते हुए भी और अशत: पुनरुत्थानवादी होने पर भी तिलक को मुसलमानो या ईसाइयो से कोई द्वेषभाव नही था तथा एक राजनीतिक नेता की हैसियत से राष्ट्रीय मुक्ति के लिए उन्होने सार्वजनिक नीति अगीकार की थी।[4]

तिलक राजनीतिक राष्ट्रवाद के विचार के साथ-साथआर्थिक राष्ट्रवाद के भी समर्थक थे। दादाभाई नौरोजी, विलियम डिम्बी, गोखले लालालाजपत राय के समान तिलक ने अग्रेज द्वारा भारत के आर्थिक शोषण सम्बन्धी निर्गम सिद्धान्त का समर्थन किया।[5] तिलक ने केसरी मे अपने लेखो द्वारा यह स्पष्ट किया कि ''भारत का कच्चा माल विदेशो से पक्का बनकर जब लौटता है तो भारत की इस

---

1 एन० जी० योग, लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग 1969 पृ०

2 एम० पी० बापत, Reminiscences of Tilak P 576

3 पुरुषोत्तम नागर आधुनिक भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक चितन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 1980 पृ० 197

4 पुरूषोत्तम नागर आधुनिक भारतीय मामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1980, पृ० 197

5 एम० एन० राय India in Transition P 185

प्रकार लूट की जाती है और देश की पूँजी को किस तरह इग्लैण्ड पहुॅचा दिया जाता है। भारत मे जो स्वदेशी आन्दोलन चला वह 'आर्थिक दृष्टि से देश के प्रारम्भिक पूँजीवाद की वृद्धि और विस्तार का आन्दोलन था।'[1] तिलक ने स्वीकार किया कि जब तक देश की राजनीतिक शक्ति विदेशी हुकूमत के हाथ मे है तब तक देशी उद्योग-धन्धो को सरक्षण मिलना सम्भव नही है, लेकिन जनता स्वय पहल करके सरक्षण की भावना को प्रोत्साहन दे सकती है। **1907 में इलाहाबाद में अपने एक भाषण में तिलक ने कहा कि,** "हम विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार करके अपने ढग का सरक्षणार्थ आयात कर लगा सकते है।"[2] तिलक ने अपने लेखो मे स्वदेशी आन्दोलन के आध्यात्मिक, राजनीतिक और आर्थिक सभी पहलुओ पर जोर दिया और साथ ही तत्कालीन शिक्षा पद्धति पर भी प्रहार किया जो भारतीयो को कोई व्यवहारिक ज्ञान नही देती थी तथा देश के आर्थिक पतन की ओर से गुमराह रखती थी।[3]

राजनीतिक उग्रवाद और आक्रमक राष्ट्रवाद— तिलक सकीर्ण राष्ट्रवादी नही थे। अपने सस्कृत पाडित्य के कारण वेदान्त के गूढ सहस्यो मे उनकी विशेपरूचि थी। वेदान्त की मानव एकता की धारणा को राष्ट्रवाद के माध्यम से प्राप्त कर विश्वबन्धुत्व की स्थापना तिलक का अन्तिम ध्येय था। वे अन्तर्राष्ट्रवाद को राष्ट्रवाद का ही उन्नत रूप मानते थे। तिलक का राष्ट्रवाद बडा उग्र और तेजस्वी था तथा राजनीतिक क्षेत्रो मे उन्हे उग्रवादी राजनीति तथा राष्ट्रीयता का अग्रदूत माना जाता है।[4] तिलक ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी निरकुश नीति को सहन नही कर सके। उन्होने लार्ड कर्जन के

---

1 वी० पी० वर्मा-आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अगवाल, पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता, आगरा 1971, पृ० 202

2 वी० पी० वर्मा, वही, पृ० 202

3 वी० पी० वर्मा, वही, पृ० 202

4 डी० वी० तहमानकर लोकमान्य तिलक फादर ऑफ इण्डियन अनरस्ट एण्ड दी मेकर ऑफ मोईन इण्डिया, जान मरे, लन्दन 1956 पृ० 129

निरकुश कार्यो की 'केसरी' मे बडी कठोर आलोचना प्रकाशित की। 15 मार्च, 1904 को उन्होने 'केसरी' मे सरकार की नयी शिक्षा नीति लेख लिखा। उनका विचार था कि नयी शिक्षा नीति से देश की शिक्षा के विकास मे बाधा पडेगी। 5 अप्रैल 1904 को केसरी मे उन्होने कहा कि कर्जन योग्य अध्यवसायी तथा चतुर है किन्तु वह अपनी सम्पूर्ण बुद्धिमत्ता तथा कूटनीति का भारतीयो की दासता को स्थायी बनाने के उद्देश्य के लिए प्रयोग कर रहा है। 21 फरवरी, 1905 को तिलक ने कर्जन के उन आरोपो की तीखी आलोचना की जो उसने अपने दीक्षान्त भाषण मे भारतवासियों के विरुद्ध लगाये थे। कर्जन 'कार्यकुशलता' के आदर्श का पुजारी था। इस कारण वह अनेक ऐसे कार्य कर बैठा जिन्होने उसे जनता मे अप्रयि बना दिया।[1] 1905 मे बगाल विभाजन के अवसर पर तिलक को उग्र राष्ट्रवाद का विगुल फूँकने का स्वर्ण अवसर मिला जिसका उपयोग उन्होने राष्ट्रीय एकता को सुदृढ बनाने के लिए किया। Dr •Zacharia The Work Purpose and effect of the measuves was Machivaellian [2]

बग भग की घटना के बाद ही 'लाल, बाल, पाल' भारत मे उग्र राष्ट्रीयता की त्रिमूर्ति बन गए। पजाब, बगाल और महाराष्ट्र सगठित रूप मे सरकार की नीतियो का उग्र रूप से विरोध करने लगे।[3]

1905 के बगभग के सारा देश दु:खी था और बगाल के हर सम्प्रदाय और तबके लोगो ने इसका जोरदार विरोध किया। तिलक ने बगाल के इस जनजागरण का स्वागत किया और बहिष्कार के लिए राष्ट्र को तैयार करने मे जुट गए। उन्हे इस विभाजन की बुराई मे भी एक भलाई दिखी, क्योकि इसके कारण देश मे एकता की लहर दौड गई। तिलक ने 'स्वराज' का मत्र फूँका। स्वराज्य प्राप्ति के लिए

---

1 वी० पी० वर्मा आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता आगरा-3 1971, पृ० 258

2 Zacharia Renascent India P 124

3 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग 1969 पृ० 110

तिलक तथा उनके उग्रवादी साथियो ने चार बातों पर जोर दिया[1] (1) स्वदेशी, (2) बहिष्कार, (3) राष्ट्रीय शिक्षा, (4) निष्क्रिय प्रतिरोध। यह कार्य नव राष्ट्रीय दल के माध्यम से किया जाने लगा जिसका मुख्य आधार तिलक थे। 1905 से 1909 तक इस दल ने राष्ट्रीय शिक्षा, दलित वर्ग उत्थान, राष्ट्रीय पत्रो की स्थापना आदि के विभिन्न आन्दोलन चलाए। तिलक ने अपने प्रयासो से काग्रेस को बहुत कुछ एक जन आन्दोलन मे परिष्ठि किया और स्वाधीनता सग्राम केवल शिक्षित वर्ग तक सीमित नही रहा, बल्कि बच्चे-बच्चे की जबान पर यह नारा गूज गया "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेगे।"[2]

1907 के सूरत विच्छेद से पूर्व तिलक ने अपने एक भाषण में राजनीतिक उग्रता का परिचय देते हुए कहा—"हमरा उद्देश्य स्वशासन है और इसे यथा सम्भव शीघ्र ही प्राप्त करना चाहिए। हमारा राष्ट्र आतकवादी दमन के लिए ही नही है। "आप लोग भीरू और कायर न बने। जब आप स्वदेशी को स्वीकार करते है तो आपको विदेशी का बहिष्कार करना होगा। हमारा उद्देश्य पुर्ननिर्माण है, हमारा स्वराज्य का आदर्श विशिष्ट लक्ष्य है जिसे जन समुदाय समझे। स्वराज्य मे जनता का शासन जनता के लिए होगा। उदारपथियो, डरिये मत। बहिष्कार दलित राष्ट्र के लिए एकमात्र साधन है। स्वराज्य और बहिष्कार के उपरान्त हमारा तीसरा आदर्श राष्ट्रीय शिक्षा है जिसके सम्बन्ध मे पिछली काग्रेस ने प्रस्ताव पास किया था।"[3]

तिलक ने अपने विचारो और कार्यो से सम्पूर्ण राष्ट्र मे सघर्ष, बलिदान और कष्ट सहन करने की क्षमता का विकास कराया तथा लोगो को विश्वास दिलाया कि यदि स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा आदि राजनीतिक हथियारो का पूरे जोश मे प्रयोग किया जाय तो स्वराज्य मिल कर रहेगा।[4]

---

1 एम० जी० जाग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग 1969 पृ० 106

2 विपिन चन्द्र अमलश त्रिपाठी, वरुण द स्वतत्रता सग्राम, नशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया नई दिल्ली, 1972, पृ० 86

3 डी० वी० तहमानकर, लाकमान्य तिलक फादर ऑफ इण्डियन अनरस्ट एण्ड दी मकर ऑफ मार्डन इण्डिया, जान मटे लन्दन 1956 पृ० 129

4 विपिन चन्द्र, अमलश त्रिपाठी वरूण द स्वतत्रता सग्राम नशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया नइ दिल्ली 1972 पृ० 87

शिक्षा के सम्बन्ध मे तिलक नरमदलीय नेताओ के विचारो से सन्तुष्ट नही थे। जहॉ उदारवादियो ने भारतीयो को पाश्चात्य शिक्षा की ओर उन्मुख किाय वहॉ उग्रवादियो ने भारतीयो को सास्कृतिक दृष्टि से गुलाम्म बनाने वाली पाश्चात्य शिक्षा का विरोध कर राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का समर्थन किया। तिलक ने इसी उद्देश्य से दक्षिण शिक्षा समाज (Decccam Education Society) की स्थापना की थी।[1] तिलक के अनुसार, ''पढना-लिखना ही सीख लेना शिक्षा नही है, शिक्षा वही है जो हमे जीवकोपार्जन के योग्य बनाए, देश का सच्चा नागरिक बनाए, हमे हमारे पूर्वजो का ज्ञान और अनुभव दे।''[2] तिलक मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे और धार्मिक शिक्षा के भी पक्षपाती थे, जिससे अन्य धर्मो के प्रति सहिष्णुता और आदर का भाव उत्पन्न हो सके। दिसम्बर 1905 मे नागरी प्रचारिणी सभा के सम्मेलन मे भाषण देते हुए उन्होने कहा, ''एक सामान्य लिपि किसी भी राष्ट्रीय आन्दोलन का अग है। यदि आप राष्ट्र मे एकता लाना चाहते है, तो इसके लिए एक भाषा के व्यवहार से अधिक शक्तिशाली कोई वस्तु नही है।''[3] कलकत्ता अधिवेशन मे राष्ट्रीय शिक्षा सबधी प्रस्ताव मे कहा गया कि ''राष्ट्रीय प्रणाली पर और राष्ट्रीय नियन्त्रण मे देश की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुये साहित्यिक, वैज्ञानिक और तकनीकि सभी प्रकार की नई शिक्षा प्रणाली गठित की जाय।''[4] अत: तिलक इस सोच पर कार्य कर रहे थे कि यदि देश के नागरिक शिक्षित होगे तभी उनमे देश प्रेम एव अपने राजनैतिक अधिकारो के प्रति चेतना का प्रचार प्रसार होगा। और वे जागरूक होगे।

तिलक के अनुसार निष्क्रिय प्रतिरोध साध्य प्राप्ति का साधन है, अपने आप मे कोई लक्ष्य नही। निष्क्रिय प्रतिरोध किसी कानून का पालन करने से उत्पन्न लाभ तथा हानियो को सतुलित करने का

---

1 डी० पी० करमरकर, बाल गगाधर तिलक ए स्टडी पापुलर बुक डिपो बाम्बे 1956 पृ० 582

2 डी० पी० करमरकर, वही, पृ० 582

3 एन० जी० जोग, लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग 1969 पृ० 114

4 एन० जी० जोग, वही, पृ० 123 124

माध्यम है, कानून का पालन नही। यदि विवेक द्वारा कानून की अवज्ञा अधिक लाभप्रद प्रतीत हो तो कानून का पालन नही किया जाना चाहिए। लक्ष्य प्राप्ति का सकल्प ही निष्क्रिय प्रतिरोध है। यदि मार्ग मे बाधाएँ उपस्थित हो रही हो तो सकल्प प्राप्ति के लिए उनसे सघर्ष करना चाहिए। प्रत्येक कानून सवैधानिक नही कहा जा सकता। न्याया तथा नैतिकता के विरुद्ध बनाये गये कानून संवैधानिक नही होते। निष्क्रिय प्रतिरोध न्याय सगत एव उच्च नैतिक आदर्श होने के नाते पूर्णतया सवैधानिक है।[1]

स्वेदशी तथा बहिष्कार— जिस प्रकार उदारवादियो ने अपने लक्ष्य की प्राप्ति के साधन प्रार्थनाएँ, स्मृति पत्र और प्रतिनिधि मण्डल थे, उसी प्रकार उग्र राष्ट्रवादियो के साधन बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा थे। यद्यपि स्वदेशी का आरम्भ उदारवादियो, ने एक आर्थिक आन्दोलन के रूप मे किया तथापि उग्र राष्ट्रवादियो, विशेषकर तिलक के हाथो मे यह एक राजनीतिक अस्त्र बन गया।[2] पश्चिमी भारत मे स्वदेशी और बहिष्कार का आन्दोलन तिलक के साथ पहुचा। तिलक के नेतृत्व मे पूना मे बडे पैमाने पर विदेशी कपडो की होली जलाई गई। उन्होने स्वदेशी वस्तु प्रचारिणी सभा के मुख्यांग के रूप मे सहकारी भण्डार खोले।[3] तिलक ने केसरी मे लिखा, ''हमारा राष्ट्र एक वृक्ष की भाति है। जिसका मूल तना स्वराज्य है और स्वदेशी तथा बहिष्कार अपनी शाखाएँ है।''[4] वास्तव मे स्वदेशी ने ही स्वराज्य का रास्ता दिखाया। जो स्वदेशी आन्दोलन पहले केवल आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित था, वह तिलक और उनके सहयोगियो के प्रयास से अब समस्त वस्तुओ मे आत्मनिर्भरता और स्वालम्बन का सूचक बन गया।

---

1 राइटिग एण्ड स्पीचेज ऑफ तिलक पृ० 263

2 प्रधान तथा भागवत्, लोकमान्य तिलक ओ० बायोग्राफी, जेको पब्लिशिग हाउस बम्बइ 1959 पृ० 181

3 विपिन चन्द्र, अमलेश त्रिपाठी वरुण दे स्वतन्त्रता सग्राम नशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया दिल्ली, 1972 पृ० 87

4 विपिन चन्द्र अमलेश त्रिपाठी वरुण द वही पृ० 89

तिकल ने स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलनो के राजनीतिक स्वरूप को छिपाने की कभी कोशिश नही की। उन्होने लोगो से अपील की कि कुछ हानि सहकर भी वे स्वदेशी वस्तुओ का उपयोग करे और जहाँ स्वदेशी वस्तुए प्राप्त न हो, वे ब्रिटेन को छोडकर अन्य किसी भी देश की बनी वस्तुओ को काम मे लाए—"भारत मे ब्रिटिश सरकार बिलकुल निरकुश हो गई है। वह जनता की भावनाओ की तनिक भी परवाह नही करती। अत: इससे जनता मे फैली उत्तेजना से लाभ उठाकर हमे चाहिए कि हम एक केन्द्रीय कार्यालय खोले जहा भारत की और ब्रिटेन को छोडकर अन्य देशो की बनी वस्तुओ के बारे में जानकारी एकत्र की जाए और लोगों को सूचनाए दी जाए। इस कार्यालय की शाखाएँ सारे देश में खुले और आन्दोलन को जीवित रखने के लिए भाषण दिए और सभा सम्मेलन किए जाएं तथा नए उद्योग भी खोले जाए।"[1]

तिलक ने स्वदेशी का व्यापक अर्थ मे प्रयोग शिक्षा, विचारो और जीवन पद्धति के रूप मे किया। तिलक ने भारतीयों के मन और मस्तिष्क को स्वदेशी बना देना चाहा और इस प्रकार उनमे स्वाधीनता की भावना भर देने का प्रयास किया। इससे भारतीयो मे अद्‌भुत आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन की भावना का सचार हुआ जो स्वदेशी देश-प्रेम का प्रतीक हो गया। स्वदेशी के लिए गणपति उत्सव तक का प्रयोग किया गया। मुसलमानो ने भी तिलक को स्वदेशी आन्दोलन मे अपना सहयोग दिया।[2]

तिलक जो कहते थे, वह करते भी थे। वह स्वय और घर मे भी स्वदेशी वस्त्रो का ही इस्तेमाल करते थे। नियमानुसार वह अपने पत्रों के लिए भी स्वदेशी कागज का ही इस्तेमाल करते थे और जब स्वदेशी कागज उपलब्ध नही होता था, तब वह ब्रिटेन को छोडकर किसी अन्य देश के बने कागज को खरीदते थे। उन्होने कई उत्साही युवको की कुटीर उद्योग आरम्भ करने मे सहायता दी और 'पैसा

---

1 एन० जी० जोग लाकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग 1969 पृ० 109

2 प्रधान तथा भागवत, लोकमान्य तिलक ए बायोग्राफी जेको पब्लिशिग हाउस बम्बइ 1959, पृ० 182

कोष' आन्दोलन का भी पूरा-पूरा समर्थन किया।[1] यह कोष 1903 मे भारतीय उद्योगो को प्रोत्साहन देने के लिए खोला गया था जिसमे हर व्यक्ति पीछे एक पैसा दान लिया जाता था। तिलक ने 1906 मे बम्बई स्वदेशी सहकारी भण्डार की स्थापना मे भी सहायता की।[2]

स्वदेशी की भाति बहिष्कार का भी मूल उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश सरकार के आर्थिक हितो पर दबाव डालकर उसे अपनी मॉगे मनवाने के लिए विवश कर दिया जाए। जनता को समझाया गया कि ब्रिटिश सरकार की व्यवसायिक नीति भारत के आर्थिक विनाश के लिए उत्तरदायी है। तिलक ने बहिष्कार आन्दोलन के राजनीतिक स्वरूप को छिपाने की कोई चेष्टा नही की। उन्होने बहिष्कार के आस्ति और नास्ति स्वीकारात्मक और नकारात्मक दोनो पहलुओ पर जोर डाला और कहा कि सर्वप्रथम तो इससे स्वदेशी वस्तुओ के उत्पादन को बढवा मिलेगा और दूसरे ब्रिटिश सरकार भारतीयो की मागे मानने के लिए विवश होगी।[3] बहिष्कार आन्दोलन का ब्रिटिश व्यापार पर कैसा असर पडा, इसका तत्कालीन कलकत्ता प्रवासी अग्रेजो के मुखपत्र 'इगलिशमैन' के इस विलाप से लगता है—

''बहुत सी प्रमुख मारवाडी फर्मो का व्यवसाय नष्ट हो गया है और यूरोपीय वस्तुओ का आयात करने वाली कई बडी-बडी कम्पनियो को या तो अपनी शाखाएँ बन्द कर देनी पडी है या थोडे से व्यावसाय से ही सन्तुष्ट होना पड रहा है। गोदामो मे माल जमा होता जा रहा है। दर्सल अब समय आ गया है जब बहिष्कार से व्यापार को कितनी हानि हुई है, यह स्पष्ट कर दिया जाए। बहिष्कार करने वालो को प्रोत्साहित करने का कोई प्रश्न ही नही, क्योकि उन्हे इसकी आवश्यकता नही। आवश्यकता इस बात की है कि ब्रिटिश जनता पर भारत सरकार को इस तथ्य के प्रति जागरूक कर

---

1 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग 1969 पृ० 109

2 एन० जी० जोग वही, 110

3 राईटिग एण्ड स्पीचज ऑफ तिलक पृ० 64 65

दिया जाए कि बहिष्कार के रूप मे ब्रिटिश राज के शत्रुओं के हाथ एक ऐसा हथियार आ गया है जो इस देश मे ब्रिटिश हितो की गहरी चोट पहुचाने मे कारगर है। बहिष्कार के प्रति ढिलाई या सहमति की गई तो यह किसी सशस्त्र क्रान्ति से भी अधिक खतरनाक साबित होगा जब भारत के साथ स्थापित ब्रिटेन का सम्बन्ध निश्चय ही टूट जाएगा।''[1]

तिलक का विश्वास था कि स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन कारगर राजनीतिक हथियार साबित होगे, वह सम्भवत: उनके द्वारा निर्धारित समय से पहले ही सही निकला। बहिष्कार आन्दोलन की शक्ति की व्याख्या करते हुए पूना के एक भाषण मे **तिलक ने कहा**—''तुम्हे जनना चाहिए कि तुम उस शक्ति का एक महान तत्व हो जिससे भारत मे प्रशासन चलाया जाता है। ब्रिटिशशासन रूपी यह शक्तिशाली यन्त्र तुम्हारी सहायता के बिना नही चलाया जा सकता। अपनी इस दलित और उपेक्षित अवस्था मे भी तुम्हे अपनी शक्ति की चेतना होनी चाहिए कि यदि तुम चाहो तो प्रशासन को असम्भव बना दो। तुम्ही डाक और तार का प्रबन्ध करते हो, तुम्ही भूमि का बन्दोबस्त करते हो, यद्यपि अधीनता की स्थिति मे। तुम्हे विचार करना चाहिए कि क्या तुम इस प्रकार के श्रम की अपेक्षा अपने राष्ट्र के लिए कोई और अधिक उपयोगी कार्य नही कर सकते।''[2] तिलक ने आगे कहा, ''यदि तुममे सक्रिय प्रतिरोध की शक्ति नही है तो क्या तुम मे आत्म त्याग और आत्म सयम की भी इतनी शक्ति नही है कि तुम अपने ही ऊपर शासन करने मे विदेशी सरकार की सहायता न करो? यही बहिष्कार है और यही हमारे कहने का आशय है कि बहिष्कार एक राजनीतिक शस्त्र है। हम कर वसूल करने और शान्ति स्थापित रखने मे सहायता नही करेगे। हम सीमाओ से परे अथवा भारत के बाहर भारतीय रक्त और धन के साथ युद्ध करने मे उनकी (अग्रेजी की) सहायता नही करेगे। हम

---

1 एन० जी० जाग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग नइ दिल्ली १९०९ पृ० 110 111

2 ए० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग नइ दिल्ली १९०९ पृ० 112

न्याय प्रशास्मन के सचालन मे उनको मदद नही देगे। हमारे अपने न्यायालय होगे, और जब समय आएगा, हम कर अदा नही करेगे। क्या तुम अपने सगठित प्रयत्नो से ऐसा कर सकते हो? यदि तुम कर सकते हो तो तुम कल ही स्वतन्त्र हो जाओगे।''[1]

तिलक का यह बहिष्कार आन्दोलन गाँधीजी के सहयोग आन्दोलन की पूर्वसूचना थी। यदि तिलक ने स्वराज्य के प्रति लोगो मे इतना उत्साह न पैदा किया होता तो सम्भवत. देश गाधीवादी कार्यक्रम के लिए इतना तैयार न होता। लाला लाजपतराय के अनुसार तिलक दिल्ली काग्रेस के समय से ही सत्याग्रह की बात सोचने लगे थे। जिसके तीन उद्देश्य थे—(1) भारतीयो की मोहावस्था समाप्त करना जिसके कारण उन्होने अग्रेजों को सर्वशक्तिमान रखा था, (2) देश के लिए त्याग, बलिदान और कष्ट सहन की भावना पैदा करके स्वतत्रता के प्रति उत्कृष्ट प्रेम उत्पन्न करना, और (3) देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करना।[2] सत्याग्रह का विचार तिलक के दिलोदिमाग मे मडराता रहा और दसम्बर, 1906 मे कलकत्ता काग्रेस के अधिवेशन के बाद वह फूट पडा जबकि 'नए दल के सिद्धान्तो' पर दिए गए अपने प्रसिद्ध भाषण मे उन्होंने बहिष्कार के शक्तिशाली राजनीतिक हथियार पर प्रकाश डाला और अग्रेजो से असहोयग की अपील की। तिलक ने 1906 मे ही जिस असहयोग आन्दोलन का खाका खीचा था उसे ही लगभग 14 वर्ष बाद महात्मा गाधी ने चलाया।

स्वराज्य की धारणा— तिलक ने माण्डले जेल से लोटने पर स्वदेश का सदेश घर-घर तक पहुँचाने के लिए एक प्रभावी कार्यक्रम बनाया, इसके लिए 1916 मे होमरूल लीग की स्थापना की, स्वराज्य की स्पष्ट शब्दो मे व्याख्या की और इस बात के औचित्य को सिद्ध किया कि भारत को अतिलम्ब स्वराज्य दिया जाना चाहिए। तिलक ने स्वाराज्य की माग को नैतिक, राजनैतिक और

---

1 एन० जी० जाग वही, पृ० 112

2 एन० जी० जाग लाकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग नई दिल्ली 1969 पृ० 111

सामाजिक सभी आधारो पर न्यायोचित ठहराया। **तिलक ने एक लेख मे लीग के उद्देशेयों को स्पष्ट किया,** "यह सभी मानते है कि ऐसी सस्था स्थापित करने का अब समय आ गया है, जो सारे देश मे स्वशासन के लिए जनमत तैयार करके आन्दोलन करे। इतने बडे उत्तरदायित्व को सम्हालने का अधिकार स्वभावत. काग्रेस को ही था, किन्तु यह सभी मानते है कि काग्रेस जैसी भारी भरकम सस्था को नए रास्ते पर मोडना और स्वशासन की योजना बनाकर उसके लिए आन्दोलन करने को तैयार करना अत्यन्त ही कठिन कार्य है। अत: यह आरम्भिक कार्य हो वस्तुत: किसी और को ही करना होगा। इसे अब टाला नही जा सकता। इसलिए लीग को पथप्रदर्शक सगठन मानना चाहिए, कोई पृथक सगठन बनाने का प्रयत्न नही।"[1]

लीग को लोकप्रिय बनाने के लिए तिलक ने विभिन्न स्थानो का दौरा किया तथा जगह-जगह भाषण दिए। लीग के लक्ष्य तथा उद्देश्यो को स्पष्ट करते हुए उन्होने कहा—"होमरूल" स्वशासन का मतलब केवल अपने घर का प्रबन्ध अपने हाथो मे लेना है। यह अदृश्य सरकार को इसी तरह बरकरार रखते हुए दृश्य सरकार को बदलने का एक जरिया है। 'होमरूल स्वशासन की एक बहुत ही सरल परिभाषा, जिसे एक अनपढ किसान तक समझ सकता है, यह है कि "किसी अग्रेज को अपने देश इग्लैण्ड मे जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान मुझे अपने देश मे प्राप्त होना चाहिए।"[2]

तिलक ने ब्रिटिश शासन से स्वराज्य प्राप्ति के सन्दर्भ मे ब्रिटेन के सम्राट की स्थिति को ब्रह्म की तरह अपरिवर्तनशील माना और वास्तविक शासन को 'माया' की सज्ञा दी।[3] जिस प्रकार ब्रह्म की स्थिति को परिवर्तित नही किया जा सकता उसी प्रकार ब्रिटिश सम्राट को परिवर्तित करने की आवश्यकता नही है।

---

1 एन० जी० योग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग 1969 पृ० 165

2 एन० जी० योग वही, पृ० 165-166

3 डी० बी० तहमानकर लोकमान्य तिलक फादर ऑफ इण्डियन अ रम्स्ट एण्ड दी मकर ऑफ मॉडन इण्डिया, जॉन मरे लन्दन, 1956 पृ० 232

माया के परिवर्तनकारी स्वरूप को शासन के परिवर्तनो के सदृश्य माना जा सकता है। शासन मे परिवर्तन का अर्थ है ऐसी सरकार की स्थापना करे जो जनहित मे कार्य करे। नौकरशाही के हाथो से शासन लेकर जनता के प्रतिनिधियो को सौप दिया जाय। स्वराज का यही अर्थ है कि भारत के शासन पर नौकरशाही का नियत्रण जनता को हस्तान्तिरण कर दिया जाय। जिस प्रकार से इग्लैण्ड मे सम्राट की स्थिति एक नाम मात्र के शासक की और समस्त कार्य मत्रियो की सलाह पर होता है उसी तरह भारत मे जन प्रतिनिधियो के हाथो मे वास्तविक सत्ता होनी चाहिए।[1] तिलक ने स्पष्ट किया कि ''स्वराज्य की माग को देशद्रोह समझाना व्यर्थ है। यह सम्राट की सत्ता को चुनौती नही अपितु जनता से सम्बन्धित कार्यो पर जनता के नियन्त्रण की माग है।''[2] तिलक ने यह भी व्यक्त किया कि ''भारत मे स्वशासन का अधिकार किसी भी दल को सौपा जाय-चाहे उदारवादियो को अथवा उग्रवादियो को या पुलिस के सिपाही को ही यह अधिकार क्यो न दिया जाय उन्हे कोई आपत्ति नही। मूल प्रश्न स्वराज्य का है, अधिकारो का है।''

तिलक ने अप्रैल 1916 मे स्वराज्य पर अहमदनगर मे भाषण मे कहा कि ''स्वराज्य का अर्थ सम्राट के शासन का उन्मूलन करना और किसी देशी रियासत का शासन कायम करना नही है। हमे मन्दिर के देवताओ को नही हटाना है, केवल पुजारियो को बदलना है। सम्राट अपनी गोरी तथा काली प्रजा के बीच भेदभाव नही करते इसलिए नौकरशाही पुजारियो को बदलने से उनका अहित नही होगा। स्वराज्य का अर्थ यह नही है कि अग्रेज सरकार के स्थान पर जर्मन सरकार को स्थापित कर दिाय जाए। स्वराज्य से अभिप्राय केवल यह है कि भारत के आन्तरिक मामलो का सचालन और प्रबन्ध भारतवासियो के हाथो मे हो। हम ब्रिटेन के राजा सम्राट को बनाए रखने मे विश्वास करते

---

1 डी० वी० तहमानकर लोकमान्य तिलक फादर ऑफ इण्डियन अनरम्स्ट एण्ड दी मकर ऑफ मॉडन इण्डिया, जॉन मरे लन्दन 1956 पृ० 262

2 डी० वी० तहमानकर वही पृ० 263

है।[1] लीग की इच्छा थी कि भारत की राजनीतिक मागो के आधार पर ससद मे एक विधेयक प्रस्तुत किया जाए और उसके लिए इग्लैण्ड मे आन्दोलन चलाया जाए।

1917 मे श्रीमती एनी बेसन्ट की अध्यक्षता मे काग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन ने माटेम्यू घोषणा पर अपनी 'कृतज्ञता एव सन्तोष' प्रकट किया और सरकार से अनुरोध किया कि "भारत मे उत्तरदायी सरकार स्थापित करने के सम्बन्ध मे शीघ्र ही एक ससदीय अधिनियम बनाया जाय जिसमे पूर्ण स्वराज देने की अन्तिम तिथि भी निश्चित हो।"[2] लेकिन जब जुलाई 1918 मे मॉटफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो उनकी आशा पर पानी फिर गया। क्योकि इस रिपोर्ट मे औपनिवेशिक दर्जे की कोई चर्चा नही की गयी। प्रान्तो मे केवल द्वैध शासन लागू करने की व्यवस्था थी और केन्द्रीय सरकरा को पहले की ही भाति निरकुश और गैरजिम्मेदार रहने दिया गया। प्रान्तो मे भी गवर्नरो को आरक्षण शक्तिया प्राप्त थी, जो जनता द्वारा निर्वाचित मन्त्रियो के ऊपर तलवार की भाति लटक रही थी।[3]

मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट पर तिलक ने प्रतिक्रिया जाहिर की **'केसरी' मे प्रकाशित लेख-'सुबह हुई, किन्तु सूर्य कहॉ?'** के शीषर्क मे की। "मॉण्टपोर्ड रिपोर्ट एक सुन्दर, अत्यन्त चातुर्यपूर्ण और कूटनीतकि दस्तावेज है। हम लोगो ने आठ आना स्वशासन की माग की थी। लेकिन आठआने के बदले रिपोर्ट हमे एक आना उत्तरदायी सरकार ही देती है और कहती है कि यह आठआने के स्वशासन से अधिक मूल्यवान है। इस रिपोर्ट की सारी कुशलता इसकी भाषा शैली मे है।[4] जिसमे हमे विश्वास कराने का प्रयत्न किया गया है कि उत्तरदायी सरकार का एक कौर हमारी पूर्ण स्वशासन की भीख को मिटाने के लिए पर्याप्त है। हम सरकार से यह स्पष्ट कह देना चाहते है कि हम एक आना

1 वी० पी० वर्मा आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता आगरा 1971 पृ० 216

2 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग दिल्ली 1969 पृ० 176

3 एन जी० जोग वही 176 177

4 एन० जी० जोग वही 177

उत्तरदायी सरकार के लिए उसके आभारी है, किन्तु साथ ही हम चाहते है कि इस योजना मे काग्रेस लीग योजना की सभी बाते भी शामिल कर ली जाए।''[1]

तिलक ने स्वराज्य की अपनी पूर्व धारणा अर्थात् पूर्ण स्वाधीनता की आकाक्षा का परित्याग नही किया था वरन् तत्कालीन परिस्थितियो को देखते हुए ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य का व्यवहारिक सुझाव दिया था। यह पूर्ण स्वधानिता की दिशा मे एक पहला महत्वपूर्ण कदम था। होमरूल उनका तत्कालीन राजनीतिक लक्ष्य था, क्योकि पूर्ण स्वाधीनता को वे उस समय व्यवहारिक राजनीतिक क्षेत्र से परे मानने के विचार से सम्भवत. सहमत हो गए थे। अपनी मृत्यु शैय्या मे पडे तिलक के अतिम शब्द थे ''यदि स्वराज्य न मिला तो भारत समृद्ध नही हो सकता। स्वराज्य हमारे अस्तित्व के लिए अनिवार्य है।''[2]

वास्तव मे तिलक के हृदय मे स्वराज्य के लिए जो तडपन थी वह फिरोजशाह मेहता, बनर्जी आदि नेताओ मे नही थी। तिलक लोकतात्रिक स्वराज्य के समर्थक ते। तिलक के जीवनीकार टी० वी० पर्वने ने तिलक को लोकतात्रिक स्वराज्य का प्रवर्तक माना क्योकि तलिक तत्कालीन सम्पूर्ण शासन प्रणाली को ही बदल देना चाहते थे और कहते थे कि स्वराज्य का अर्थ केवल कुछ थोडे से उच्च वेतन वाले पदो को प्राप्त कर लेना नही है वरन् एक ऐसी शामन व्यवस्था से है जिसमे शासन के सभी अधिकारी और कर्मचारी जनता के प्रति सचेत रहे तथा कार्यपालिका के अधिकारी और कर्मचारी स्वय को जनता के प्रति उत्तरदायी समझे। तिलक के लिए स्वराज्य का आशय था कि अन्तिम सत्ता जनता के हाथ मे हो। उनके लिए स्वराज्य का आधार यह विश्वास था कि राज्य का अस्तित्व जनगण के कल्याण और सुख के लिए है। पर्वते ने लिखा है कि तिलक का 'भारतीय क्रान्ति

---

1 एन० जी० जोग वही, 177

2 रामगोपाल लोक मान्य तिलक एशिया पब्लिशिग हाउस वम्बइ 1965 पृ० 230

के जन्मदाता', 'आधुनिक भारत के निर्माता' आदि अनेक नामो से उल्लेख किया गया है और इन नामो मे 'लोकतात्रिक स्वराज्य के प्रतिपादक' अवश्य ही जुड जाना चाहिए क्योकि लगभग अपने जीवन पर्यन्त उन्होने जो प्रचार कार्य किया उसमे वे इस बात को बराबर दुहराते रहे थे। उनके लिए लोकतन्त्र और स्वतन्त्रता समान उद्देशयीय थी।[1] पर्वते के ही अनुसार—"तिलक भारतीय स्वराज्य को लोकतान्त्रिक स्वराज्य के रूप मे देखते थे और भारतीय स्वराज्य के युगदृष्टा की तरह उनकी यह धारणा बहुत अमूल्य थी। उनका दृढ विश्वास था कि यह लोकतान्त्रिक स्वराज्य केवल जन जागृति , जनता की आत्म अभिव्यक्ति की शक्ति और उसके आत्म विश्वास से ही निर्मित हो सकेगा। वे कभी भी यह नही मानते थे कि आतकवादी या सेना के नेता बिना जनता की सक्रिय सहानुभूति और समर्थन प्राप्त किए अकेले ही कभी भी भारत मे स्थापित सरकार को उखाड सकेगे। जन आन्दोलनो द्वारा अपने अधिकारो को बराबर जनता और उनकी मॉग करने के लिए शक्ति का निर्माण करना तथा ऐसे आन्दोलनो द्वारा जनता की शिकायते प्रस्तुत करना और उन्हे दूर करने की मॉग करना ही उनका स्थायी कार्यक्रम था।

उनका ऐसा अनुमान था कि इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने से जो शक्ति प्राप्त होगी वही अत मे किसी अनुकूल राजनीतिक परिस्थिति मे पूर्ण राजनीतिक स्वराज्य की प्राप्ति करा सकेगी।[2]

दुर्गादास ने तिलक के राजनीतिक दर्शन के बारे मे कहा "तिलक की बहुमुखी प्रतिभा का सबसे प्रभावशाली पहलू था उनके विचारो की अधुनिकता। मै अक्सर सोचना हूॅ कि उनकी तीव्र दृष्टि ने दूर भविष्य तक देख लिया था। उन प्रारम्भिक दिनो मे भी उनके मन मे रूपरेखा थी—देश का सविधान तैयार करने के लिए सविधान सभा की, वयस्को के लिए मताधिकार की, भाषा के आधार

---

1 टी० वी० पर्वते बाल गगाधर तिलक शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता, आगरा, 1968, पृ० 290

2 टी० वी० पर्वते बाल गगाधर तिलक शिवलाल अगवाल एण्ड कम्पनी पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता, आगरा, 1968 पृ० 291

पर प्रान्तो के विभाजन की, देशव्यापी नशाबन्दी की, अल्पतम वेतन की गारण्टी के द्वारा श्रमिको के हितो की सुरक्षा की और विशिष्ट उद्योगो के लिए लोक क्षेत्र की स्थापना की।''[1]

तिलक ने स्वराज्य को सामाजिक व्यवस्था का आधार बताया। उन्होने कहा कि राष्ट्र की प्रगति का मूल स्वराज्य मे ही निहित है स्वराज्य के अभाव मे औद्योगिक प्रगति, राष्ट्रीय शिक्षा, सामाजिक सुधार आदि कुछ भी सम्भव नही है। यदि स्वराज्य मिल गया तो हमारे विभिन्न उद्देश्य सुगमतापूर्वक पूरे हो सकते है। स्वराज्य की धारणा को तिलक ने प्राकृतिक सिद्धान्तो पर आधारित किया। उन्होने माना कि स्वराज्य व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार है और अग्रेजो द्वारा भारत पर अधिकार जमाए रखना दोषपूर्ण है। यह भारतीयों का परम कर्त्तव्य है कि वे स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सघर्ष करे।[2]

तिलक ने पत्रकारिता का सहारा लेकर जनता मे चेतना फूॅकी और उसे स्वराज्य के प्रति सचेत किया। ''राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्य अग्रणियो की तरह तिलक का भी यह विश्वस था कि राष्ट्रीयता के सदेश का प्रचार करने के लिए सबसे असरकारक माध्यम समाचार पत्र थे। जिन राष्ट्रीय नेताओ ने पत्रकारिता को अपनाया था वे अच्छी तरह जानते थे कि 'बगवल फैलाने वाले' कानून की अवहेलना करके वे क्या खतरे मोल ले रहे थे। तिलक ने केसरी नामक मराठी पत्र की स्थापना की, जो उनका सबसे सशक्त अस्त्र था। उनका अग्रेजी साप्ताहिक 'मराठा' उसी का रूपान्तर मात्र था।[3] **तिलक ने 1891 में 'केसरी' में लिखा** कि ''जनमत एक ऐसी चीज होती है जिससे स्वच्छाचारी और तानाशाह भय खाते है, लेकिन ऐसा जनमत जहॉ उत्पन्न करने के लिए हमने कुछ नही किया है।

---

1 दुर्गादाम भारत कर्जन मे नेहरू तक और उसके पश्चात् रूपा पपर बक 1969 प० 93

2 दुर्गादास वही, पृ० 95

3 दुगादास भारत कर्जन स नहरू तक रूपा पपर वग 1969 पृ० 61

" दूसरे स्थान मे उन्होने कहा "शासक अत्याचारी हो जाते हैं क्योकि जनता अपनी शक्ति नही जताती। अगर वह एक होकर ऐसा करे तो शासक उसके सामने शक्तिहीन हो जाएगे।"[1]

शान्ति सम्मेलन को ज्ञापन— प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर पेरिस मे हुए शान्ति सम्मेलन के अध्यक्ष को उन्होने एक ज्ञापन पेश किया था जिसमे उन्होने लिखा कि सम्मेलन मे सरकार द्वारा मनोनीत व्यक्ति (बीकानेर नरेश और एस० पी० सिन्हा) भारत का सही प्रतिनिधित्व नही करते। इस ज्ञपन मे तिलक ने एशिया और विश्व की राजनीति मे भारत की महत्वपूर्ण राजनीतिक स्थिति का उल्लेख किया और भारत के लिए आत्म निर्णय के अधिकार की माग की।[2] तिलक ने लिखा—"एशिया मे और सम्पूर्ण विश्व मे शान्ति की दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक है कि भारत को आन्तरिक रूप मे स्वशासन प्राप्त होना चाहिए और उसे पूर्व मे स्वतन्त्रता का गढ बनाया जाना चाहिए। जर्मनी के प्रभुत्व के खतरे से मानव जाति की मुक्ति के लिए युद्ध के बाद मेरे लिए यह अनुरोध करना आवश्यक हो गया है कि किसी भी समय राष्ट्र के ऊपर उसकी सहमति के बिना किसी अन्य राष्ट्र का शासन नही होना चाहिए, चाहे उसके ऊपर ट्रस्टीशिज के सिद्धान्त का आवरण ही क्यो न पडा हो। अत: भारत अपने जन्मसिद्ध अधिकार के रूप मे अपने लिए आत्मनिर्णय के अधिकार की माग करता है। अयोग्यता का तर्क जो साधारणत: अज्ञानियो अथवा निहित स्वार्थो द्वारा पेश किया जाता है, एकदम अमान्य और असत्य है, मेरा पूर्ण विश्वास है कि भारत की दरिद्रता, भौतिक, अधोगति, औद्योगिक पुनरोद्धार, आर्थिक विकास, तकनीकी एव प्राथमिक शिक्षा आदि की समस्याओ तथा जाति प्रथा एव परम्परा के नाजुक प्रश्नो का समाधान वे लोग कभी नही कर सकते जो पश्चिमी सभ्यता के अनन्य भक्त है। इन समस्याओ का सफलतापूर्वक सामना तो केवल भारतीयो द्वारा ही

---

1 टी० वी० पर्वते बाल गगाधर तिलक, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता आगरा 1968 पृ० 290

2 वी० पी० वर्मा आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता, आगरा, 1971 पृ० 219

किया जा सकता है।''[1] तिलक ने शान्ति सम्मेलन से यह अपील की कि राष्ट्रसघ मे भारत को प्रतिनिधित्व का वही अधिकार दिया जाए जो अन्य ब्रिटिश अधि राज्यो को प्राप्त है। तिलक का यह ज्ञपान ''भारत की परराष्ट्र नीति का पहला महत्वपूर्ण प्रलेख है। कहा जा सकता है कि यही से भारत की परराष्ट्र नीति का प्रारम्भ हुआ।''[2]

काग्रेस डेमोक्रेटिक पार्टी का घोषणा पत्र— अमृतसर काग्रेस ने, तिलक, गाधी आदि के विचारो को सम्मान देते हुए यह घोपित किया कि मोन्टफोर्ड सुधार यद्यपि अपर्याप्त, असन्तोषजनक और निराशाजनक है, लेकिन देश को उन्हे क्रियान्वित करने मे अपना सहयोग देना चाहिए ताकि पूर्ण स्वराज्य को यथाशीघ्र स्थापना हो सके। तिलक ने अमृतसर काग्रेस द्वारा पारित प्रस्ताव की भावना के अनुरूप कार्य शुरू किया और मोन्टफोर्ड सुधार योजना के अन्तर्गत स्थापित की जाने वाली विधान परिपदो के लिए चुनाव लडने हेतु 'काग्रेस लोक तन्त्री दल' (काग्रेस डेमोक्रेटिक पार्टी) की स्थापना की।[3] 20 अप्रैल 1920 को इस दल का घोषणापत्र जारी किया गया जिसमे मुख्यत बाते थी— (1) काग्रेस मे आस्था (2) प्रजातन्त्र का प्रारम्भ (3) शिक्षा का प्रयास (4) मताधिकार का विस्तार (5) धार्मिक सहिष्णुता (6) राष्ट्रसघ के निर्माण का स्वागत (7) 1919 के अधिनियम का बहिष्कार (8) शिक्षा आन्दोलन और सगठन का नारा (9) सामाजिक और धार्मिक न्याय प्रदान करना (10) श्रमिको को उचित वेतन (11) रेलो का राष्ट्रीयकरण (12) नागरिक सेवा, एव (13) भाषाई आधार पर प्रान्तो का गठन।

वास्तव में काग्रेस डमोक्रोटिक पार्टी के घोपणा पत्र की यह कतिपय मुख्य बाते इस बात का सकेत देती है कि तिलक विधान परिषदो मे कार्य को पूरा महत्व देते थे और इस बात से परिचित ते

---

1 वा० जी० वमा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता, आगरा, 1971 पृ० 220

2 वी० पी० वर्मा- वही, पृ० 220

3 अवस्थी एव अवस्थी आधुनिक भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन पृ० 274

कि यदि निर्वाचन मे भाग ने लेकर परिषदो का बहिष्कार किया गया तो परिषदो मे सरकार समर्थक व्यक्ति ही मर जायेगे और इस प्रकार वह सरकार के पक्ष मे नीतियो को भी प्रभावित करेगे। जिससे जो सपना तिलक ने स्वराज्य के सबन्ध मे देखा था वह अधूरा रह जायेगा तथा पूर्णता को कभी प्राप्त नहीं कर पायेगा।[1]

सामाजिक विचार—तिलक सामाजिक विचारो मे सुधारवादी न होकर पुन: अभ्युदयवादी थे। वे रानाडे के विचारो के विपरीत भारतीय सभ्यता व सस्कृति के प्राचीन सफल सामाजिक प्रयोगो को वर्तमान भारत मे पुन: स्थापित करने मे विश्वास रखते थे। वे भारत के उदारवादियो के समाज सुधार की पाश्चात्य परम्परा का अनुसरण नही करना चाहते थे।[2] तिलक एक सच्चे जन नेता और राजनीतिक नेता थे, अत: यह स्वाभाविक था कि वे सामाजिक सुधारो की ओर ध्यान देते लेकिन उनका मार्ग तत्कालीन प्रबाह से भिन्न था। जहॉ तत्कालीन नेता सरकार से मिल जुलकर सुधार कानून बनवाने और सुधार करने के अनुगामी थे वहॉ तिलक सामाजिक सुधार को सरकार की ओर से लादना उपयुक्त नही मानते थे। उनका कहना था कि सामाजिक सुधार जनता की ओर से होने चाहिए और क्रमश: धीरे-धीरे विकसित होने चाहिए। उन्हे इसका क्षोभ था कि भारत की सम्भ्रान्त एव शिक्षित पीढी पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण द्वारा भारत की सभ्यता व सस्कृति को भौतिकवादी परम्परा का विस्तार भारत मे नही चाहते थे।[3] तिलक अग्रेजी भाषा व साहित्य के अध्ययन तथा पाश्चात्य राजनीतिक मान्यताओ के ग्रह्य पक्ष को अपनाने से मना नहीं करते थे। वे स्वय दक्षिणी शिक्षा समिति, पूना के प्रमुख कर्त्ताधर्त्ता के रूप मे अग्रेजी भाषा के अध्ययन की अनिवार्यता का

---

1 अवस्थी एण्ड अवस्थी आधुनिक भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन पृ० 275

2 थियोडोर एल० शे० दी लिगेसी ऑफ दी लोकमान्य आक्सफोड यूनिवर्सिटी प्रेस 1956 पृ० 63

3 डी० वी० अथाल्ये, दी लाइफ ऑफ लोकमान्य तिलक जगतहितेच्छु प्रेस पूना 1921 पृ० 54

समर्थन करते रहे।[1] तिलक समाज सुधार से पहले राजनीतिक सुधार पर बल देते थे लेकिन वह कभी भी रूढिवादी नही थे वरन् अस्वस्थ पुरानी परिपाटियो को बदलने के पक्ष मे थे। उनकी मान्यता थी कि परिवर्तन धीरे-धीरे सहमति से किये जाने चाहिए, किसी दबाव से नही। उनका विश्वास था कि सार्वजनिक शिक्षा ही समाज सुधार का सबसे उत्तम साधन है और इसके प्रसार मे एक आदर्श व्यवहार सौ उपदेशो से अधिक प्रभावशाली होता है।[2]

समाज सुधार की दृष्टि से तिलक सामाजिक सुधारो को राजनीतिक सुधारो के बाद ही लाना चाहते थे। वे पहले स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे बाद मे ओर कुछ। तिलक ने विशेपकर उन लोगो का विरोध किया, जो समाज सुधार का आधार वेद पुराणो मे आधाररित मानते थे। उन्हेने रा० गो० भाडारकर जैसे प्रकाण्ड विद्वान का भी विरोध किया—तर्क का तर्क से, मन्त्रो का मन्त्रो से जबाव देकर उनकी सभी बातो का खण्डन किया।[3] उन्होने रानाडे द्वारा प्रस्तावित कतिपय सुधारो का समर्थन भी किया। उदाहरणार्थ वे इस बात से सहमत थे कि लडको का विवाह 16, 18, व 20 वर्ष के पहले न किया जाये तथा लडकियो का 10, 12, या 14 वर्ष के पहले।[4]

तिलक ने सामाजिक सुधार से पूर्व राजनीतिक उन्नति और राष्ट्रीय जागरण का समर्थन किया। तिलक का कहना था कि ''सामाज सुधार और राष्ट्रीय चेतना मे कोई सम्बन्ध नही है। कुछ भले लोग चाहते है कि राजनीतिक सुधार लागू होने से पहले सामाजिक सुधार हो जाना आवश्यक है। ये सुधार बर्मा मे मौजूद है पर वहॉ धर्म , देश या देशी व्यापार के सम्बन्ध मे भावनाओ का अभाव है। हमे वर्मा के समाज सुधार पसन्द है, पर वर्मा और श्रीलका की परिस्थिति देखकर लगता है कि भारत

---

1 राम गोपाल, लोकमान्य तिलक, एशिया पब्लिशिग हाउस बम्बइ 1965 पृ० 26

2 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग भारत सरकार नइ दिल्ली 1969 पृ० 28

3 एन० जी० जाग वही, पृ० 28

4 पुरूपात्तम नागर आधुनिक भारतीय मामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1980पृ० 200

का औद्योगिक या राष्ट्रीय विकास के लिए समाज सुधार आवश्यक मानना गलत है। देश प्रेम, आपसी भेदभाव मिटाने की क्षमता, देश के लिए सयुक्त रूप से काम करने की इच्छा और आदत मे गुण आवश्यक है। यदि हम भारत को दासता से निकालना चाहते है तो हमे इसी दिशा मे चलना होगा।''[1]

तिलक राजनीतिक आन्दोलन और सामाजिक सुधारो को एक साथ मिलाने के पक्ष मे नही थे। उनका कहना था कि भारत जैसे देश मे, जहॉ सामाजिक और धार्मिक वर्गो तथा अगणित भेदभावो का अस्तित्व है, यदि सामाजिक सुधारो को राजनीतिक आन्दोलनो के साथ जोड दिया गया तो ये भेदभाव राजनीतिक क्षेत्र मे भी पनप जाएगे और तब रानीतिक मच पर सम्पूर्ण भारत का एक शक्तिशाली सगठन नही बन पाएगा। यह एक ऐसी स्थिति होगी जिससे राष्ट्रीय जागरण को आघात पहुँचेगा और देश अपने राजनीतिक लक्ष्य से दूर हो जाएगा।[2]

तिलक का कहना था, ''मै इसमे विश्वास नही करता कि राजनैतिक मुक्ति के पूर्व ही सामाजिक पुन निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए। जब तक हमे अपना भविष्य स्वय निश्चित करने की शक्ति नही प्राप्त हो जाती, तब तक, मेरी राय मे, राष्ट्रीय पुनर्जागरण नही लाया जा सकता। मैने अपने जीवन मे सदा इसी विश्वास का प्रचार किया है। जब मैने 'एज ऑफ कन्सेन्ट बिल, का विरोध किया था, तो वह मुख्यतया केवल इसी आधार पर। मैं न तो तब समझता था और न ही अब समझता हूँ कि ऐसा कोई भी विधान मण्डल, जो जनता के प्रति उत्तरदायी नही है, सामाजिक विषयो पर कानून बनाने के लिए सक्षम है।''[3]

---

1 रामगोपाल लोकमान्य तिलक, एशिया पब्लिशिग हाउस, बम्बइ 1965 पृ० 100

2 रामगोपाल लोकमान्य तिलक, एशिया पब्लिशिग हाउस, बम्बई 1965 पृ० 107

3 डी० पी० करमरकर, बाल गगाधर तिलक ए स्टडी पोपुलर बुक डिपा बम्बइ 1956 पृ० 78

जाति पाति, अस्पृश्यता, बाल विवाह, विधवा विवाह, मद्यपान आदि पर विचार— तिलक का समाज सुधार का दृष्टिकोण परम्परा तथा आधुनिकता मे समन्वय का प्रतीक था। तिलक ने सामाजिक सम्बन्धो के सदर्भ मे हिन्दू समाज की कतिपय मान्यताओ को स्वीकार किया किन्तु वे हिन्दू समाज की रूढियो से बधे हुए नही थे। अन्य जातियो के साथ बैठकर भोजन आदि करने मे उन्हे कोई हिचक नही होती थी। 1891 'पचदौह काण्ड' मे जिसमे उन्हे ईसाई पादरी जोशी के साथ चाय पीनी पडी। जिसके फलस्वरूप जन साधारण मे एक बबडर खडा हो गया और उन्हे जाति बहिष्कार की दमकी दी गई, तो उन्होने गुरू शकराचार्य के पवित्र न्यायालय मे उपस्थित होकर हल्के से दण्ड को स्वीकार किया और अपने इस व्यवहार से यह स्पष्ट किया कि यह परिस्थितियो की मॉग थी कि विदेशी हुकूमत से लडने के लिए जनता को अपना सहयोगी बनाया जाए और जन जीवन का अनादर नही करना चाहिए।[1]

तिलक ने इस घटना के विपय मे लिखा था : "समाज सुधारक जादू की छडी घुमाकर ही सभी सुधार करना चाहते है। हमारा कहना यह है कि सुधार देश काल की परिस्थितियो के अनुरूप ही हो सकते है। हम सभी के अपने परिवार है और हम समाज के साथ ही रहना चाहते है। इस दशा मे वैयक्तिक भावनाओ और समाचेच्छा के बीच सामजस्य होना ही चाहिए। इसी सामजस्य और समझौते पर आधारित सुधार स्थायी और टिकाऊ होगे। जो लोग चाहते है कि केवल अपनी इच्छाओ के अनुसार ही जीवन बिताए, उन्हे किसी एकान्त मे रह कर ही ऐसा करना चाहिए। अन्य जो लोग समाज मे रहना चाहते है, उन्हे अपनी इच्छाओ और मामाजिक परिपाटी के बीच समझौता करना होगा।"[2]

---

1 डा० पी० करमरकर बाल गगाधर तिलक ए स्टडी पापुलर बुक डिपा बम्बइ 1956 पृ० 78

2 एन० जी० जोग, लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग भारत सरकार नई दिल्ली 1969 पृ० 33

तिलक ने अस्पृश्यता के विरोध मे कहा कि ''यदि ईश्वर भी कहे कि मैने अस्पृश्यता की व्यवस्था दी है, तो मै ईश्वर के अस्तित्व को भी नही मानूगा।'' 1910 मे घटित वेदोक्त घटना का प्रश्न यह था कि ब्राह्मणेतर जातियो तक वैदिक सस्कार के विशेषाधिकार का विस्तार किया जाए या नही। तिलक इसके विरुद्ध नही थे किन्तु वह ब्राह्मण पुरोहितो को बाध्य करने के विरुद्ध थे : ''प्रश्न यह था कि क्या किसी रूढिवादी ब्राह्मण को उसकी इच्छा के विरुद्ध प्राचीन शासको द्वारा दिए गए 'इनामो' को जब्त करने का भय दिखाकर ब्राह्मणेतर परिवारो मे वैदिक रीतियो का पालन करने को बाध्य किया जाना चाहिए। इसको उचित मानने से व्यक्तिगत स्वाधीनता के सिद्धान्त का उल्लघन होता है। मै जानता हूँ कि हर जाति, यदि चाहे तो, वेदोक्त रीतियों का पालन कर सकती है, लेकिन कोई भी प्राचीन शासको द्वारा किए गए 'इनामो' की जब्ती को उचित नही ठहरा सकता।[1]

शिवाजी तथा गणपति महोत्सव मे उन्होने अवर्णो को सवर्णो के साथ सम्मिलित किया तथा उनके साथ कुलीन हिन्दुओ जैसा व्यवहार किया। इस प्रकार तिलक समाज सुधार के क्षेत्र मे अनेक समाजसुधारको से आगे थे।[2] उन्होने बाल विवाह का विरोध तथा विधवा विवाह का समर्थन किया। 9 जनवरी 1890 मे बैरमजी मलाबारी द्वारा प्रस्तावित सुधार प्रस्तावो मे सकलिन करने के लिए कुछ प्रस्ताव पेश किए—(1) कन्याओ का विवाह 16 वर्ष की अवस्था से पूर्व नही होना चाहिए, (2) युवको का विवाह 21 वर्ष के पूर्व नही होना चाहिए। (3) किसी भी पुरुष को 40 वर्ष के बाद विवाह नही करना चाहिए, (4) यदि कोई पुरुप पुन. विवाह करना चाहे, तो उसे किसी विधवा से विवाह करना चाहिए, (5) दहेज प्रथा बन्द हो, (6) मद्यपान बन्द हो, (7) विधवाओ का मुण्डन न हो, (8) जो लोग इन प्रस्तावो को स्वीकार करे वे अपनी आय का दसवा भाग इन्हे लागू करने के लिए दान दे।

---

1 एन जी० जोग, वही, पृ० 35

2 डी० वी० अथालये दी लाइफ ऑफ लोकमान्य तिलक जगतहितेच्छु प्रेस पूना 1921 पृ० 54

लेकिन किसी भी समाज सुधारक ने तिलक के प्रस्तावो का समर्थन नही किया।[1]

इस प्रकार तिलक ने समाज सुधारको के कथन और कार्य के भेद को अपने जीवन मे प्रविष्ट नही होने दिया। अन्तर केवल यह था कि तिलक समाज सुधारो को कानून के माध्यम से क्रियान्वित करने के पक्ष मे न थे। प्रो० डी० के० कर्वे द्वारा विधवा विवाह किये जाने पर उन्हे बधाई दी। उन्होने स्वय अपनी पुत्रियो का विवाह पन्द्रह वर्ष की आयु के पश्चात किया।[2]

तिलक बाल विवाह के पक्ष मे न थे और न ही अतपावस्था सम्भोग के समर्थक थे, परन्तु उन्होने 'सहमति आयु विधेयक' (The Age of Consent Act, 1891) का विरोध किया। उन्होने इस विधेयक का विरोध केवल इसलिए किया कि वे चाहते थे कि समाज सुधार के क्षेत्र मे विदेशी सरकार हस्तक्षेप न करे। पर जब यह विवाह आयु विधेयक कानून बन गया तो तिलक ने उसका पालन किया।[3]

तिलक का समाज सुधार से कोई विरोध नही था, उनकी दृष्टि से भारत का पाश्चात्य स्वरूप मे पुनर्निमाण भारत की महानता के लिए घातक था, और किसी भी प्रकार के सुधार को विदेशी शासन द्वारा जबरन थोपा जाना उस सुधार को अनैतिक बनाना था।[4]

तिलक की यह मान्यता थी कि भारत के गौरवपूर्ण अतीत को भुलाने के स्थान पर उन त्रुटियो को दूर किया जाय जिसके कारण कतिपय सामाजिक कुरीतिया पनप गई थी। उन कुरीतियों, अध विश्वासो एव रूढियो के अन्त के पश्चात् शेष को यथावत् बनाये रखा जाय। तिलक ने कहा "जिस प्रकार से रूढिवादी मान्यताए तथा उनके पोषक पडिण एकपक्षीय है उसी प्रकार से अग्रेजी शिक्षा प्राप्त

---

1 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग भारत सरकार नइ दिल्ली 1969 पृ० 31-32

2 डी० वी० अथातये दी लाइफ ऑफ लोकमान्य तिलक, जगतहितेच्छ प्रस पूना 1921 पृ० 55

3 टी० वी० पर्वते बाल गगाधर तिलक शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा 1968 पृ० 156

4 थियाडार एल० श०, दी लिगसी ऑफ दा लाकमान्य ऑक्सफाड यूनिवर्सिटा प्रस 1956पृ० 64

मुधारक भी एकपक्षीय एव दकियानूसी है। पुराने शास्त्री तथा पडित नवीन परिस्थितियो से उसी प्रकार अपरिचित है जिम प्रकार से नवीन शिक्षा प्राप्त सुधारक हिन्दू धर्म की परम्पराओ एव दशर्न से। अत: यह नितान्त आवश्यक है कि नवीन शिक्षा प्राप्त वर्ग को प्राचीन मान्यताओ तथा दर्शन का उचित ज्ञान कराया जाय तथा पुराने पडितो तथा शास्त्रियो को नवीन परिवर्तनो एव परिवर्तनशील परिस्थितियो की जानकारी दी जाय।''[1]

आलोचको का कहना था कि तलिक राजनीति मे वामपथी और धार्मिक मामलो मे घोर दक्षिण पथी थे। उन्होने 7 जून 1892 की 'केसरी' मे लिखा था—''हमारे राजनीतिक क्षेत्र की तथा उनके सामाजिक क्षेत्र की समस्याओ मे पर्याप्त समानता है न तो हमे देश के वर्तमान प्रशासन से ही पूर्ण सतोष मिलता है और न ही अपनी सामाजिक स्थिति से हम तो दोनो मे सुधार चाहते है।'' अग्रेजी प्रशासन तथा भारतीयसमाज दोनो की ही जडे गहरी है। इसलिए हमे बडे ध्यान से काम करना है। अब यदि जनता राजनीतिक सुधारो को आपसी तौर पर अपनाने को तैयार है तो हमारी समझ में नही आता कि हम सामाजिक सुधारो की विद्रोहात्मक रूप मे लेकर क्यो चले। मधान्ता पूर्ण आत्मघातक विरोध कभी-कभी सफल हो जाया करता है किन्तु राजनैतिक तथा सामाजिक मामलो मे मधान्ता आत्मघातक ही है।''[2]

तिलक विधवा विवाह के समर्थक थे और मद्यपान के घोर विरोधी। उस समय महाराष्ट्र मे सरकार की आनकारी नीति के कारण लोगो मे मद्यपान का व्यसन बहुत बढ गया था। विदेशी प्रभुत्व का शिकजा इतना कठोर था कि कोई इस बुराई को दूर करने के लिए जन आन्दोलन छेडने के बात भी नही सोचना था। लेकिन तिलक ने बहादुरी पुर्ण कमद उठाकर सरकार की आनीकारी नीति की

---

1 थियोडोर एल० शे०, वही, पृ० 64

2 रामगोपाल, लोकमान्य तिलक, एशिया पब्लिशिग हाउस 1965 पृ० 30

कटु आलोचना की और कहा कि "सरकार से ऐसी आशा करना मूर्खता होगी कि वह मद्यपान बन्द कर देगी। यह तो युवको को चाहिए कि वे मद्यपान के विरुद्ध अपने विचार प्रकट कर दे।"[1] तिलक ने जनता को निमन्त्रण किया कि मदिरा की दुकानो पर धरना देना चाहिए। धरना देने का तरीका सीधा है और उससे कानून की अवज्ञा भी नही होती, तिलक ने जगह-जगह सार्वजनिक सभाओ मे भाषण दिये जिसमे हिन्दू धर्म और इस्लाम मे मदिरा पीना बर्जित है, इस पर प्रकाश डाला। **तिलक ने कहा** "अग्रेजो के कारण भारतीयो का अद्य:पतन हो रहा है। अग्रेजो ने उन्हे मदिरा पीना सीखा दिया है और वे प्रतिवर्ष 10 करोड रुपया भारत से उस मद मे ले जाते है लोगो की चरित्र कि वे अपने गाव मे मदिरा की दुकान न रहने दे और यदि मदिरा की दुकान हटाने के कारण उन्हे सूली पर चढा दिया जाए तो कोई परवाह की बात नही।"[2]

तिलक ने विधवा विवाह और अस्पृश्यता का समर्थन करते हुए कहा था, "जब विधवा विवाह का आन्दोलन पूरे जोर पर था, तो मैने ही सुधारको को सलाह दी थी कि वे शकराचार्य और सनातनी हिन्दू नेताओ से किसी उचित आधार पर कोई समझौता कर ले। मेरे विचार से विधवा विवाह पर लगाई गई रोक केवल ब्राह्मणो तथा उनका अनुगमन करने वाली कुछ अन्य जातियो तक ही सीमित है। इसलिए मैने जो प्रस्ताव रखा था, वह यही था यद्यपि बाद वाले हिन्दू कानून ने विधवा विवाह की मजूरी नही दी है, फिर भी शास्त्रोनुमोदित विवाह के रूप मे इसे शामिल करके तथा रूढिवादियो की स्वीकृति प्राप्त कर इस सामाजिक कुप्रथा का अन्त करने के लिए किसी समझौते पर पहुँचा जा सकता है।"[3]

---

1 रामगोपाल, वही, 39

2 रामगोपाल, वही, 39

3 एन० जी० योग, लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग भारत सरकार नइ दिल्ली, 1969 पृ० 37

तिलक सामाजिक एव धार्मिक मामलो मे नौकरशाही का हस्तक्षेप अनुचित मानते ते। किसी भी सामाजिक कानून को लागू करने के लिए कार्यपालिका और फिर तत्सम्बन्धी समस्याओ के लिए न्यायपालिका की आवश्यकता रहती है और फलस्वरूप नौकरशाही की शक्ति का क्षेत्र विकसित होता है। उनका यह भी मानना है कि भारतीयों के हक मे यह कतई ठीक नही है कि ब्रिटिश नौकरशाही का कार्यक्षेत्र विकसित हो। और विदेशी लोग भारतीयो की सामाजिक समस्याओ पर निर्णय दे यह लज्जाजनक है।[1]

समाज सुधार पद्धति— लोकमान्य तिलक को तत्कालीन समाज सुधारको का रूख पसन्द न था उन्हे इस बात से बडा कष्ट था कि एक तो ये समाज सुधारक पाश्चात्य विचारो की हिन्दू समाज मे ठूँसना चाहते थे और दूसरे हिन्दू धर्म तथा समाज के प्रति इनमे बहुत कुछ घृणा और उपेक्षा के भाव ते। तिलक परिवर्तन के तो पक्षपाती थे लेकिन वे इस पक्ष मे नही थे कि सामाजिक परिवर्तन और सुधारो को लागू करने के लिए भारतीयो का पश्चिमी करण कर दिया जाय।[2] समाज सुधार करने की पद्धति के प्रश्न पर उनका तत्कालीन सुधारवादियो से मतभेद था। रानाडे, गोखले, आगरकर और मालाबरी जैसे पश्चिमी प्रभावित समाज सुधारको से उनके विचार मेल नही खाते थे। समाज सुधार के विरोधी होने के अपने ऊपर लगाये गये तथाकथित आरोप के विकल्प मे तिलक ने लिखा था—"कोई भी सच्चा राष्ट्रवादी प्राचीन आधारशिलाओ पर ही पुर्न निर्माण करना चाहता है। वह सुधार जो प्राचीनता के प्रति अनास्था एव अनादर के भाव पर टिका हुआ है टिकाऊ प्रतीत नही होता। इसलिए कोई भी सुधार कार्य चालू करने के पहले मै किसी सुनिश्चत राष्ट्रीय हित की अक्षुण रखने और समृद्ध करने की कोशिश करता हूँ आयरलैण्ड की राजनीति मे भी इसी प्रकार के परिवर्तन हुए है   हम सुधार के नाम पर अपनी सस्थाओ का अग्रेजीकरण व अराष्ट्रीयकरण करना नही

---

1 टी० वी० पर्वत बाल गगाधर तिलक शिवलाल अगवाल एण्ड कम्पनी आगरा १९०८ पृ० 299

2 एम० जी० याग, लोकमान्य बाल गगाधर तिलक पृ० ३०

चाहते। हमारा ध्येय अपने देश की उन्नति ही है। ताकि वह ससार के अन्य देशो की बराबरी कर सके।[1]

लोमान्य तिलक के समाज सुधार सम्बन्धी विचारो और पद्धति से हमे उनके सामाजिक दर्शनो का स्वरूप भलीभाति स्पष्ट हो जाता है। तिलक के घोर विरोधी शिरोल ने उन्हे **भारतीय अशान्ति का जनक**[2] कहा। लेकिन तिलक के समाज सुधार मम्बन्धी प्रयत्न और विचारो से शिरोल का आरोप सर्वथा असत्य सिद्ध होता है सही बात तो यह है कि तिलक एक उदार और आदर्श सामाजिक दर्शन के प्रणेता थे, हॉ "तिलक पाश्चात्य आधार पर सामाजिक परिवर्तन लाने के विरुद्ध थे।"[3] फिर ये भी था कि तिलक ने समाज सुधारो से पहले राजनीतिक सुधारो को प्राथमिकता दी। "वे राष्ट्रवादी थे इसलिए उन्होने राजनैतिक मुक्ति को प्राथमिकता दी उनका विचार था कि नैकशाही के विरुद्ध सफल सघर्ष चलाने के लिए आवश्यक है कि जनता की धार्मिक तथा सामाजिक एकता अक्षुण रखी जाय। अपनी सूक्ष्म दृष्टि से उन्होने देख लिया था कि समाज सुधार से सामाजिक विधान की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है और इस बात को उस समय वे दुर्भाग्यपूर्ण समझते थे। उनका कहना था कि केवल सामाजिक प्रगति राजनीतिक मुक्ति की कसौटी नही है।"[4] अत· तिलक का अपराध यही था कि उन्होने समाज के प्राचीन आदर्शो और मूल्यो का पक्ष लिया तथा भारतीयो को पश्चिम की अन्य भक्ति न करने की चेतावनी दी।

तिलक ने जो सामाजिक दर्शन प्रस्तुत किया उसके महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्टत: ये थे : (1) तिलक सामाजिक परिवर्तन के विरोधी नही थे वरन् उस सामाजिक परिवर्तन का विरोध करते थे जो पश्चिम

---

1 एम० जी जोग, लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, पृ० 36

2 वा० शिराल, इण्डियन अनरेस्ट, लन्दन-1910

3 वी० पी० वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा 1977 पृ० 195

4 वी० पी० वर्मा, वही, पृ० 195

के अन्धानुकरण से होता है (2) तिलक ने राजनीतिक जागरण ओर राजनीतिक सुधारो को सामाजिक सुधारो की तुलना मे प्राथमिकता दी। (3) तिलक सामाजकि सुधार सहज और स्वभाविक ढग से होने के पक्षधर थे। जिससे असन्तोष और सामाजिक मगठन की बाधा से बचा जा सके। (4) वे सामाजिक परिवर्तन क्रमिक और सावयवी रूप मे पसन्द करते थे। तथा पश्चिमी करण की प्रवृत्ति के विरोधी थे।[1]

अत· तिलक ने जिस प्रकार स्वराज्य को सामाजिक व्यवस्था का आधार बताया उस परिपेक्ष्य मे **जवाहर लाल नेहरू के ये विचार** "तिलक आधुनिक भारत के हरक्यूलीज तथा प्रोमेथियस"[2] ही नही अपितु "भारतीय राष्ट्रवाद के पिता थे" यह सत्य ही है क्योकि उसका मानना था कि राष्ट्र की प्रगति का मूल स्वराज्य मे ही निहित है स्वराज्य के अभाव मे औद्योगिक प्रगति राष्ट्रीय शिक्षा सामाजिक सुधार आदि कुछ भी सम्भव नही है यदि स्वराज्य मिल गया तो हमारे विभिन्न उद्देश्य सुगमतापूर्वक पूरे हो सकते है। स्वराज्य की धारणा को तिलक ने प्राकृतिक सिद्धान्तो पर आधारित किया। उन्होने माना कि स्वराज्य व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार है और यह भारतीयो का सर्वोपरि कर्त्तव्य है कि वे स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सघर्ष करे। इसी से ही राष्ट्र एव समाज की उन्नति होगी।

---

1 अवस्थी एण्ड अवस्थी, आधुनिक भारतीय राजनीतिक एव सामाजिक चिन्तन पृ० 258 259

2 जवाहर लाल नहरू, टुवड फ्रीडम, दा जान ड कम्पना न्यूयाक 1942 पृ० 85

<u>अध्याय—4</u>

गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक और सामाजिक विचार

राजनीतिक विचार— गोपाल कृष्ण गोखले का जीवन प्रारम्भ से ही सरल और सयमशील रहा तथा उनके बौद्धिक गुण उनके भावी उज्जवल जीवन का सकेत देते रहे। 1866 मे महाराष्ट्र में जन्मे गोखले अपने युग के चमकते हुये सितारे थे जिन्होने भारत के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सभी क्षेत्रो मे अपने चिन्तन और कार्य-कलापो का प्रसार किया। सभी क्षेत्रो मे नैतिकता के स्पर्श की कामना की, आदान-प्रदान और समझौते के मार्ग का समर्थन किया। वैद्यानिक आन्दोलन को गति दी तथा आदर्शवादी गोखले का समन्वय किया। गड्डखले की महानता इस बात मे की कि राजनीति मे उन्होने नैतिक मूल्यो को स्थान दिया, तथा विभिन्न हलचलो, राजनीतिक झंझावतो और उग्रवादियो के प्रतिरोध के बावजूद बडे धैर्य और सयम के साथ साविधानिक मार्ग पर चलते रहे। गोखले ने सदैव क्रमिक सुधारो का पक्ष लिया और भारत के लिए एकाएक, स्वशासन की माग को अव्यावहारिक माना।[1]

भारतीय उदारवादी चितन परम्परा मे गोपाल कृष्ण गोखले का अग्रणी स्थान है। गोखले के राजनीतिक चिन्तन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि उसमे आदर्शवाद एव यथार्थवाद का अभूतपूर्व समन्वय एव समिश्रण पाया जाता है। गोखले का हृदय कभी भी अमूर्त आदर्शवाद के कल्पनालोक मे विचरण नही करता था, वह तो उन चिन्तको मे से एक थे जिनका सदैव यही सचना था कि तत्कालीन परिस्थितियो मे क्या सम्भव हो सकता है बशर्ते कि वह मूर्त रूप से होना चाहिये। राजनीतिक क्षेत्र मे गोखले की महानता का पता इसी से चलता है कि महात्मा गाधी जैसे भारतीय

---

1 दुर्गादास भारत कर्जन स नहरू आर उसक पश्चात् पृ० 52

स्वतत्रता के जनक ने उन्हे अपना राजनीतिक गुरू कहा था तथा कर्जन ने उन्हे विश्व का महान ससदविज्ञ कहा था।[1]

गोखले के राजनीतिक विचारो पर उन्नीसवी शताब्दी के उदारवादी विचारो की स्पष्ट छाप मिलती है। गोखले ने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस मे उदारवाद का प्रसार किया और जनजीवन को उदारवादी विचारधारा के प्रति आकर्षित किया। गोखले अपने गुरू महादेव गोविन्द रानाडे के सदृश्य यह मानते थे कि भारत मे अग्रेजो का शासन विधाता की इच्छानुसार हुआ और वह भारतीयों की भलाई के लिए स्थापित किया गया था। उनका यह दृढ विश्वास था कि भारत मे अग्रेजी शासन भारतीय जनता को स्वशासन की ओर प्रवृत्त करेगा और कालान्तर मे भारतीय स्वय अपना प्रशासन चलाने के योग्य हो जायेगे। उदारवादी विचारधारा से ओत प्रोत होने के कारण गोखले ने भारत मे सविधानवाद का सहारा लिया उनके अनुसार क्रमिक सवैधानिक विकास का मार्ग अपनाकर भारत अपनी राजनीतिक प्रगति कर सकता था। भारत को इग्लैण्ड के मार्ग दर्शन मे रहकर अपनी राजनीतिक उन्नति करनी थी। वे भारत मे पाश्चात्य शिक्षा एव यूरोप सदृश्य राजनीतिक सस्थाओ का व्यापक प्रयोग करना चाहते थे। इस कार्य के लिए वे इग्लैण्ड तथा भारत के मध्य मधुर सम्बन्धो की स्थापना करना चाहते थे ताकि भारत ब्रिटिश प्रशासन के अन्तर्गत प्रतिनिधि शासन व्यवस्था स्थापित कर सके। गोखले के अनुसार भारत की जनता नैतिक उत्तरदायित्व की भावना के कारण अग्रेजी शासन से बॅधी थी। उनके अनुसार अग्रेज भारत की सत्ता को नैतिक न्यास के रूप मे रखे हुए थे।[2]

गोपाल कृष्ण गोखले के भारतीय राजनीतिक विचारो को उनके निम्नलिखित राजनीतिक विचारो के सदर्भ मे देखा जा सकता है—

---

1 दुर्गादास, भारत कर्जन से नेहरू तक पृ० 52

2 टी० आर० देवगिरिकर, गोपाल कृष्ण गोखले पब्लिकेशन्स भारत सरकार नई दिल्ली 1969 द्वितीय सस्करण पृष्ठ -116

स्वतत्रता—अपने महान गुरू न्यायमूर्ति रानाडे की ही भॉति गोखले भी ब्रिटिश उदारवादी दर्शन मे पूर्ण आस्था रखते थे। उदारवादी दर्शन से उनका परिचय आग्ल साहित्य के अध्ययन ने करवाया जिस प्रक्रिया मे एलिफन्टस कालेज के प्राचार्य डॉ० वर्डसवर्थ की प्रमुख भूमिका रही। रानाडे, नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, सुरेनद्र नाथ बनर्जी जैसे भारतीय उदारवादी परम्परा के प्रमुख नेताओ के सम्पर्क ने उनके उदारवादी विश्वास को अधिक मजबूत बनाया।[1]

स्वतत्रता उदारवादी दर्शन का मूल सिद्धान्त है मानव जीवन मे उसके व्यक्तित्व के विकास हेतु गोखले भी स्वतत्रता को अनिवार्य मानते थे। यही कारण था कि कुशलता के लिए स्वतत्रता का बलिदान करते हुए, लार्ड कर्जन के प्रशासन की क्टु आलोचना की थी।

गोखले ने आग्रहपूर्वक कहा था, देश मे प्रतिनिधि सस्थाए बने बिना व्यक्तिगत स्वतत्रता की सुरक्षा सम्भव नही है। अत: राजनीतिक स्वतत्रता की उनकी मॉग प्रतिनिधि सस्थाओ की उनकी माग से पृथक नही थी। गोखले ने पूर्ण मताधिकार का समर्थन नही किया। उन्होने मताधिकार के सम्बन्ध मे सम्पत्ति सम्बन्धी कुछ योग्यताओ का सुझाव दिया था। उदाहरणार्थ ग्राम पचायतों के निर्वाचन मे भी वह मतदान का अधिकार उसी को प्रदान करना चाहते थे, जो वर्ष मे कम से कम दस रुपये लगान चुकाता हो।[2] उनके अनुसार शिक्षित वर्ग, स्वाभाविक नेता होने के नाते सर्वसाधारण का प्रतिनिधित्व करता था। यद्यपि कि गोखले ने सभी के लिए मताधिकार का समर्थन नही किया तथापि उन्होने भविष्य मे सब के लिए मताधिकार के द्वार बन्द नही किए। उन्होने न केवल व्यवस्थापिकाओ मे जन प्रतिनिधित्व का समर्थन किया, वरन् वह उनके हितो के प्रतिनिधित्व के भी समर्थक थे। उदाहरणार्थ, कराची के उद्योग सघ, अहमदाबाद के मिल स्वामियो और दक्कन के सरदारो का वह प्रतिनिधित्व चाहते थे। धार्मिक अल्पसख्यको को भी वह नि सकोच प्रतिनिधित्व देना चाहते थे।[3]

1 जे० एम० होयलण्ड, गोपाल कृष्ण गोखले वाइ० एम० सी० ए० पब्लिशिग हाउस कलकत्ता 1933 पृ० 11

2 जे० एस० होयलण्ड वही पृ० 13

3 जे० एम० हायलण्ड वही पृ० 14

गोखले ने हिन्दुओ तथा मुसलमानो के बीच साम्प्रदायिक मतभेदो को स्वीकार किया और राष्ट्रीय आन्दोलन मे उनका सहयोग प्राप्त करने के दृष्टिकोण से वह उन्हे पृथक प्रतिनिधित्व भी देना चाहते थे। मिल की भॉति गोखले भी केवल करदाताओ तथा शिक्षित व्यक्तियो को ही मतदान का अधिकार देना चाहते थे। गोखले ने अल्पसख्यको को भी प्रतिनिधित्व प्रदान करने की दृष्टिकोण से आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का समर्थन किया। यहॉ पर भी वह मिल से प्रभावित थे।

गोखले स्वतत्रता के लिए कार्यपालिका एवम् न्यायपालिका के पृथक्करण के समर्थक थे। उनका विचार था कि दोनों के सयुक्त होने से नागरिक स्वतत्रता खतरे मे पड जायेगी। उन्होने अनावश्यक राजकीय नियत्रणो का कभी भी समर्थन नही किया। इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास अवरूद्ध हो जाता है।[1]

ब्रिटिशराज से सम्बन्ध—आधुनिक भारत के उदारवादी परम्परा के अन्य नेताओ, तथा अपने गुरू रानाडे की ही भाति गोखले भी ब्रिटिश राज को भारत के लिए एक ईश्वरीय वरदान के रूप मे देखते थे।[2] उनका विश्वास था कि भारत के ब्रिटिश राज ईश्वरीय विधान की योजना का ही एक अग है और उसका उद्देश्य भारत को भारी लाभ पहुॅचाना है। गोखले के राजनीतिक चितन का इस बात पर आधारित था कि ब्रिटिश राज्य के सहयोग से ही अपनी उन्नति कर सकता है। भारत के साथ ब्रिटिश का सम्पर्क अनिवार्य है। उन्होने अपने तथा देशवासियो के समक्ष ब्रिटिश साम्राज्य के एक अभिन्न अग के रूप मे भारत के लिए अधि राज्य पद Dominion States का लक्ष्य रखा। अग्रेजो के साथ भारत के राजनीतिक सम्बन्ध विच्छेद का विचार उनके अन्त करण मे एक क्षण भर के लिए भी नही आया।[3]

---

1 दुर्गादास, भारत कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात, पृ० 54

2 वी० पी० वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन मसस लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा 1995, पृ० 220

3 वी० पी० वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, वही पृ० 220

गोखले भारत मे ब्रिटिश शासन के प्रति निष्ठावान थे। उनकी शासन के प्रति स्वामिभक्ति देशप्रेम का ही पर्यायवाची थी। वे इस कारण से अग्रेजीराज के प्रति निष्ठावान नही थे कि वह विदेशी शासन का अपितु इस कारण से निष्ठा रखते थे कि वह व्यवस्थित शासन था। गोखले अव्यवस्था अथवा अराजकता के विरोधी थे। वे शासन की हार अथवा शासन को कमजोर बनाने वाले किसी भी कार्य के लिए सहमत नही थे। वे स्वामिभक्ति के वशीभूत होकर शासन की सदैव रक्षा तथा सहायता करने के पक्षपाती थे। सरकारी अफसरो के कृपापात्र बनने की दृष्टि से यह स्वामिभक्ति प्रदर्शित नही की गई थी। उनका वास्तविक उद्देश्य जागृत आत्महित से प्रेरित था। वे ब्रिटिश जनमत तथा भारत के अग्रेजी शासन को भारत के विकास का सहभागी मानते थे। अग्रेजो के सहयोग से भारत मे जिस प्रकार से प्रशासन शिक्षा एव नागरिक चेतना का सचार हुआ था उसे देखते हुए गोखले शासन के विरुद्ध षड्यन्त्र अथवा असहयोग प्रदर्शित कर शासन को तनिक भी विकृत अथवा दुर्बल करने के पक्ष मे नही थे।[1]

आधुनिक भारतीय उदारवादियो की ब्रिटिश राज मे मुख्य रूप से दो कारणो से गहरी आस्था थी—प्रथम ब्रिटिश न्याया प्रियता का विचार एव द्वितीय ब्रिटिश शासन की लोकतात्रिक संस्थाओ तथा शिक्षण पद्धति के प्रति आकर्षण। उदारवादी चिन्तन का यह विश्वास गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक चिन्तन मे मुखरित हुआ। पूना काग्रेस अधिवेशन मे उन्होने कहा—"अच्छे अथवा बुरे के लिए हमारा भविष्य एवम् हमारी आकॉक्षाए ब्रिटिश राज्य के साथ जुड गई है और काग्रेस उन्मुक्त रूप से यह स्वीकार करती है कि जिस प्रगति की हम आकाक्षा करते है वह ब्रिटिश शासन की सीमाओ मे ही है।[2] **1902 मे अपने एक बजट भाषण मे गोखले ने कहा—**"आवश्यकता इस बात की है कि हमे यह महसूस करने दिया जाय कि हमारी सरकार विदेशी होते हुए भी भावना से राष्ट्रीय

1 टी० वी० पार्वत गोपाल कृष्ण गोखले नवजीवन पब्लिशिग हाउस अहमदाबाद 1959 पृ० 255 तथा 457

2 टी० आर० देवगिरिकर गोपाल कृष्ण गोखले पब्लिकेशन्स दिल्ली भारत सरकार नई दिल्ली 1969 द्वितीय सस्करण पृ० 116

है, वह भारतीय जनता के कल्याण को सर्वोपरि तथा अन्य सब बातो को उसकी तुलना मे निम्नकोटि का मानती है, वह विदेशो मे भारतवासियो के साथ किये गये अपमान जनक व्यवहार से उतनी क्रुद्ध होती है जितनी की अग्रेजो के साथ किए गए दुर्व्यवहार से, और वह यथा सामर्थ्य हर उपाय से भारतीय जनता के भारत मे तथा भारत के बाहर नैतिक तथा भौतिक कल्याण का परिवर्धन करने का प्रयत्न करती है। जो राजनीतिज्ञ भारतीय जनता के हृदय मे इस प्रकार की भावनाए उत्पन्न कर सकेगा वह इस देश की महानता तथा गौरवपूर्ण सेवा करेगा और भारतीय जनता के हृदय मे अपने लिए स्थायी स्थान प्राप्त कर लेगा। यही नही उसके काम का महत्व इससे भी अधिक होगा। वह साम्राज्यवाद की सही भावना की दृष्टि से अपने देश की भी महान सेवा करेगा। श्रेष्ठ प्रकार का साम्राज्यवाद वह है जो साम्राज्य मे सम्मिलित सभी जातियो एवम् जातियो को अपनी नियामतों तथा सम्मान आदि का समान रूप से उपयोग करने देना है। वह साम्राज्यवाद सकीर्ण है, जो यह मानता है कि सम्पूर्ण विश्व एक जाति के लिए ही बनाया गया है और अधीन जातिया उस एक जाति की चरणपीठिकाओ के रूप मे सेवा करने के लिए बनायी गयी है।''[1]

यद्यपि गोखले ब्रिटेन की अधीश्वर शक्ति की सर्वोच्चता को स्वीकार करते थे और मानते थे कि ब्रिटेन के सम्पर्क से देश को अनेक लाभ हुये है, फिर भी उनका मन तथा दृष्टि भारत के गौरवमय भविष्य के काल्पनिक दृश्यो से प्रदीप्त था।[2] 1903 के अपने बजट भाषण मे **गोखले ने कहा था,** ''ईश्वर की अनुकम्पा से भविष्य का भारत ऐसा नही होगा जिसमे जनता की समृद्धि निरन्तर घटती जाय, प्रगति की आशाएँ धूमिल हो और लोगो मे औचित्यपूर्ण असतोष व्याप्त हो, वरन् भविष्य के भारत मे उद्योगो का विकास होगा, लोगो की शक्तिया जागृत होगी समृद्धि बढेगी और धन तथा सुख सुविधा के साधनो का अधिक व्यापक रूप से वितरण होगा। मुझे अपने देशवासियो की

---

1 स्पीचजस आफ गोपाल कृष्ण गोखले नटेसन मद्रास 1910 द्वितीय सस्करण पृ 36 37।

2 डा वी पी वर्मा आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन।

अन्तरात्मा तथा उद्देश्य मे विश्वास है और मै समझता हूँ इस विषय मे उनकी शक्तियॉ लगभग असीम है। किन्तु इस प्रकार का भविष्य केवल अधीश्वर शक्ति की अनरुद्ध छत्रछाया मे ही साक्षात्कार किया जा सकता है, उसको छोडकर अन्य किसी स्थिति मे नही, और न ब्रिटिश ताज के अतिरिक्त अन्य किसी नियत्रणकारी सत्ता के अधीन उसका (भविष्य) परिरक्षण ही किया जा सकता है।'[1]

गोखले की अग्रेजी राज के प्रति निष्ठा का यह तात्पर्य नही था कि वे भारतीय राष्ट्रीय गौरव एव सम्मान के प्रति चेष्टावान न थे। उन्हे भारत की महानता तथा भारत के उज्जवल भविष्य पर उतना ही गर्व था जितना किसी अन्य को हो सकता था किन्तु वे भारत के अतीत की दुहाई पर आश्रित रहने वालो मे से न थे।[2] उन्हें पुनरूत्थानवादियो से यह शिकायत थी कि वे अतीत को पुन· प्राप्त करने की चेष्टा मे वर्तमान को सुधारने तथा नवीन उपलब्धियो के प्रति विमुख रहने का प्रयास कर रहे थे। उनका चिन्तन यथार्थ पर आधारित था। वे भारत मे अग्रेजी शासन के लाभ को विस्मृति कर सुधारो की प्रक्रिया का त्याग पसन्द नही करते थे।[3]

गोखले भारत की गौरवशाली अतीत को वर्तमान के कष्टसाध्य प्रयासो द्वारा भविष्य के लिए सुरक्षित रखना चाहते थे उनका ध्यान वर्तमान तथा निकट भविष्य पर केन्द्रित था। वे भारत के राष्ट्रीय पुननिर्माण एव पुर्नजीवन के लिए क्रमिक विकास का सहारा लेना चाहते थे "एक एक कदम आगे बढाना" उनके राजनीतिक यर्थात का परिचायक था। पूर्ण स्वतत्रता अथवा स्वराज्य की तत्काल प्राप्ति के स्थान पर गोखले ने ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन की स्थापना को अपना ध्येय माना।[4] उनके द्वारा विभिन्न सुधारो की माग समय-समय पर प्रस्तुत की गयी और उसके आशातीत परिणाम

---

1 स्पीचेज ऑफ गोपाल कृष्ण गोखले नटेसन मद्रास 1920 द्वितीय सस्करण पृ ४४।

2 टी आर देवगीरिकर, गोपाल कृष्ण गोखले पब्लिकेशन्स डिवीजन दिल्ली भारत सरकार नई दिल्ली, 1964 द्वितीय सस्करण पृ 149।

3 वही पृ

4 टी वी माथुर, गोखले ए पॉलिटिकल बायोग्राफी [illegible] 1966 पृ 62।

सामने आये। वे तत्कालिक प्रशासनिक ढाचे को सुधार कर भारत को उसकी महत्ता के अनुरूप स्थिति प्राप्त कराने के लिए उद्यत रहे। भारतीयो के लिए सार्वजनिक सेवाओ मे उचित स्थान एव समान व्यवहार की उनकी माग का शासन पर प्रभाव पडे बिना न रहा।[1]

इसके अतिरिक्त भी कई सुधारो की माग उनके द्वारा प्रस्तुत की गई जिसमे प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण, स्वस्थ वित्तीय नीति, जन स्वास्थ्य की योजनाएँ, शासन पर अतिरिक्त एव अनावश्यक खर्च में कटौती, शिक्षा का विस्तार, अकाल एव महामारियो से सुरक्षा, उचित कृषि नीति, नौकरशाही मे सुधार, दक्षिण अफ्रीका की रगभेद नीति का विरोध आदि ने शासन को अपने कर्त्तव्यो के प्रति सजग किया।[2]

गोखले सुधारवादी थे और इस कारण से शातिपूर्ण सह अस्तित्व के उपासक थे। वे उत्तेजनात्मक भाषणो तथा लेखो द्वारा जन आन्दोलन प्रेरित कर जनता को शासन के क्रूर अत्याचारो का शिकार बनाना पसन्द नही करते थें हिसा अथवा बल-प्रयोग उनके चिन्तन का अग नही बन पाया था। हिसा से उत्पन्न प्रतिहिसा, घ्रणा, विद्वेप तथा नरसहार भारत की समस्याओ का स्थायी हल नही था। वे अग्रेजो को उनकी न्यायप्रियता, सवैधानिकता एव भारत स्वतत्रता की उदारवादी परम्पराओ के अनुरूप व्यवहार करने का आग्रह कर भारत की समस्याओ का शान्तिपूर्ण निराकरण चाहते थे।[3]

गोखले के सामने भी यह प्रश्न था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अन्तर्गत स्वशासन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की राजनीतिक पद्धति को व्यवहार मे लाया जाय। भरतीय उदारवादी यह महसूस करते थे कि तत्कालीन परिस्थितियो मे राजनैतिक उद्धार का कोई सम्मानप्रद मार्ग नही

---

1 आर पी पराजप, गोपाल कृष्ण गोखले आर्य भूषण प्रस, पूना 1915 पृ 83।

2 आर पी पराजप वही पृ 83।

3 वी पी वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन मम्मम लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा 1975 पृ 223।

था। किन्तु उन्हे सवैधानिक आन्दोलन की पद्धति की सफलता पर किचित मात्र भी सशय नही था।[1] इस सम्बन्ध मे गोखले का कहना था कि यदि भारतवासी इस प्रश्न की व्यवहारिकता पर विचार करे, तो वे इस निष्कर्प पर पहुँचेगे कि सवैधानिक पद्धति राजनीतिक मुक्ति के लिए सबसे अच्छा साधन है।[2] वे सवैधानिक साधनो मे तथा वैधानिक आन्दोलन के मार्ग पर अडिग आस्था रखते थे। काग्रेस मे नवोदित उग्र गुट के, उग्रविचारो के साधनो तथा असवैधानिक मार्ग के वह विरुद्ध थे। गोखले की दृष्टि मे सवैधानिक आन्दोलन के मार्ग का एक महत्वपूर्ण लाभ यह था कि इससे भारतीय अग्रेजो की सहानुभूति से वचित नही हो सकेगे। इसके विपरित हिसा एव रोडा अटकाने के मार्ग से सरकार शत्रुता पूर्वक व्यवहार करने लगेगी जिससे जनता के कष्टो मे और वृद्धि होती है।[3]

गोखले के अनुसार हिसा से उत्पन्न प्रतिहिसा, घृणा तथा नरसहार भारत को समस्याओ का स्थायी हल नही था।[4] उनका कहना था कि सवैधानिक आन्दोलन का लक्ष्य, अधिक से अधिक, जितना सम्भव हो सके राजकीय अधिकारियो के ऊपर समम्याओ के समाधान हेतु दबाव डालना था लेकिन इस सन्दर्भ मे जो आधारभूत तथ्य है वह यह है कि इसके पक्ष मे देश के अन्तर्गत एक शक्तिशाली जनमत तैयार कर लेना चाहिए।[5]

अत. गोखले की मान्यता थी कि नेताओ को अपना सारा ध्यान इस लोक राय के निर्माण पर केन्द्रित करना चाहिए। अपने लोगो की शक्ति मे वृद्धि ही सभी आन्दोलनो का लक्ष्य होता है। इसी लक्ष्य की ओर हमारे सभी प्रयत्न निर्देशित होने चाहिए। गोखले सुधारवादी थे और इस कारण वे

---

1 एम ए बुश, राइज एण्ड ग्रोथ आफ इडियन लिबरल्जिम फ्राम राममाहन राय ट्र गाखल बडादा 1938, पृ 146।

2 वी पी वमा आधुनिक भारतीय राज चिन्तन ममम तक्ष्मी नारायण अगवाता पुस्तक प्रकाशक हास्पिटल रोड आगरा द्वितीय सस्करण 1975पृ 116।

3 वही पृ० 117

4 आर० पी० पराजप गोपाल कृष्ण गाखल आयभूषण प्रम पूना 1915 पृ० 87

5 आर० पी० परॉजप गापाल कृष्ण गाखल आय भूषण प्रम पूना 1915 पृ० 88

शातिपूर्ण सह-अस्तित्व के उपासक थे। वे अग्रेजो की उनकी न्यायप्रियता, सवैधानिकता एव मानव स्वतन्त्रता की उदारवादी परम्पराओ के अनुरूप व्यवहार करने पर तथा भारत की समस्याओ की शातिपूर्ण निराकरण पर जोर देते थे।[1]

गोखले ने समस्याओ के समाधान हेतु राजनीतिक एव सामाजिक परिवर्तन मे हिसात्मक साधनो के महत्व को अस्वीकार कर दिया समान परिस्थितियो मे निष्क्रिय प्रतिरोध (पैस्सिव रिसिम्टैस) का समर्थन नहीं किया। उनके क्रियात्मक कार्यक्रम मे इस प्रकार का निष्क्रिय प्रतिरोध सम्मिलित नही था जो उनकी दृष्टि मे व्याप्त परिस्थितियो मे अबुद्धिमत्तापूर्ण और कार्य साधक नही था।[2] 1909 मे लाहौर कांग्रेस अधिवेशन मे दक्षिण अफ्रीका के सदर्भ मे एक अविस्मरणीय भाषण दिया जिसमे उन्होने निष्क्रिय प्रतिरोध के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा "निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलन क्या है? यह अपनी प्रकृति मे मूलत: आत्मरक्षात्मक है और इसमे नैतिक तथा आध्यात्मिक शस्त्रों की सहायता से युद्ध किया जाता है। निष्क्रिय प्रतिरोधी अपने शरीर पर कष्टो को झेलकर अत्याचार का प्रतिरोध करता है। पशुबल का सामना वह अत्मबल से करता है मनुष्य के पशुत्व का मुकाबला वह मनुष्य के देवत्व द्वारा करता है। वह अत्याचार का सामना आत्मपीडन द्वारा, शक्ति का मुकाबला आत्मविवेक द्वारा, अन्याय का प्रतिरोध आस्था द्वारा और अनाचार का विरोध सदाचार द्वारा करता है।[3]

गोखले ने निष्क्रिय प्रतिरोध का प्रयोग करते समय कुछ बातो पर ध्यान देने को कहा-प्रथम, निष्क्रिय प्रतिरोध सुरक्षात्मक होना चाहिए, आक्रामक नही। दूसरे, इसका प्रयोग आध्यात्मिक एव

---

1 ए० अप्पादाराई, इडियन पालिटिकल थिकिग फ्राम नाराजी टू नहरू आक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रस, फराडे हाउस, कलकत्ता 1974-पृ० 23

2 ए० अप्पादोराई, वही, पृ० 24

3 स्पीचेज ऑफ गाखले जी० ए० नटेसन द्वारा प्रकाशित मद्रास 1916 पृ 112

नैतिक होना चाहिए न कि प्रतिशोधात्मक। एक निष्क्रिय प्रतिरोधी अपने विरोधी को कष्ट नही पहुँचा सकता। तीसरी बात यह थी कि एक निष्क्रिय प्रतिरोधक को केवल उन्ही विधियो एवम् नियमो का उल्लघन करना चाहिए जो उसकी चेतना के प्रतिकूल हो और जिसके अधीन कोई अपने आपको नहीं कर सकता है और उसे उस उल्लघन के परिणामो के प्रति तैयार रहना चाहिए। इन सबके बावजूद भी इस मार्ग का अवलम्बन तभी तैयार करना चाहिए जबकि अन्य तरीके असफल हो जायॅ। [1] अत मे गोखले की यह मान्यता थी कि सवैधानिक पद्धति हेतु सावधानी एवम् शनैः-शनैः वाद की आवश्यकता पडती है। स्वशासन जैसे महान लक्ष्य की प्राप्ति एक छलाग मे नही हो सकती है। गोखले एक यथार्थवादी चितक थे जो कि स्वप्नलोक मे उडाने नही लेते थे, वे ऐसी कोई माग नही करते थे जो तत्कालीन परिस्थितियो मे व्यवहारिक न हो।[2]

गोखले ने अपने प्रयासो से भारत को स्वराज्य प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर किया और काग्रेस सगठन को अग्रेजो के हाथ प्रतिबधित होने से बचाया। गॉधी जी ने गोखले को अपना राजनीतिक गुरू माना।[3]

राष्ट्रीय एकता एवम् धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद—गोखले मानववादी थे उनका किसी भी धार्मिक समुदाय अथवा राष्ट्रीयता के प्रति द्वेष नही था। वे धार्मिक रूढिवाद से ऊपर उठकर सोचने और भारत के आध्यात्मिक गौरव एव तत्व ज्ञान की अभिव्यक्ति उसके सामाजिक विचारो का मूल थी।[4] गोपाल कृष्ण गोखले ने भी अपने गुरू रानाडे की ही भाति देशवासियो के शारीरिक, बौद्धिक तथा नैतिक विचारो पर पूरा जोर दिया।

---

1 एम० ए० वातर्पट, तिलक एण्ड गोखल, कलीफोनिया यूनिवर्सिटी प्रेस बर्कले 1961 पृ० 271

2 एम० ए० वोतपर्ट, वही, पृ० 272

3 गॉधी गोखले मेरे राजनीतिक गुरू, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद 1955

4 आर० पी० पाराजपे, गोपाल कृष्ण गोखले आर्य भूषण प्रेस पूना 1915 पृ० 28

गोखले ने तत्कालीन समस्याओ के निदान के सम्बन्ध मे जो मार्ग अपनाया उसके मूल मे दो धारणाए कार्य कर रही थी। प्रथम, रानाडे की ही भॉति उनका भी यह विश्वास था कि भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य ईश्वरीय विधान की योजना का ही एक अग है और उसका उद्देश्य भारत को भारी लाभ पहुँचाना है। दूसरे, वह कठिन परिश्रम और त्याग के द्वारा राष्ट्रवाद की सुदृढ नीव स्थापित करना चाहते थे।[1]

गोखले राष्ट्रीय एकता के महत्व से भली भाति परिचित थे। अत: उन्होने यह स्वीकार किया था कि राष्ट्रवाद एवम् राष्ट्रीय एकता के लिए एक पवित्र भावनात्मक सवेग आवश्यक है जिसका प्रबल उदय भारतीयो की सामाजिक क्षमता मे वृद्धि और उनके नैतिक चरित्र मे उत्थान से ही सम्भव हो सकता है। **गोखले ने कहा,** "जिस सघर्ष मे हम सलग्न है उसका वास्तविक नैतिक महत्व वर्तमान सस्थाओ के उस विशिष्ट पुनस्समजन अथवा पुनर्गठन मे नही है जिसे प्राप्त करने मे हम सफल हो सके, उसका असली महत्व उस शक्ति मे है जो हमे अपने जीवन के स्थायी अग के रूप मे उपलब्ध हो सकेगी। जनता का सम्पूर्ण जीवन उससे कही अधिक व्यापक और गम्भीर है जिसे शुद्ध राजनीतिक सस्थाए प्रभावित कर पाती है। यदि हमारे उपाय, जैसे होने चाहिए वैसे हो तो असफलताएँ भी जनता के उस जीवन की समृद्ध बनाने मे सहायक हो सकती है।[2]

गोखले भी भारत मे राष्ट्रीय एकता एवम् उसके राजनैतिक उद्धार हेतु हिन्दू मुस्लिम एकता को आवश्यक मानते है। उन्होने हिन्दू मुस्लिम एकता को राष्ट्र के लिए कल्याणकारी माना और स्वय को ऐसे विवादो में नही आने दिया जिससे दोनो के मध्य कटुता की भावना उत्पन्न होती तथा दूसरो को भी ऐसा करने की सलाह देते थे, क्योकि गोखले का यह दृढ विश्वास था कि हिन्दू एवम् मुसलमानो मे सहयोग की पर्याप्त भावना के अभाव मे, एकराष्ट्र के रूप मे भारत का कोई भविष्य नही

---

1 डॉ० वी० पी० वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक मसम लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा 1995 पृ० 220

2 डॉ० वी० पी० वर्मा, वही, पृ० 220

है।[1] वह दोनो जातियो से यह बार-बार निवेदन करते थे कि वे परस्पर सहिष्णुता एवम् आत्म सयम से कार्य करे एवम् परस्पर मतभेदो पर जोर देने के बजाय परस्पर मे भी पूर्ण भावनाओ को जन्म दे। हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को धार्मिक एवम् राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से देखते हुये उन्होने एक को दूसरे से निम्न या उच्च समझने की भावना का तिरस्कार किया। गोखले की यह मान्यता थी कि बहुसख्यक जाति होने के नाते तथा शैक्षणिक दृष्टि से मुसलमानो से आगे होने के नाते हिन्दुओ का यह विशेष उत्तरदायित्व था कि वे एक सामान्य राष्ट्रीय भावना विकासित करने मे अपने मुस्लिम भाइयो की सहायता करे, ऐसा वे मुसलमानो मे उनकी जाति के विशेष हित के लिए शिक्षणात्मक तथा अन्य उपयोगी कार्य कर सकते है।[2]

जैसा कि इतिहास साक्षी है कि हिन्दू एवम् मुसलमानो के मध्य, पूर्व से एक बहुत चौडी खाई चली आ रही थी, जिसके फलस्वरूप उनके मध्य विरोधी वर्ग चेतना के जन्म एवम् प्रसार का अत्यधिक भय था। गोखले कोई भी ऐसा काम नही करना चाहते थे जिससे इस खाई मे वृद्धि हो। यही कारण था कि गोखले ने तिलक द्वारा आयोजित गणपति तथा शिवाजी महोत्सवो के प्रति कोई रूचि नही दिखलायी। इससे जनता मे उनकी लोकप्रियता मे कमी अवश्य आयी किन्तु राष्ट्रीय एकता एव देश सेवा के प्रति समर्पित उस महान आत्मा के लिये इसका कोइ विशेष महत्व नही था। **श्री के० नटराजन** ने 1929 मे पूना मे दिए गए एक भाषण मे कहा था—''जहॉ तक धर्म की बात है, उनके जीवन की प्रारम्भिक अवधि के सम्बन्ध मे तो यही कहा जाता है कि वह नास्तिवादी थे परन्तु जीवन के उत्तरकाल मे उनके विचारो मे उल्लेखनीय परिवर्तन हो गया था। गोखले मुझे कलकत्ता मे अपने अध्यय कक्ष मे ले गये और वहॉ अकस्मात मैने एक 'पेपर वेट' उठा लिया--------उस पर मोटे-मोटे अक्षरो मे ''गाड इज लव'' (प्रेम ही परमात्मा है) लिखा देखकर मेरे नेत्र विस्मय से भर

1 आर० पी० पराजपे, गोपाल कृष्ण गोखले आर्य भूषण प्रेस पूना १९१५ पृ० ८२

2 आर० पी० पराजपे, गोपाल कृष्ण गोखले आर्य भूषण प्रेस पूना १९१५ पृ० ८३

गए, मैंने आश्चर्य पूर्ण नेत्रों से गोखले की ओर देखा इस पर वह बोले कि अब मेरा यही मान्यता हो गई है।[1]

सर्वेन्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटी— गोखले यथार्थ को समझने वाले राजनीतिज्ञ थे। अतः वह नैतिकता पर आधारित अपने राष्ट्रीय समीकरण के कार्य को स्थायी रूप देना चाहते थे। इस उद्देश्य से 1905 की 12 जून को उन्होने "**सर्वेन्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटी**" नामक सस्था की स्थापना की। सोसाइटी के सस्थापक का जीवन कष्टो, परिश्रम तथा दुखो का जीवन था। सोसाइटी के सविधान से उस जीवन का गम्भीर एवम् श्रेष्ठ आदर्शवाद प्रकट होता है। वे एकीकृत, शक्तिसम्पन्न तथा अभिनवीकृत भारत के आदर्श को ठोस रूप देना चाहते थे, और उनका विश्वास था कि ऐसा भारत त्याग, भक्ति और अध्यावसाय के आधार पर ही निर्मित किया जा सकता है।[2] सर्वेन्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटी ऐसे लोगों को प्रशिक्षित करेगा जो धार्मिक भावना से देश के कार्य मे सलग्न होने को तैयार होंगे, और सवैधानिक तरीको से भारतीय जनता के सक्रीय हितो का परिवर्धन करने का प्रयत्न करेगे। इसके सदस्य मुख्यत· इन कार्यो के लिए परिश्रम तता करेगे।[3] —(1) उपदेश तथा उदाहरण के द्वारा देशवासियो मे मातृभूमि के प्रति गम्भीर तथा उत्कृष्ट प्रेम उत्पन्न करना जिससे वे सेवा एवम् त्याग द्वारा अपने जीवन को सार्थक बनाने की कामना कर सके, (2) राजनीतिक शिक्षा तथा राजनीतिक आन्दोलन के कार्य करे सगठित करना और देश के सार्वजनिक जीवन को बल प्रदान करना, (3) विभिन्न सम्प्रदायो के मध्य प्रेम पूर्ण मद्भावना तथा सहयोग के सम्बन्ध बढाना, (4) शैक्षिक आन्दोलनो, विशेपकर नारी शिक्षा, पिछडे ये वर्गो की शिक्षा तथा औद्योगिक एवम् वैज्ञानिक शिक्षा के आन्दोलनो को सहायता देना, और (5) दलित जातियो का उद्धार।

---

1 टी० आर० दवगिरिकर, गोपाल कृष्ण गोखले पृ० 259

2 डा० वी० पी० वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा 3, 1975 पृ० 220

3 डॉ० वी० पी० वर्मा, वही०, पृ० 220

सर्वेन्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटी के प्रत्येक सदस्य को सात सकल्प करने होते थे।[1]वह अपने विचारो मे स्वदेश को सदैव सर्वोच्च स्थान देगा और उसकी मेवा मे अपने सर्वोत्कृष्ट गुण निछावर कर देगा। देश सेवा करते समय वह व्यक्तिगत लाभ की ओर उन्मुख नही होगा. वह सभी भारतीयो को अपना भाई समझेगा और जाति अथवा समुदाय गत भेदभाव के बिना सभी के विकास के लिए काम करेगा, उसके लिए उसका परिवार हो तो उन लोगो के लिए सोसाइटी जो व्यवस्था कर पायेगी उसी से वह सतुष्ट रहेगा और अपने लिये अतिरिक्त कमाने मे वह अपनी शक्ति का उपयोग बिल्कुल नही करेगा, वह पवित्र व्यक्तिगत जीवन व्यतीत करेगा, किसी के साथ वह व्यक्तिगत झगडा नही करेगा और अतिम बात यह है कि वह सोसाइटी के उद्देश्यो का सदैव ध्यान रखेगा और अधिकतम उत्साहपूर्वक उसके हितो का सरक्षण करेगा तथा ऐसा करते समय वह सोसाइटी का कार्य आगे बढाने के लिए सभी सभव कार्य करेगा और ऐसा कोई कार्य कभी नही करेगा जो सोसाइटी के उद्देश्यो से मेल न रखता हो।[2] गोखले की मृत्यु के पश्चात् वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री ने सोसाइटी का कार्य भाती भाति चलाया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय एकता को विकसित करने के लिए राष्ट्र की सेवा की अपनी भावना को मूर्त रूप देने के लिए गोखले ने त्यागमय जीवन से ओत-प्रोत सदस्यो की सोसाइटी का निर्माण किया। यद्यपि कि गोखले राष्ट्रीय एकीकरण एवम् राष्ट्रीयता की भावना को भारत मे प्रवाहित करना चाहते थे, तथापि एक यर्थाथवादी राजनीतिज्ञ की भाति उन्होने उन समस्याओ की ओर से अपना ध्यान नही हटाया जो कि इस भावना के विकास को अवरुद्ध किए हुए थी। फिर भी उनकी यह मान्यता थी कि उन समस्याओ से परे एक एकीकृत समृद्ध भारत का निर्माण करना सम्भव है। अत. उन्होने अपने प्रयत्न का गति प्रदान की। गोखले के अनुसार स्वतन्त्रता अथवा

1 टी० आर० दवगिरिकर, गापाल कृष्ण गोखले, पब्लिकशन्स डिवीजन भारत सरकार नइ दिल्ली 1969, पृ० 114

2 टी० आर० देवगिरिकर, गोपाल कृष्ण गोखले पब्लिकशन्स डिवीजन भारत सरकार नइ दिल्ली 1969 पृ० 114

स्वराज्य का उतना महत्व नही था जितना भारतीयो मे चारित्रिक मनोबल के उत्पन्न का था। नैतिक मूल्यो का निर्वाह कर भारत स्वत. स्वराज्य की ओर बढ सकता था।

स्वदेशी एवं बहिष्कार—गोखले की स्वदेशी धारणा बहुत ही व्यापक थी। स्वदेशी आन्दोलन उनके लिए एक देशभक्ति पूर्ण राजनीतिक और आर्थिक दोनो ही प्रकार का आन्दोलन था। अधिक व्यावहारिक रूप मे वह आर्थिक ही था। गोखले की धारणा थी कि भारत की मुख्य समस्या उत्पादन केलिए पूँजी और साहस की कमी की ओर यदि दूसरे देश का कोई व्यक्ति या सगठन भारत मे उत्पादन वृद्धि के उद्देश्य से पूँजी और साहस लगाता हो तो उसे भी स्वदेशीवाद की ही सज्ञा दी जानी चाहिए।[1] गोखले भारत की तत्कालीन आर्थिक स्थिति से मुक्ति पाने के लिए प्रतिकूल आर्थिक शक्तियो से लोहा लेने के लिए लोगो को स्वदेशी का अवलम्बन लेने का सदेश दिया। भारत की तत्कालीन आर्थिक दशा ने गोखले को बहुत अधिक प्रभावित किया था। सरकार की प्रतिकूल आर्थिक नीतियो तथा सरकारी सरक्षण के अभाव मे देशी उद्योग या तो समाप्त हो गये थे अथवा वे नई शक्तियो के दबाव के नीचे दम तोड रहे थे। देश मशीन निर्मित सस्ते विदेशी वस्तुओ से प्लावित था और भारत के लोग अधिक से अधिक देश के स्थायी उद्योग अर्थात् कृषि की ओर भाग रहे थे। देश का वार्पिक आर्थिक निकासी का कार्यक्रम लगातार चल रहा था जिसके कारण देशवासी निराशाजनक गरीबी का जीवन व्यतीत करन को बाध्य थे। इस समस्त आर्थिक समस्याओ से मुक्ति पाने हेतु गोखले तथा अन्य उदारवादियो ने जिस एक मात्र मार्ग का समर्थन किया वह था 'स्वदेशी का मार्ग' जसके द्वारा ही लोग प्रतिकूल आर्थिक शक्तियो से लोहा ले सकते थे।[2] गोखले के लिए स्वदेशी आन्दोलन एक आर्थिक आन्दोलन ही नही वरन् एक देशभक्ति पूर्ण राजनीतिक आन्दोलन भी था।

---

1 एम० ए० बुच०, राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इडियन लिबरलिज्म फ्रम राममोहन राय टु गोखले बडोदा 1938 पृ० 225

2 एम० ए० बुच वही, पृ० 226

स्वदेशी के सम्बन्ध मे **गोखले ने कहा**—"परमोत्कृष्ट स्वदेशी मे मातृभूमि के प्रति श्रद्धानुराग की जो भावना साकार है वह इतनी गहरी और इतनी तीव्र है कि उसके स्मरणामात्र से रोमाच हो जाता है और अपना स्पर्श तो व्यक्तिगत सीमाओ से बहुत ऊँचा उठा देता है।"[1] स्वदेशी का अभिप्राय था, पूर्ण रूप मे अपने आप मे स्वेदशी होना। इसका अर्थ है कि भारत के प्रत्येक बालक, वृद्ध, युवा के लिए राष्ट्रीय हित, विशेपकर आर्थिक हित सर्वोपरि है। इस अवधारणा का मूल तत्व प्रत्येक भारतीय से, भारत के हित के प्रति उचित देश भक्ति एवम् समर्पण की भावना की माग है। अतः सर्वप्रथम, यह एक भावना है, कुछ नया करने की भावना तथा देश के जीवन मे भारतीय राष्ट्रवाद की भावना का निर्माण करने का मार्ग है।[2]

गोखले के लिए स्वदेशी का अभिप्राय था मातृभूमि के प्रति उच्चकोटि का गम्भीर तथा व्यापक भक्तिमात्र। **1905 में उन्होंने वाराणसी कांग्रेस अधिवेशन में कहा :** "मातृभूमि के प्रति भक्तिभाव, जो कि उच्चतम स्वदेशी मे निहित है, एक इतना गहरा तथा भावनापूर्ण प्रभाव है जिसके विचार मात्र से ही पुलकित हो उठते है और जिसका वास्तविक स्पर्श हमे स्वय अपने से ऊपर उठा देता है। सबसे बढकर भारत की आज यही आवश्यकता है कि देश प्रेम के इस धर्म का उपदेश, धनी एवम् निर्धन को, राजा एवम् किसान को, नगर मे तथा गाव मे, तब तक निरन्तर दिया जाय जब तक कि मातृभूमि की सेवा हमारा प्रधान भाव न बन जाय जैसा कि आज जापान मे है।[3] गोखले ने इस सदर्भ में आगे कहा, किन्तु आन्दोलन का भौतिक पक्ष आर्थिक है। मै यह स्वीकार करता हूँ कि बडे पैमाने पर आत्मत्याग की प्रतिज्ञा, विदेशी वस्तुओ के त्याग की प्रतिज्ञ, कर लेने से हमारा एक महत्वपूर्ण उद्देश्य सिद्ध हो जाएगा, अर्थात, देश मे उत्पादित वस्तुओ का उपभोग तत्काल हो सकेगा, और जब उनकी

---

1 टी० आर० दवगिरिकर—गोपाल कृष्ण गोखले, पृ० 160 161

2 एम० ए० बुच, राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इडिया लिबरलिज्म फ्राम राम मोहन राय ट गोखले बडोदा, 1938 पृ० 226

3 स्पीचेज ऑफ गोखले, नटेसन, मद्रास 1920 पृ० 1114

माग पूर्ति से अधिक हो जाएगी तो उनके उत्पादन को सदा सर्वदा प्रोत्साहन मिलता रहेगा किन्तु आर्थिक क्षेत्र मे कठिनाइयॉ इतनी अधिक है कि उन पर विजय पाने के लिए सभी उपलब्ध साधनो के सहयोग की आवश्यकता है।[1]

गोखले ने स्वदेशह आन्दोलन का समर्थन किया गोखले ने चार ऐसे तरीको को सुझाया, जिनसे स्वदेशी आन्दोलन का विस्तार एवम् प्रसार सम्भव हो सकता है—सर्वप्रथम स्वेदशी आन्दोलन के विस्तार हेतु यह आवश्यक था कि भारत एवम् विश्व की आर्थिक अवस्था का विस्तृत ज्ञान तथा उन तरीको का जिनके द्वारा भारत स्वय अपने ही साधनों द्वारा अपने आर्थिक हितो मे वृद्धि कर सके, का प्रचार किया जाय। दूसरे, भारतीय उद्योगपति, चाहे वे बडे हो अथवा छोटे, भारतीय उद्योगो को अपने मूल्यवान वित्तीय सहायता द्वारा स्वदेशी आन्दोलन और औद्योगिक शिक्षा के विस्तार से भी स्वदेशी आन्दोलन को व्यापक आधार प्राप्त हो सकता है, किन्तु ये तीनो ऐसे है जिसमे कुछ विशेष प्रकार के लोग ही सहायक हो सकते है। लेकिन चौथा तरीका वह है जो कि सभी भारतीयों के लिए खुला है, और वही वह एक मात्र तरीका है जिसके द्वारा सभी भारतीय स्वदेशी आन्दोलन को व्यापाक आधार प्रदान करने मे सहायक हो सकते हैं। यह है, जितना अधिक सम्भव हो सके अपने देश मे निर्मित वस्तुओ का प्रयोग करे, और दूसरो को भी इसी प्रकार आचरण करने का उपदेश दे।[2]

गोखले की दृष्टि मे स्वदेशी आन्दोलन का मार्ग ही वह सर्वोपरि क्षेत्र है जहॉ पर प्रत्येक भारतवासी कुछ कर सकता है। यहॉ पर प्रत्येक स्वतत्र इच्छा से त्याग कर सकता है वह त्याग, जो कि उन्हे, अपने मातृभूमि के प्रति अपने स्नेह एव सम्मान पदर्शित करने का एक अवसर प्रदान करता है। उनकी यह धारणा थी कि एक अशिक्षित भारतीय के लिए भारत की राजनैतिक समस्याओ की जटिलता को समझ पाना बहुत कठिन होगा, किन्तु यदि उनसे यह कहा जाय कि वे स्वदेशी

1 स्पीचेज ऑफ गोखले, वही, पृ० 1114

2 स्पीचेज ऑफ गोखले वही पृ० 1131

वस्तुओं के प्रयोग द्वारा, अपने देश का धन अपने देश मे ही रोक कर देश की निर्धनता का निवारण या उसमे सुधार कर सकते हैं, तो इसे वे शीघ्र ही समझ जाएँगे।[1]

गोखले का विश्वास था कि स्वदेशी आन्दोल्न उन्तत भारत के उद्धार का एक महत्वपूर्ण साधन हो सकता है। उन्होंने कहा, ''स्वदेशी आन्दोलन यहाँ पर स्थायी रूप से रूकेगा। हमने ऐसे भी आन्दोलन देखे हैं जो कुछ समय के लिए प्रकाश मे आये और अपना कोई स्थायी प्रभाव छोडे बिना लुप्त हो गए। मै सोचता हूँ कि यह कहना सुरक्षित होगा कि स्वदेशी आन्दोलन उस प्रकार से लुप्त होने वाला नही है, और मेरी व्यक्तिगत मान्यता यह है कि अनतत इस आन्दोलन के माध्यम से हम भारत का उद्धार अवश्य कर सकेगे।[2]

इस प्रकार हम देखते है कि गोखले की स्वदेशी की धारणा बहुत व्यापक थी। रानाडे की भाँति उनका भी विचार था कि देश मे मुख्य समस्या उत्पादन की थी और उसके लिए पूँजी तथा साहसिकता की आवश्यकता थी। भारत मे इन चीजो का अभाव था इसलिए जो कोई योग देता वह सचमुच स्वदेशी हेतु कार्य कर रहा था। जहाँ तक सूती वस्त्रो का सम्बन्ध था मुक्त व्यापार का बडे से बडा समर्थक भी देश मे उनके उत्पादन को प्रोत्साहन देने पर आपत्ति नही कर सकता था, क्योकि सूती माल के उत्पादन हेतु भारत मे सस्ते श्रम एव कपास का बाहुल्य था।[3] किन्तु स्वदेशी के समर्थक होते भी गोखले ने बहिष्कार के उग्र अस्त्र के प्रयोग की अनुमति नही दी।

गोखले ने स्वदेशी का व्यापक समर्थन किया लेकिन वह बहिष्कार के उग्र अस्त्र के प्रयोग के समर्थक नहीं थे। स्वदेशी, बहिष्कार से भिन्न आन्दोलन था। गोखले तथा अन्य उदारवादियो ने यह

---

1 स्पीचेज ऑफ गोखले, नटेसन, मद्रास 1920 पृ० 1132

2 स्पीचेज ऑफ गोखले नटेसन मद्रास 1920 पृ० 1114

3 वमा वी० पी० आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन मसम लक्ष्मी नारायण अगवाल आगरा 1975, पृ० 221

अवश्य स्वीकार किया कि विदेशी या ब्रिटिश वस्तुओ का बहिष्कार, कोई अन्य विकल्प न रहने पर ही किया जाना चाहिए।[1] गोखले ने कहा था, ''बहिष्कार एक ऐसा शस्त्र है, जिसका प्रयोग अन्य कोई विकल्प न रहने पर ही किया जाना न्ययोचित हो सकता है, किन्तु ऐसे अवसरो पर इसका प्रयोग समान के सभी वर्गो के द्वारा होना चाहिए जैसा कि बगाल म हुआ। इसका प्रयोग करने से पूर्व यह आवश्यक है कि सभी ओर एक सामान्य सकट का अनुभव किया जाय और सभी व्यक्तिगत मतभेद दूर कर लिए जायॅ।[2]

गोखले तथा अन्य उदारवादियो द्वारा बहिष्कार आन्दोलन की अस्वीकृति के कुछ कारण इस प्रकार से थे। गोखले की यह मान्यता थी कि, बहिष्कार आन्दोलन का आधार किसी एक राष्ट्र के जाति स्नेहाभाव नहीं अपितु विदेशियो के प्रति घृणा का भाव था। इसका उद्देश्य था दूसरो को दुखी करना। इसके द्वारा दोनो पक्षो मे आक्रोश की भावना का उदय पूर्णरूपेण सम्भव था तथा यह आन्दोलन दो राष्ट्रो के लोगो के मध्य सामान्य सम्बन्धो के लिए हानिकर था। ऐसी स्थिति मे बहिष्कार भारतीय हितो के सदर्भ मे खतरनाक सिद्ध हो सकता था। दूसरे, इस शस्त्र के असफल होने की बहुत अधिक सम्भावना थी, और यह शस्त्र पर्याप्त प्रभावकारी ढग से प्रयोग मे नही लाया जा सकता था, क्योकि इसके लिए अत्यधिक जनसमर्थन आवश्यक था, किन्तु इस प्रकार की भावनाओ की प्रकृति एक लम्बी अवधि तक स्थिर रहने की नहीं होती, अतः बहिष्कार की असफलता आवश्यक थी। तीसरे इसका प्रयोग हम सम्पूर्ण विश्व के विरुद्ध नही कर सकते, और यदि यह केवल ब्रिटेन के सामने तक ही सीमित रखा जाता, तो हम अन्य विदेशी देशो की वस्तुओ को क्रय करने के लिए स्वतत्र थे, इससे भारतीय उद्योगों की उपलब्धि सम्भव नही थी। चौथे, बहिष्कार तमाम ऐसी अभारतीय वस्तुओ के लिए द्वार बन्द कर देना था जिनका हम अपनी तत्कालीन आर्थिक स्थिति मे

---

1 आर० पी० पराजपे, गोपाल कृष्ण गोखले, आर्य भूषण प्रेस पूना 1915 पृ० 82

2 आर० पी० पराजपे, वही, पृ० 83

उत्पन्न ही नही कर सकते थे। पॉचवे, विदेशी समानो का उग्र बहिष्कार हमारी तत्कालीन औद्योगिक दशाओ मे किसी भी दशा मे व्यवहारिक नही था।[1]

इस परिस्थितियो मे स्वदेशी अनिर्वायत. एक मर्वोत्कृष्ट विरोध का साधन था। राजनीतिक दृष्टि से यह आनन्द प्रदान करने वाला था। आर्थिक दृष्टिकोण से यह सावधानीपूर्वक, भारत मे उत्पादित एव तत्कालीन भारत की आर्थिक स्थिति मे भारत मे उत्पादित न हो सकने वाली वस्तुओ के मध्य विभाजन रेखा खीचने वाला था। नैतिक दृष्टि से यह एक सृजनात्मक शक्ति थी, जबकि बहिष्कार एक नकारात्मक एव ध्वसात्मक आन्दोलन था। **गोखले के शब्दो मे**, "इस सम्पूर्ण विचारधारा का मूल मत्र स्वदेश है, स्वतत्र इच्छा से अपने राष्ट्र के प्रति त्याग की भावना को जन्म देने वाला, तथा अपने देश की आर्थिक प्रगति मे रूचि रखने हेतु प्रोत्साहित करने वाला तथा राष्ट्रीय लक्ष्य के लिए परस्पर सहयोग की शिक्षा देने वाला आन्दोलन है।[2] उनकी यह धारणा थी कि आर्थिक बहिष्कार की नीति द्वारा विदेशी राजनीतिक नियन्त्रण की मात्रा मे कमी नही आ सकती। इसी प्रकार से स्कूलो तथा कॉलेजो के बहिष्कार का कार्य भी राष्ट्रीय शिक्षा की वृद्धि के स्थान पर उसकी प्रगति को धीमा करेगा। सरकारी नौकरियो के बहिष्कार के सन्दर्भ मे गोखले का यह विचार था कि नौकरियो का बहिष्कार तब सफल हो सकता था जबकि सरकारी काम के लिए एक भी व्यक्ति अपने आपको प्रस्तुत न करे। जहॉ शिक्षित बेकारी की इतनी बडी सख्या हो वहॉ नौकरियो का बहिष्कार सफल नही हो सकता था। विधान परिपदो तथा नगरपालिकाओ के सदस्यो द्वारा त्यागपत्र देकर बहिष्कार का मार्ग अपनाता भी अनुचित है। अत गोखले ने पूर्ण बहिष्कार के स्थान पर कर न देने का आन्दोलन चलाये जाने पर बल दिया।[3]

---

1 एम० ए० बुच-राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इडियन लिबरलिजम फ्राम राममोहन राय टू गोखले बडौदा 1938-पृ० 232

2 स्पीचेज ऑफ गोपाल कृष्ण गोखले नटेसन मद्रास 1920 पृ० 82

3 स्पीचेज ऑफ गोपाल कृष्ण गोखल, वही, पृ० 956

प्रशासनिक सुधार—गोखले के राजनीतिक विचारो का अध्ययन तब तक पूर्ण नही माना जा सकता जब तक उनके द्वारा भारत की राजनीतिक एव प्रशासनिक स्थिति को सुधारने सम्बन्धी उनके प्रमुख सुझावो पर दृष्टिपात न किया जाय।

गोखले तत्कालीन ब्रिटिश भारत की प्रशासकीय अव्यवस्था के अत्यधिक क्षुब्ध थे। वह भारत की प्रशासकीय व्यवस्था मे प्रत्येक स्तर पर सुधार के समर्थक थे। प्रशासनिक अव्यवस्था से देश के अन्दर, विशेषकर शिक्षित वर्ग मे जो असतोष बढ रहा था, वह अन्तत· ब्रिटिश सत्ता के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता था और चूँकि गोखले ऐसा नही चाहते थे, अत: उन्होने सरकार से तत्काल इस सन्दर्भ मे प्रभावकारी कदम उठाने का अनुरोध किया। उन्होने ब्रिटिश सरकार पर भारत के नैतिक एव भौतिक उत्थान हेतु सुधारात्मक कदम उठाने के लिए दबाव डाला। गोखले ने अपने बजट भाषणो मे प्रशासन सम्बन्धी सरकार की नीतियो के दोषो पर प्रकाश डालते हुए अपने रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किया।[1]

गोखले ने शासन के विकेन्द्रीकरण की सभावनाओ का पता लगाने वाले हॉवहाऊस कमीशन (1908) के समक्ष अपने साक्ष्य मे यह व्यक्त किया कि उच्च प्रशासनिक स्तर पर सत्ता का केन्द्रीकरण समाप्त होना चाहिए। प्रशासनिक सेवाओ की मनमानी रोककर जनता को शासन से सम्बन्धित करने के लिए गोखले ने लोकतात्रिक विकेन्द्रीकरण का सुझाव प्रस्तुत किया था।[2] वे प्रान्तीय मामलो मे प्रशासन पर जनता का उचित नियत्रण चाहते थे। उन्होने तीन प्रमुख प्रशासनिक आवश्यकताओ पर बल दिया। प्रथम, सभी महत्वपूर्ण प्रान्तो मे इग्लैण्ड द्वारा मनोनीत गर्वनर नियुक्त किये जायॅ तथा उनकी सहायता के लिए ऐसी कार्यकारी परिषद नियुक्त किये जाये जिसके तीन या चार सदस्य हो। द्वितीय प्रान्तीय विधायी परिषद का विस्तार कर उसे अधिक प्रतिनिधि मूलक बनाया जाय। सदस्यों को

---

1 ए० अप्पादोराई, इण्डियन पोलिटिकल थिकिग आक्सफाड यूनिवर्सिटी प्रेस कलकत्ता 1972

2 आर० पी० पराजप, गोपाल कृष्ण गोखले आर्य भूषण प्रेस पूना 1915 पृ० 57

बजट पर विचार-विमर्श करने तथा सशोधन प्रस्तुत करने का अधिकार होना चाहिए। तृतीय निर्वाचित सदस्यो की माग पर परिषद का विशेष अधिवेशन बुलाये जाने की व्यवस्था की जाय। इसके अलावा गोखले ने वित्तीय क्षेत्र मे साम्राज्यीय एव प्रान्तीय प्रश्नो को स्पष्ट करने तथा दोनो मे आय-व्यय का समावेश करने का सुझाव दिया था।[1] ऋण की व्यवस्था करने का दायित्व केवल केन्द्र पर छोड दिया जाय और कार्मिक प्रशासन पर भी केन्द्र का नियत्रण स्वीकार किया। किन्तु वे स्थानीय स्वशासन को बाह्य नियत्रण एव हस्तक्षेप से मुक्त रखना चाहते थे। वे केन्द्रीय सरकार की प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, मुद्रा, आबकारी, डाक-तार, रेल तथा कर एव व्यवस्थापन का अधिकार सौपकर अन्य विभागो का दायित्व प्रान्तीय सरकारो को सौपने के पक्ष मे।[2]

जिला स्तर पर गोखले ने प्रशासन से जनप्रतिनिधियो को सयुक्त करने का सुझाव दिया। वे जिलाधीश की सर्वोच्च स्थिति के आलोचक थे। जिलाधीश की सहायता के लिए जिला-परिषदो का निर्माण उन्होने सुझाया। वे स्थानीय स्वशासन को पूर्ण स्वायत्ता देने के पक्ष मे थे ताकि उनके कार्यो मे प्रशासकीय तथा वित्तीय हस्तक्षेप न किया जाय।[3] गोखले भारत मे पचायती राज व्यवस्था की पुन स्थापना के पक्ष मे थे। वे पचायतो को स्थानीय प्रशासन एव साधारण न्यायिक कार्य सौपना चाहते थे। ताकि स्थानीय स्वायत्ता का बोध हो सके। पचायतो को अपने आर्थिक साधन जुटाने के साथ-साथ तालुका बोर्ड से आर्थिक सहायता दी जाने का सुझाव भी उन्होने दिया था। उनके अनुसार तालुका बोर्ड मे अधिक से अधिक जन प्रतिनिधियो को मनोनीत करने तथा वित्तीय स्वायत्तता दी जानी चाहिए। वे नगर महापालिकाओ के स्वतत्र निर्वाचन कराये जाने के पक्षधर थे। जिला बोर्ड की अध्यक्षता का एकमात्र अधिकार जिलाधीश मे न रखकर गोखले ने उसके स्थान पर किसी सम्मानीय

1 डी० बी० माथुर गोखले ए पोलिटिकल बायोग्राफी मानकतलाज बम्बई 1966 पृ० 56

2 डी० बी० माथुर, वही, पृ० 57

3 डी० बी० माथुर वही, पृ० 58

व्यक्ति की नियुक्ति का सुझाव दिया। यदि ऐसा व्यक्ति प्राप्त न हो सके तो फिर जिलाधीश को ही यह कार्य सौपने का सुझाव दिया। वे जिला बोर्ड मे निर्वाचित सदस्यो की सख्या बढाने के पक्ष मे थे। वे जिला प्रशासन से गोपनीयता, नौकरशाही की वृत्ति तथा विभागीय विलम्ब की मनोवृत्ति को दूर करवाना चाहते थे। इसके लिए उन्होने जिला परिषद नियुक्त करने का सुझाव दिया। जिला प्रशासन मे जिलाधीश को लोकतात्रिक तौर तरीके तथा समय के साथ परिवर्तित होने वाली विचारधारा से युक्त करना चाहते थे। प्रशासको के मनमाने आचरण तथा एकतत्रवादी रवैये को परिवर्तित करने के लिए गोखले ने उपयुर्क्त सुझावो के द्वारा लोकतत्रिक विकेन्द्रीकरण की बुनियाद रखी।[1]

गोखले ने प्रशासनिक सुधारो की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया जिसमे सेवाओ के 'भारतीयकरण' की समस्या प्रमुख थी। गोखले ने प्रशासन मे अधिक से अधिक भारतीयो की भागीदारी की ओर ध्यान आकृष्ट किया। भारतीय सिविल सेवा सवर्ग एव उसमे की जाने वाली भर्ती आदि के विरुद्ध बहुत समय से शिकायते चली आ रही थी। 1833 की नियमावली एव 1858 के ब्रिटिश रानी की घोषणा द्वारा भारतीयो के बिना किसी भेदभाव के लोक सेवा मे ऊँचे-ऊँचे पदो तक पहुँचने के अधिकार को मान्यता दी गई, किन्तु ये घोषणाएँ मात्र घोषणा ही रह गयी इनको लागू करने मे कोई रूचि ब्रिटिश साम्राज्यवादियो ने नही दिखलाई। गोखले सरकार की इस उदासीनता से क्षुब्ध होकर इन उद्घोषणाओ को विश्वासघात की सज्ञा दी और कहा, "1833 की नियमावली एवं 1858 की घोषणा इतनी स्पष्ट है कि जो लोग, घोषणा के समय इनका श्रेय ले रहे थे, उन्हे वर्तमान परिस्थितियो मे इन विश्वासघात से उत्पन्न कष्टदायी स्थिति का सामना करने तथा यह स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए कि, इन वादो की घोषणा करते समय ब्रिटिश सरकार निष्ठा पर नही थी और उसे अब हमारे विश्वास को खोने के लिए तैयार रहना चाहिए।[2] गोखले ने लोक सेवाओ मे

---

1 डी० वी० माथुर गोखले ए पोलिटिकल बायोग्राफी मानकालाज बम्बइ 1966 पृ० 64

2 एम० ए० बुच राइज एड ग्राथ ऑफ इंडियन लिबर्रालिज्म बड़ादा 1938 पृ० 201

सम्मिलित होने की आयु सीमा को बढाने तथा इग्लैण्ड के साथ ही साथ उनका आयोजन भारत मे भी किये जाने की माग की।

गोपाल कृष्ण गोखले इस मान्यता पर बल देते थे कि ब्रिटिश सत्ता ही, भारत के सन्दर्भ मे, भारतीयो को बडे पैमाने पर प्रशासनिक कार्यों मे भागीदारी पर निर्भर करेगी। इस दिशा मे एक विस्तृत आन्दोलन चलाया जाना चाहिए। यदि इस दिशा मे बढते हुए असतोष एव आक्रोश का नियत्रित करना है, तो यह पूर्ण अनिवार्य था कि सरकार को विदेशी सस्थाओ के स्थान पर भारतीयो को नियुक्त करने की प्रगतिवादी नीति को व्यवहार मे लाना होगा।[1] **गोखले ने कहा;** "हमारी नम्र राय मे, वर्तमान परिस्थितियो मे, जो प्रश्न सभी प्रश्नो से महत्वपूर्ण है, वह यह है कि इस देश के लोगो को किस प्रकार से उनके स्वय के मामलो मे प्रशासन मे भागीदारी दी जा सकती है, जिससे कि उनमे उत्पन्न हो रहे असतोष को नियत्रित किया जा सके, और जबकि एक तरफ उनके आत्मसम्मान की सतुष्टि होगी, दूसरी तरफ उनमे और साम्राज्य के मध्य सयोग शक्तिशाली होगा। अग्रेज लोग जो कि यह सोचते है कि भारत को एक लम्बे समय तक इसी तरह से नियत्रित किया जा सकता है जैसा कि वह अतीत मे था, और ऐसे भारतीय जो कि साम्राज्य से बाहर अपने देश की स्वायत्ताता की बात सोचते है दोनो ही वर्तमान स्थिति की वास्तविकताओ का अपूर्ण ज्ञान रखते है।[2]

ब्रिटिश नैकरशाही की त्रुटिपूर्ण व्यवस्था की ओर सकेत करते हुए गोखले ने 1905 मे लन्दन के न्यू रिर्फाम क्लब के भाषण मे त्रुटियो की ओर ध्यान आकर्षित किया था।[3] प्रथम यह व्यवस्था अत्यधिक केन्द्रीकृत है और चूँकि शीर्ष के अधिकारी देश मे केवल थोडे समय के लिए भेजे जाते है, अत: वे जनता की समस्याओ, आकाक्षाओ तथा अभिरूचियो को भली भाति नही सहझ पाते है।

---

1 बुच, वही पृ० 202

2 गाखले स्पीचेज एण्ड राइटिग पृ० 169 170

3 ए० अप्पादाराई, इण्डियन पोलिटिकल थिकिग आक्सफोड यूनिवर्सिटी प्रेस कलकत्ता 1974 पृ० 3

द्वितीय, भारतीय शिक्षित वर्ग को सत्ता से बाहर रखना असंतोषजनक है तथा तृतीय अधिकारी प्रत्येक प्रश्न पर अपनी सत्ता बनाए रखने की दृष्टि से अपनी सत्ता के हितो की दृष्टि से विचार करते है, तथा लोगो के हितो को गौण सझते है।

प्रशासनिक सुधारो की दृष्टि से गोखले ने वाराणसी काग्रेस के अधिवेशन मे 9 माग प्रस्तुत की।[1] (1) विधान परिषदो का सुधार, और उसके लिए निर्वाचित सदस्यो का अनुपात बढा कर आधा कर दिया जाय तथा ऐसी व्यवस्था की जाय कि बजट परिषदो द्वारा ही पारित किए जाए, (2) इण्डिया कौसिल मे कम से कम तीन भारतीय सदस्य नियुक्त किए जायॅ, (3) देश की सभी जिलो मे सलाहकार परिषदो की रचना की जाय, और जिलाधीश प्रशासन के महत्वपूर्ण मामलो मे अनिवार्य रूप से इन परिषदो की राय ले, (4) भारतीय लोक सेवाओ की न्यायिक शरण के लिए नियुक्तिया वकील वर्ग मे से की जाय, (5) न्यायिक तथा कार्यपालक विभागो का पृथक्करण, (6) भारी सैनिक व्यय मे कटौती, (7) प्राथमिक शिक्षा का प्रसार, (8) औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा का वकास तथा प्रसार, और देहाती जनता को ऋण के बोझ से राहत देना।[2]

ये मागे भारतीय उग्रवादियो के राजनीतिक दर्शन का साराश प्रकट करती है। **टी. आर. देवगिरिकर के अनुसार—**''शासन तन्त्र के विरुद्ध युद्ध करते समय गोखले ने वैधानिक मार्ग अपनाया। उनका प्रयास यह था कि तथ्यो तथा तर्को को अपनी बात का आधार बनाया जाए और समझा बुझाकर उन लोगो के विचार बदले जाय जिसका कुछ महत्व है।''

स्वशासन की धारण— अपने समकालीन उदारवादी नेताओ की भाति गोखले भी भारत के लिए स्वाशासन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत चाहते थे। ब्रिटिश शासन उनकी दृष्टि मे एक ईश्वरीय देन

---

1 गोखले का वाराणसी म काग्रेस अध्यक्षीय पद म भाषण पट्टाभि सीतारमय्या काग्रेस का इतिहास पृ० 22

2 गोखले का वाराणसी म काग्रेस अध्यक्षीय पद म भाषण पट्टाभि सीतारमय्या काग्रेस का इतिहास पृ 23।

था,[1] अतः उससे पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद भारतीयो के लिए कल्याणकारी नही था। उनकी यह मान्यता थी कि अग्रेज नौकरशाही के कारण प्रशासन मे जो आर्थिक, राजनैतिक एवम् नेतिक बुराइयॉ आ गयी है उनके निराकरण का एक मात्र उपाय स्वशासन ही है। उनके अनुसार स्वशासन का अर्थ हे—''ब्रिटिश अभिकरण के स्थान पर भारतीय अभिकरण को प्रतिष्ठित करना, विधान परिषदो का विस्तार और सुधार करते-करते उन्हे वास्तविक निकाय बना देना और जनता को सामान्यत. अपने मामलो का प्रबन्ध स्वय करने देना।''[2]

1905 में बनारस कांग्रेस में अध्यक्षीय भाषण मे गोखले ने कहा—''काग्रेस का लक्ष्य यह है कि भारत भारतीयो के हितो को ध्यान मे रखते हुए प्रशासित होना चाहिए। एक निश्चित समयावधि मे भारत मे ऐसी ही सरकार गठित हो जानी चाहिए जैसी कि ब्रिटिश साम्राज्य की अन्य स्वशासित उपनिवेशो की सरकार है।[3]

गोखले ने स्वशासन को एक भावनात्मक आवश्यकता और नैतिक तथा राजनैतिक उपलब्धि माना। **1907 मे इलाहाबाद में दिए गए अपने एक भाषण मे उन्होने कहा—**''मेरी आकाक्षा है कि मेरे देशवासियो की स्थिति अपने देश मे वेसी ही हो जेसी कि अन्य लोगो की अपने देश मे है। मै जाति या सम्प्रदाय के भेदभाव से परे प्रत्येक नर-नारी के पूर्ण विजय का समर्थक हूॅ। मै चाहता हूॅ कि उन पर किसी प्रकार के अप्राकृतिक प्रतिबन्ध न लगाए जाएॅ। मे चाहता हूॅ कि भारत विश्व के महान राज्यो मे राजनीतिक, औद्योगिक, आर्थिक, साहित्यिक वैज्ञानिक और कला के क्षेत्र मे अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण करे। मेरी आकाक्षा यही है कि ये सभी अपनी ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत ही प्राप्त

---

1 टी वी पर्वत—गोपाल कृष्ण गोखले नवजीवन पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद 1959 पृ 456।

2 वही पृष्ठ—458

3 गोखले का बनारस मे काग्रेस अध्यक्षीय भाषण—पट्टाभि सीतारमया काग्रेस का इतिहास पृष्ठ 22 23।

हो।''[1] स्वशासन के सम्बन्ध मे गोखले ने जो विचार व्यक्त किए उनके अनुसार स्वशासन मे निम्न बातो को अवश्य सम्मिलित होनी चाहिए—(1) इग्लैण्ड मे होने वाली सभी परीक्षाए भारत मे हो और सभी ऊँची नियुक्तियाँ जो भारत मे की जाती है, प्रतियोगितात्मक परीक्षाओ के आधार पर हो। (2) भारतीयो को भारत मत्री की सभा मे, वायसराय की कार्यकारिणी परिषद मे तथा बम्बई और मद्रास के गवर्नरो की विधान परिषदों मे पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिले। (3) सर्वोच्च एव प्रान्तीय विधान परिषदो का विस्तार हो, उनमे जनता को वास्तविक ढग से प्रभावकारी प्रतिनिधित्व दिया जाए, एव देश के वित्तीय तथा कार्यकारी प्रशासन पर जनता का अधिक नियन्त्रण हो। (4) स्थानीय स्वायत्त सस्थाओ और नगरपालिकाओं की शक्तियो मे वृद्धि की जाए तथा उनमे सरकारी हस्तक्षेप और नियन्त्रण इग्लैण्ड मे स्थानीय स्वशासी बोर्ड द्वारा इसी तरह के निकायो पर लागू किए जाने से अधिक न हो।[2]

गोखले ने स्वशासन के सम्बन्ध मे यह मौलिक सुझाव और दिया कि मद्रास, बम्बई, बगाल, उत्तर पश्चिमी प्रान्त, पंजाब और बर्मा की विधान परिषदो को यह अधिकार दे दिया जाय कि वे अपने निर्वाचित सदस्यो मे से चुनकर एक-एक प्रतिनिधि ब्रिटिश पार्लियामेट भेजे।[3]

राजनीति का आध्यात्मीकरण— गोखले की नैतिक एव आध्यात्मिक आत्म चेतना उनके राजनीतिक विचारो की मूल प्रेरणा थी। उन्होने साधन पर साध्य से अधिक जोर दिया। उन्हे भय था कि यदि साधनो की पवित्र और चरित्र की उत्कृष्टता मे विश्वास रखा न गया तो भारीतय अपनी

---

1 टी वी पर्वते—गोपाल कृष्ण गोखले नवजीवन पब्लिशिग हाउस अहमदाबाद 1959 पृ 457।

2 गोखले का वाराणसी काग्रेस अधिवेशन मे अध्यक्ष पद से भाषण पटटाभि सीता रमया प्रकाशक सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली पृ 82।

3 टी आर देवगिरिकर गोपाल कृष्ण गोखले, आधुनिक भारत के निमाता पब्लिकशन्स डिवीजन, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1969, पृ 54।

समस्याओ का सन्तोषजनक समाधान नही कर सकेंगे ओर उन्हे भविष्य मे जो स्वशासन या स्वराज्य प्राप्त होगा, उसका भी सुन्दर फल वे नही चख सकेंगे। [1]उनकी मान्यता थी कि धर्म को राजनीति का आधार होना चाहिए अत: चरित्र निर्माण पर हमे सबसे अधिक जोर देना चाहिए। उनका यह विश्वास था कि राजनीति लोक सेवा का साधन तभी हो सकती है जबकि उसका आध्यात्मीकरण कर दिया जाय।[2] सर्वेन्ट आफ इण्डियन सोसाइटी की स्थापना के पीछे ही मुख्य उद्देश्य राजनीति और धर्म का समन्वय करना था। वह यह अनुभव करते थे कि यदि जनता का नैतिक चरित्र उत्कृष्ट न हुआ तो स्वय स्वराज्य भी हमारे समस्त रोगों के लिए औपधि स्वरूप नही हो सकता, और वह यह भी मानते थे कि स्वतत्रता प्राप्त करने के पूर्व किसी राष्ट्र को उसकी पात्रता सिद्ध करनी चाहिए।[3] वास्तव मे अपने देशवासियो की नैतिक कमजोरी का ज्ञान ही उन्हे ब्रिटिश उदारवादियो की अधिकाधिक सहायता एवम् सलाह के लिए बाध्य किया।

सार्वजनिक जीवन के आध्यात्मीकरण की गोखले की धारणा का अभिप्राय समझते हुए **गांधी जी ने लिखा है**—"हम सभी द्वारा साहस सत्यवादिता, सतोष, विनम्रता, न्यायप्रियता, निष्कपटता तथा धैर्य सरीखे सद्‌गुणों को अपने अन्दर विकसित करना और उन्हे राष्ट्र को अर्पित करना, गोखले के सार्वजनिक जीवन के आध्यात्मीकरण की बात कहने का यही आशय था। यह एक भक्त की भावना है।"[4] गोखले की इस आध्यात्मिक एवम् धार्मिक प्रवृत्ति के कारण ही गाधी जी ने उन्हे अपना राजनीतिक गुरू कहा था। **गांधी जी आगे कहते हैं कि**—"श्री गोखले ने हमे सिखाया है कि अपने देश से प्यार करने का दम भरने वाले प्रत्येक भारतीय का स्वरूप यह होना चाहिए कि शब्द वैभव मे

1 आर पी पराजपे गापाल कृष्ण गोखले, आर्य भृषण प्रम पृना 1915 पृ ८5।

2 आर पी पराजपे, गोपाल कृष्ण गोखले, आर्य भृषण प्रस पृना 1915 पृ ८5।

3 डी वी माथुर, गोखल ए पार्लिटिकल बायाग्राफी, मानकालाज बम्बइ 1966 पृ ६०।

4 गाधा जी गाखल मेरे राजनीतिक गुरू नवजीवन पब्लिशिग हाउम अहमदाबाद 1955 पृ 213।

ग्रस्त न होकर इस देश के राजनीतिक जीवन का आध्यात्मीकरण किया जाय। उन्होने मेरे जीवन को प्रभावित एवम् प्रेरित किया और आज भी कर रहे है, इसी नाते मै अपने को पवित्र बनाना चाहता हूँ और अपना आध्यात्मीकरण करना चाहता हूँ। इस आदर्श के प्रति मैने अपने को समर्पित कर दिया है।''[1]

गोखले का व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक जीवन समान रूप से नैतिक मापदण्डो पर आधारित रहा।

गोखले का राजनीतिक वसीयतनामा

अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व गोपाल कृष्ण गोखले ने लार्ड विल्गिटन के आग्रह पर भावी भारत की व्यवस्था के सम्बन्ध मे एक योजना तैयार की थी जो प्रान्तीय स्वायत्ता के नाम पर उनका 'राजनीतिक वसीयतनामा' ही है। यह वसीयतनाता गोखले के चिन्तन का एक उज्जवल पक्ष है, उनकी बौद्धिक गरिमा और राजनीतिक प्रतिभा का सुन्दर नमूना है। इस वसीयतनामे को प्रख्यात विद्वान श्री त्रयम्बक रघुनाथ देवगिरीकर ने निम्नवत् प्रस्तुत किया है।[2]

(यह वसीयतनामा गोखले के ही शब्दो मे है)—

''दिल्ली भेजे गए पत्र मे जो प्रान्तीय स्वायत्तता देने का पूर्व सकेत विद्यमान था उसे युद्ध की समाप्ति पर भारत के लोगो को दी जाने वाली उपयुक्त सुविधा माना जा सकता है। इससे एक दोहरी प्रक्रिया होगी अर्थात् एक ओर तो प्रान्तीय सरकारे उस नियत्रण से काफी हद तक मुक्त हो जाएगी जो देश के आन्तरिक प्रशासन के सम्बन्ध मे उनके ऊपर भारत सरकार और भारत मत्री द्वारा रखा जा रहा है, और दूसरी ओर इस प्रकार होने वाले नियन्त्रण के स्थान पर प्रान्तीय विधान परिषदो के

---

1 गाधी जी गाखल मेरे राजनीतिक गुरू, नवजीवन पब्लिशिग हाउस अहमदाबाद 1955 पृ 43।

2 टी आर दवगिरिकर गापाल कृष्ण गाखल, प्रकाशन विभाग दिल्ली 1967 पृ 289।

माध्यम से करदाताओ के प्रतिनिधियो का नियत्रण हो जाएगा। इस विचार को कार्यरूप देने के लिए विभिन्न प्रान्तो मे किस तरह के प्रशासन की स्थापना आवश्यक होगी, उसकी सक्षिप्त रूपरेखा मै नीचे प्रस्तुत कर रहा हूँ।[1]

प्रत्येक प्रान्त मे इन बातो की व्यवस्था होनी चाहिए।

(1) प्रशासनाध्यक्ष के रूप मे इग्लैण्ड से नियुक्त गवर्नर।

(2) छ: सदस्यो की एक कार्यकारी परिषद अथवा कैबिनेट, जिसमे तीन भारतीय और तीन अग्रेज हो तथा जिनके अधीन निम्नलिखित विभाग हो—

(क) गृह (कानून तथा न्याय व्यवस्था सहित) (ख) वित्त (ग) कृपि, सिचाई और सार्वजनिक निर्माण कार्य (घ) शिक्षा (ड) स्थानीय स्वशासन (स्वच्छता तथा चिकित्सा सहायता सहित) (च) उद्योग तथा वाणिज्य।

कार्यकारी परिषद मे नियुक्त होने के लिए वैसे तो भारतीय सिविल सेवा के सदस्यो को ही योग्य माना जाए परन्तु उनके लिए परिषद मे कोई स्थान सुरक्षित न रखा जाए और अग्रेज तथा भारतीय दोनो मे जो उत्कृष्टतम व्यक्ति उपलब्ध हो वे ले लिए जाने चाहिए।[2]

(3) 75 से 100 सदस्यो तक की एक विधान परिपद होनी चाहिए, जिसमे कम से कम 4/5 सदस्यो का चुनाव विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रो तथा विशिष्ट वर्गो द्वारा किया जाए। उदाहरण के लिए बम्बई प्रेसीडेसी मे, मोटे तौर पर, प्रत्येक जिले द्वारा दो सदस्य चुना जाए जिनमे से एक नगरपालिकाओ का प्रतिनिधित्व करे और दूसरा जिला तथा ताल्लुका बोर्ड का। बम्बई नगर को लगभग दस सदस्य चुनने का अधिकार दिया जाए। बाहरी निकायो जैसे कराची चेम्बर, अहमदाबाद

---

1 टी आर देवगिरिकर, वही पृ —289।

2 टी आर देवगिरिकर, गोपाल कृष्ण गोखले आधुनिक भारत के निमाता—पृ 290।

मिल मालिक, दक्कन सरदारो का एक-एक सदस्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त मुसलमानो को विशेप प्रतिनिधित्व प्राप्त हो और कही-कही 'लिगायत' जैसे उन सम्प्रदायो को भी एक सदस्य चुनने का अधिकार आवश्यक होगा जहा उनका जोर हो देना चाहिए। गवर्नर को यह अधिकार हो कि वह चाहे तो विशेपज्ञ के रूप मे अथवा कार्यकारी मरकार के प्रतिनिधित्व मे सहायता पहुँचाने के विचार से कुछ सरकारी सदस्य जोड सकता है।[1]

(4) कार्यकारी सरकार और इस प्रकार गठित विधान परिपद का आपसी सम्बन्ध लगभग वैसा ही होना चाहिए जैसा जर्मनी मे इम्पीरियल गवर्नमेंट तथा 'रशिटन्टैग' के बीच है। परिषद के लिए सभी प्रान्तीय कानूनो को पास करना आवश्यक होगा और प्रान्तीय कराधान मे घट-बढ करने के लिए परिषद की अनुमति आवश्यक होगी। उसके सामने वजट भी बहस के लिए पेश किया जाना अनिवार्य होगा और बजट तथा सामान्य प्रशासन विधेयक प्रसगो से सम्बन्धित उसके प्रस्तावो को कार्यरूप देना भी आवश्यक होगा, बशर्ते कि गवर्नर ने उनके बारे मे प्रतिनिपेध न कर दिया हो। बैठके अधिक जल्दी-जल्दी आयोजित करने अथवा अपक्षतया लम्बे अवधि तक बैठके जारी रखी जाने के लिए व्यवस्था हो परतु कार्यकारी सरकार के सदस्यो को अपने पदो पर बने रहने के लिए व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से परिपद के बहुमत के समर्थन की आवश्यकता नही होगी।[2]

(5) इस तरह पुनर्गठित हो जाने और विधान परिपद के नियन्त्रण मे काम करने वाली प्रान्तीय सरकार को प्रान्त के आन्तरिक प्रशासन का पूरा कार्य-भार सौप दिया जाना चाहिये इसके लिए आवश्यक होगा कि प्रान्तीय सरकार और भारत सरकार के बीच वर्तमान वित्तीय सम्बन्ध बहुत हद तक बदल दिया जाय और कुछ हद तक उलट भी दिये जाये, नमक, सीमा शुल्क, राज्य शुल्क, रेलो] डाक-तार और टकसाल से प्राप्त राजस्व पर पूर्णत भारत सरकार का अधिकार होगा और ये

1 टी आर देवगिरिकर, वही, पृ 290।

2 टी आर दवगिरिकर, गोपाल कृष्ण गाखल आधुनिक भारत क निमाता पृ 290 91।

सेवाए इम्पीरियल मानी जायेगी और भू-राजस्व जिसके अन्तर्गत सिचाई, उत्पादन शुल्क, वनो निर्धारित करो, स्टाम्प और रजिस्ट्रेशन का समावेश है। प्रान्तीय सरकार को प्राप्त होना चाहिए। और उन सेवाओ को प्रान्तीय माना जाना चाहिए, क्योकि इस तरह का विभाजन हो जाने पर, प्रान्तीय सरकार को प्राप्त होने वाला राजस्व उसकी वर्तमान आवश्यकता से अधिक होगा और भारत सरकार को निर्धारित राजस्व उसके वर्तमान खर्च से कम रह जायेगा अत: यह व्यवस्था की जानी चाहिये कि प्रान्तीय सरकार, भारत सरकार को ऐसा वार्षिक अशदान देती रहे जो एक साथ पाच-पाच वर्ष की अवधियो के लिये निर्धारित कर दिया जाये, यह व्यवस्था होने पर भी इम्पीरियल तथा प्रान्तीय सरकारो को चाहिए कि वे अपनी-अपनी स्वतत्र वित्तीय पद्धतियो का विकास कर ले और प्रान्तीय सरकारो को कुछ सीमाओ मे रखकर ऋण लेने और कर लगाने के अधिकार भी दे दिये जाये।[1]

(6) प्रान्तीय स्वशासन की ऐसी योजना उस समय तक अधूरी रहेगी जब तक उसके साथ-साथ ये काम नही किये जायेगे—(क) जिला प्रशासन को उदार रूप दिया जाना, और (ख) स्थानीय स्वशासन का अत्यधिक विस्तार इनमे से उपर्युक्त (क) के लिये यह कहना होगा कि सिन्ध जैसे डिवीजनो मे विशेष कारणों से कमिश्नर का पद बनाए रखना आवश्यक हो, उनके अतिरिक्त अन्य डिवीजनो मे कमिश्नर पद समाप्त कर दिया जाए और अशत· निर्वाचित तथा अशत: मनोनीत छोटी जिला परिपदे कलेक्टर के साथ जा सकती है जो इस समय कमिश्नरो को प्राप्त है—यो प्रारम्भ मे परिपदो का काम सलाह देना रहेगा। उपर्युक्त (ख) के लिए गावो तथा ग्राम समूहो के लिए अशत: निर्वाचित तथा अशत: मनोनीत ग्राम पचायतो, नगरो के लिए म्यूनिसिपल बोर्डो और ताल्लुका बोर्डो की स्थापना की जानी चाहिये। ताल्लुका बोर्ड पूर्णत. निर्वाचित निकाय बना दिये जाने चाहिये और उनमे कडे नियत्रण की शक्तिया तथा उन शक्तियो के प्रयोग का काम प्रान्तीय सरकर को अपने पास सुरिक्षत रखना चाहिये। उत्पादन शुल्क के रूप मे प्राप्त राजस्व का एक अश उक्त निकायो को सौप

---

1 टी आर देवगिरिकर गोपाल कृष्ण गाखल आधुनिक भारत क निमाता—पृष्ठ ९२।

दिया जाना चाहिए ताकि अपने कतर्तव्यो का समुचित रूप से निर्वाह करने के लिए उनके पास पर्याप्त साधन उपलब्ध रहे। चूकि जिला इतना बडा क्षेत्र होगा कि कोई अवैतनिक सगठन वहा का स्थानीय स्वशासन योग्यतापूर्वक नही चला सकेगा, अत: जिला बोर्डो के काम पूरी तरह सीमित होने चाहिये और कलक्टर को उसका पदेन अध्यक्ष बनाए रखना चाहिए।''[1]

भारत सरकार

प्रान्तो को इस तरह व्यवहारत. स्वशासी बना दिए जाने पर वाइसराय की कैबिनेट अथवा कार्यकारी परिपद के सविधान मे भी तद्नुरूप सशोधन की आवश्यकता होगी। उस परिषद मे हम आन्तरिक प्रशसन से सम्बद्ध विभागो—गृह, कृषि, शिक्षा, उद्योग तथा वाणिज्य के लिए चार सदस्य है। क्योकि आतरिक प्रशासन का सारा काम अब प्रान्तीय सरकारो को सौप दिया जाएगा और भारत सरकार के पास अब नाममात्र का नियत्रण अधिकार शेप रह जाएगा, जिसका प्रयोग वह बहुत ही कम अवसरो पर करेगी। अत: इन चार सदस्यो के स्थान पर एक सदस्य आतरिक मामलो का सदस्य पर्याप्त होगा। यह ठीक है कि कुछ और विभाग बनाना आवश्यक हो जाएगा। मेरी सम्मति मे परिषद मे निम्नलिखित सदस्य होने चाहिए जिसमे से सदा ही कम से कम दो सदस्य अवश्य भारतीय रहे।[2]

(क) आन्तरिक मामले, (ख) वित्त, (ग) विधि, (घ) प्रतिरक्षा, (ड) सचार, रेले, डाक एवम् तार, (च) विदेश।

वाइसराय की विधान परिषद का नाम भारत की विधान सभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली आफ इण्डिया) कर दिया जाना चाहिए। उसके सदस्य की सख्या बढाकर आरम्भ मे लगभग एक सौ कर दी जानी चाहिए और उसकी शक्तिया बढा दी जानी चाहिए। परन्तु सरकारी बहुमत सिद्धान्त

---

1 टी आर देवगिरिकर, गोपाल कृष्ण गोखले, आधुनिक भारत क निमाता पृ 292 93।

2 टी आर देवगिरिकर, गोपाल कृष्ण गाखल —पृ 293।

(जिसका स्थान सभवत· मनोनीत बहुमत सिद्धान्त को दे देना पर्याप्त होगा) फिलहाल उस समय तक बने रहने दिया जाना चाहिए जब तक प्रान्तो के लिए की गई स्वशासन व्यवस्थाओ के कार्यान्वयन के विषय मे पर्याप्त अनुभव प्राप्त न हो जाए। इस प्रकार भारत सरकार को प्रान्तीय प्रशासन के सम्बन्ध मे ऐसी एक सुरक्षित शक्ति सुलभ हो जाएगी जिससे वह आपातकाल मे काम ले सकेगी।[1] उदाहारणार्थ, यदि किसी प्रान्तीय विधान परिषद लगातर ऐसा कोई कानून पास करने से मना करती रहती है जिसे सरकार प्रान्त के मूलभूत हितो की दृष्टि से अनिवार्य समझती हो तो भारत सरकार प्रान्तीय सरकार की परवाह न करके वह कानून अपनी विधान सभा मे पास कर सकती है। ऐसे अवसर बहुत ही कम होगे, परन्तु हम सुरक्षित शक्ति से सत्ता को सुरक्षा भावना प्राप्त रहेगी और अधिकारियो को इस बात के लिए प्रेरणा मिलेगी कि वे प्रान्तीय स्वशासन के इस महत्प्रयोग को तत्परता से कार्य रूप दे। फिलहाल सरकारी अथवा मनोनीत व्यक्तियो का बहुमत बनाये रखने के लिए इस सिद्धान्त के अन्तर्गत रहते हुए विधान सभा को कुछ विवाद द्वारा सरकारी नीति को प्रभावित करने के और अधिक अवसर सुलभ होने चाहिए और ऐसा करते समय स्थल सेना तथा नौ सेना विषयक प्रश्नो को अन्य प्रसगो के समान स्तर पर ही रखा जाना चाहिए।[2] हम प्रचार गठित भारत सरकार को वित्तीय मामलो में भारत मत्री के नियत्रण से मुक्त कर दिया जाना चाहिए, और भारत मत्री का नियत्रण पूँजी मामलो मे भी बहुत कम कर दिया जाना चाहिए। उसकी परिषद समाप्त कर दी जानी चाहि और उसकी स्थिति धीरे-धीरे उपनिर्णयमंत्री के तुल्य हो जानी चाहिए। स्थल सेना तथा नौ सेना मे कमीशन अब भारतीयो का दिये जाने चाहिए और उनके लिए फौजी तथा नौ सेना की शिक्षा का उपयुक्त प्रबन्ध किया जाना चाहिए।[3]

---

1 देवगिरिकर टी० आर० -गोपाल कृष्ण गोखले - पृ० 294

2 देवगिरिकर, वही पृ० 294

3 देवगिरिकर, वही पृ० 295

सामाजिक विचार—गोखले का सामाजिक दर्शन विभिन्न समुदायो, जातियो एव राष्ट्रीयताओ मे समन्वय प्रतीक था। गोखले ने यद्यपि समाज सुधार आन्दोलन मे तिलक के समान सक्रिय भाग नही लिया किन्तु वे सच्चे समाज सुधारक थे। वे रूढिवादिता के प्रबल विरोधी थे। भारत मे प्रचलित जाति व्यवस्था को गोखले ने प्रगति की प्रतिगामी विचारधारा माना था। वे भारत की दलित जातियो के उत्थान के प्रबल समर्थक थे। छुआछूत तथा भेदभाव की नीति का अन्त करने के लिए गोखले ने भारतीयो को सामाजिक सकीर्णता से बाहर निकलने का आह्वान किया। वे सामाजिक सहिष्णुता तथा सद्भावना के प्रतीक थे। केवल भारत मे ही नही अपितु दक्षिण अफ्रीका की रगभेद नीति की भी उन्होने तीव्र आलोचना की। उनका यह दृढ विश्वास था कि जातीय भेदभाव का अन्त करके भारत विश्व के राष्ट्रो मे अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकता। उनके अनुसार जब तक भारत मे छुआछूत की समस्या का निवारण नही कर लिया जाता तब तक भारत द्वारा समान अधिकारो की माग अर्थहीन है। दक्षिण अफ्रीका मे भारतीय जिन अधिकारो की मॉग कर रहे थे उन्ही अधिकारो का प्रयोग भारत के सवर्ण पिछडी एव दलित जातियो को देने मे सकुचाते थे। इस प्रकार की दोहरी सामाजिक नीति से भारत का हित नही हो सकता था।[1]

गोखले समाज सुधार कार्यक्रमो के प्रबल समर्थक थे किन्तु उनके विचारो मे सामाजिक सुधार के सन्दर्भ मे महत्वपूर्ण विचार प्राप्त नही होता है। उनके जीवन मे घटी एक घटना उनके हृदय पर इतना अधिक बोझ बन गयी कि वह अपने को समाज सुधार के अयोग्य समझने लगे ऐसा उनके जीवनी लेखक देविगिरिकर की मान्यता है। देवगिरिकर ने लिखा है ''सामाजिक सुधार के प्रबल समर्थक होते हुए भी गोखले समाज सुधार मे आगे नही रहे। कहा जाता है कि पहली पत्नी के जीवित होते हुए दूसरा विवाह कर लेने का बोझ, उनके हृदय पर इतना अधिक रहा कि वह अपने को समाज सुधार आन्दोलन के अगुआ के आयोग्य समझने लगे। उनकी मन स्थिति यह जान पडती

1 आर० पी० परॉजप गापाल कृष्ण गाखल आय भूषण प्रस पुना 1915 पृ० 3 4

है कि जिस बात पर स्वय आचरण न किया जा सकता हो उमका प्रचार भी नही करना चाहिए।[1] अत. समाज सुधार के कार्य के प्रति पूरी सहानुभूति होने पर भी उन्होने अपने को उससे अलग ही रखा। यहॉ पर यह बताना आवश्यक हो जाता है कि, उनके गुरू न्यायमूर्ति रानाडे के जीवन मे भी इसी प्रकार का धर्म सकट आया था, जबकि वह विधवा से विवाह न करके अपना दूसरा विवाह एक अल्पायु की कन्या के साथ करके अपने को परिवार की इच्छा के सामने समर्पित किया। इस पर उन्हे कठोर आलोचनाओ का सामना करना पडा था, किन्तु वह समाज सुधार मे लगे रहे। लेकिन गोखले की धारणा थी कि यदि किसी कार्य पर अमल स्वय न किया जाय तो उसके लिए दूसरो को सलाह देना उचित नही है।

समाज सुधार के साधन के रूप मे यदि शिक्षा को स्वीकार किया जाय, तो यह मानना अनुचित नही होगा कि गोखले ने भी समाज के उत्थान मे अहम भूमिका निभायी थी। गोखले, समाज एव राष्ट्र के उत्थान के साधन के रूप मे शिक्षा की शक्ति पर अभूतपूर्व विश्वासवान थे। दिसम्बर 1903 मे जब विश्वविद्यालय विधेयक प्रस्तुत किया गया तो मानो उनका 'शिक्षाविद्' रूप प्रबुद्ध हो उठा। उस विधेयक के पीछे सरकार की मन: स्थिति विश्वविद्यालयो को पूर्णत: अपने नियत्रण मे ले लेना था। गोखले ने इस विधेयक का विरोध करते हुए कहा कि इससे विश्वविद्यालयो पर सरकारी नियत्रण इतना अधिक हो जाएगा कि वह राज्य के एक विभाग मात्र बनकर रह जाएगे।[2] सरकार द्वारा प्रस्तुत तर्क था, कि कालेजो मे प्रदान की जाने वाली शिक्षा का स्तर उच्च नही है, उत्तर देते हुये गोखले ने कहा था कि वर्तमान मे तो उसका स्तर उच्च कोटि का तो था ही और यदि वह यथासम्भव उच्चतम नही भी थी तो भी इस कारण उसे ठुकराया नही जा सकता है।[3]

---

1 त्रयम्बक रघुनाथ देवगिरिकर, गोपाल कृष्ण गोखले आधुनिक भारत के निमाता सीरीज प्रकाशन, प्रकाशन विभाग सूचना एव प्रसारण मत्रालय, भारत सरकार दिल्ली, 1980 पृ० 25 26

2 टी० वी० पर्वत, गोपाल कृष्ण गोखले, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद पृ० 170

3 टी० वी० पर्वत गोपाल कृष्ण गोखले नवजीवन पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद पृ० 170

गोखले ने एक शिक्षक के रूप मे अपना जीवन प्रारम्भ किया था और इस कारण से वे भारत की शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध मे समय-समय पर महत्वपूर्ण विचार प्रकट करते रहे। वे भारत मे अग्रेजी शासन द्वारा शिक्षा के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया जाना उचित एव वाछनीय समझते थे। उनके अनुसार शिक्षा का प्रसार नैतिक तथा आर्थिक दोनो ही दृष्टियों से अनिवार्य था। बर्लिन के प्रोफेसर ट्यूज के विचारो को आधार मानकर गोखले ने शिक्षा के विस्तार को कृपि, छोटे उद्योगो, निर्माताओ तथा वाणिज्य द्वारा राष्ट्रीय आर्थिक उत्पादक मे वृद्धि का कारण माना।[1]

शिक्षा के विस्तार द्वारा श्रम से उत्पन्न लाभ का उचित वितरण किया जा सकता था। श्रम क बटवारा सामाजिक शाति एवं सामान्य समृद्धि का द्योतक था। जनसामान्य का उचित शिक्षण सामाजिक एव आर्थिक विकास मे अन्तर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान की वृद्धि का भी सूचक मानते हुए गोखले ने भारत मे शिक्षा तथा विशेषतौर से प्रारम्भिम शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करने का आह्वान किया। अन्य देशो मे राज्य द्वारा शिक्षा को अत्यधिक महत्व दिया जाता था और शिक्षा के विस्तार के लिए धन का समुचित प्रबन्ध भी किया जाता था किन्तु भारत सरकार वित्तीय कठिनाइयो के नाम पर शिक्षा के प्रति विमुख थी। गोखले ने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्पित किया और उचित वित्तीय व्यवस्था द्वारा शिक्षा के क्षेत्र मे राज्य की महत्वपूर्ण भूमिका की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया।[2]

गोखले पाश्चात्य शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। पाश्चात्य शिक्षा के विस्तार पर अपना विचार प्रस्तुत करते हुए उन्होने कहा था, ''मेरे विचार से भारत की वर्तमान अवस्था मे पाश्चात्य शिक्षा का सबसे बडा कार्य विद्या को प्रोत्साहन देना उतना नही है जितना कि भारतीय मस्तिष्क को प्राचीन विचारो की दासता से मुक्ति दिलाना तथा पश्चिम के जीवन तथा विचार और चरित्र मे सर्वोत्तम

---

1 स्पीचेज ऑफ गापाल कृष्ण गाखले जी ए नटसन द्वारा प्रकाशित द्वितीय मस्करण मद्राग 1920 पृष्ठ 36।

2 स्पीचज ऑफ गापाल कृष्ण गाखल जी ए नटमन द्वारा प्रकाशित द्वितीय मम्करण मद्रास 1920 पृष्ठ 36।

तत्वो को आत्मसात करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु न केवल उच्चतम वरन् सभी पाश्चात्य शिक्षा उपयोगी है।''[1]

गोखले ने प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता एवम् नि:शुल्कता पर बहुत बल दिया। 18 मार्च, 1910 को गोखले ने इम्पीरियल कौंसिल मे यह प्रस्ताव रखा कि ''यह परिषद सिफारिश करती है कि पूरे देश मे प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क एवम् अनिवार्य बनाने के लिए अब कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए कि अन्य सभ्य देशों का अनुकरण करके लोगो को साक्षर बनाने का अपना दायित्य पूर्ण करे। [2] उन्होने कहा कि स्कूल जाने वाले बच्चो का प्रतिशत चौगुना होना चाहिए अत· शिक्षा पर होने वाले व्यय भी चौगुनी होना चाहिए। गोखले ने सुझाव दिया कि इस व्यय का दो तिहाई भाग सरकार तथा बाकी स्थानीय निकाय वहन करे। शिक्षा की अनिवार्यता के सम्बन्ध मे गोखले का कहना था कि इसे सरकार को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लेना चाहिए। इन्ही के शब्दो मे ''इस प्रकार उन लोगो को प्रकाश की एक किरण, परिष्कर के एक स्पर्श और आशा की एक झलक की उपलब्धि हो जायेगी, जिन्हे उन वस्तुओ की बहुत अधिक आवश्यकता है।[3]

शिक्षा के विस्तार द्वारा व्यक्तियो के जीवन मे नवीन चेतना का संचार अवश्यभावी था। गोखले यह जानते थे कि शिक्षा के विस्तार मात्र से भारत अपनी समस्याओ तथा कठिनाइयो को हल नही कर सकता था। जीवन मे सघर्ष, अपरिपक्वता, स्वार्थ तथा कष्टो का फिर भी सामना करना पडेगा। केवल शिक्षा से निर्धनता का अन्त भी सुलभ नही होगा। देशभक्ति एव परामर्श से प्रेरित सहायता कार्यो की आवश्यकता बनी रहेगी। इतना अवश्य होगा कि उचित शिक्षा द्वारा व्यक्तियो मे

---

1 मस्करण मद्रास 1920, पृष्ठ 36।

2 स्पीचेज गोपाल कृष्ण गोखले जी ए नेटसन द्वारा प्रकाशित द्वितीय सम्करण मद्राम 1920 पृष्ठ 37।

3 त्रयम्बक रघुनाथ दवगिरिवर, गापाल कृष्ण गाखल पब्लिकेशन डिवीजन भारत मरकार नई दिल्ली 1967 द्वितीय सस्करण पृष्ठ 142 143।

जिस नवीन आत्मनिष्ठ का विकास होगा उससे वे आर्थिक एव राजनीतिक शोषण का प्रतिकार कर सकेगे और मानवीय गरिमा के संरक्षण का उचित वातावरण बन सकेगा।[1] गोखले का यह विश्वास निरर्थक सिद्ध नही हुआ उनके द्वारा भारत मे पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार का समर्थन आगे चल कर भारतीयो को स्वशासन के कार्य मे पाश्चात्य स्तर की दक्षता दिलाने मे सहायक हुआ। अग्रेजो ने भारत मे पाश्चात्य शिक्षा तथा अग्रेजी के पठन-पाठन पर जितना ध्यान केन्द्रित किया उसका लाभ भारत की अपनी विस्तृत राजनीतिक चेतना को जागृत करने के अर्थ मे अवश्य प्राप्त हुआ।

गोखले ने हिन्दुओ मे व्याप्त सामाजिक सकीर्णता का विरोध किया। वे व्यापक दृष्टिकोण से सामाजिक समस्याओ का हल ढूढ रहे थे। ऐसे समय जबकि महाराष्ट्र के पुरातनपथी ब्राह्मणो द्वारा जाति बहिष्कार के निर्णय लिये जाने थे और अवर्णो के साथ सामाजिक आदान-प्रदान पर प्रायश्चित करवाया जाता था, गोखले ने अवर्णो की समस्या को लेकर अद्भुत साहस का परिचय दिया। वे अपने आपको हिन्दू कहलाने के स्थान पर भारतीय कहलाना पसन्द करते थे। केवल हिन्दुओ की जाति व्यवस्था ही नही अपितु उनके द्वारा अन्य धर्मावलम्बियो के साथ किये गये व्यवहार को भी गोखले ने लताडा। वे धार्मिक सहिष्णुता को सामाजिक एकता का प्रमुख आधार मानते थे। हिन्दु तथा मुसलमानो के मध्य मधुर सामाजिक सम्बन्धो की स्थापना उनका ध्येय था। वे विभिन्न समुदायो मे एकता की भावना का सचार कर उन्हे एक ही राष्ट्र के अन्तर्गत लाने के पक्षपाती थे। वे हिन्दू लीग तथा मुस्लिम लीग दोनों को ही राष्ट्र विरोधी मानते थे। उनके विचारो का भारत राष्ट्र न तो हिन्दू था न मुस्लिम। वे धर्म निरपेक्ष तथा साहिष्णुता के उपासक थे। वे पृथक् प्रतिनिधित्व को महत्वहीन मानते थे। भारत मे विभिन्न सामाजिक एव धार्मिक समुदायो मे किसी भी प्रकार के मनोमालिन्य अथवा अविश्वास के लिए स्थान नही था। सहिष्णुता के आदर्श को अपनाकर एकजुट होने का सदेश भारत के निवासियो के लिए गोखले की सामाजिक विरासत थी। गोखले मानववादी थे। उनका

---

1 स्पीचज गापाल कृष्ण गोखल, जी , नेटसन द्वारा प्रकाशित द्वितीय सम्करण मद्रास 1920 पृष्ठ 49 50।

किसी भी धार्मिक समुदाय अथवा राष्ट्रीयता के प्रति दुराव नही था। वे धार्मिक रूढिवाद से ऊपर उठकर सोचने मे सक्षम थे। वे ईश्वर की सत्ता को मानव प्रेम में उद्भासित मानते रहे। भारत के आध्यात्मिक गौरव एव तत्व ज्ञान की अभिव्यक्ति उनके सामाजिक विचारो का मूल थी।[1]

गोखले के उक्त राजनीतिक विचारो के अध्ययन से निष्कर्षत हम कह सकते है कि उन्होने विभिन्न राजनीतिक समस्याओ के सम्बन्ध में अपने उचित सुझावो के द्वारा भारतीय राजनीतिक उदारवाद को अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होने राजनीति के आध्यात्मीकरण पर बल दिया और ब्रिटिश साम्राज्य की न्यायप्रियता मे अटूट विश्वास व्यक्त किया। यद्यपि वह एक आदर्शवादी थे तथापि प्लेटो की भाति कोरे स्वप्न लोक मे विचरण करने वाले आदर्शवादी नही थे। उन्होने समस्याओ एव साधनो की व्यवहारिकता पर अपने विचारो को स्पष्ट ढग से प्रस्तुत किया। उन्होंने उग्रवादी उपायो का समर्थन कभी नही किया।

---

1 आर पी पराजपे, गोपाल कृष्ण गोखले, आर्य भूषण प्रेस पूना 1915 पृ 26 28।

<u>अध्याय—5</u>

बाल गंगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक एवं सामाजिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

पुर्नजागरण काल के प्रारम्भ मे भारत की शोषत, पीडित, पराधीन जनता के मन मे पराधीनता की बेडियो को उखाड फेकने तथा राष्ट्रवादी चेतना को विकसित करने मे गोपाल कृष्ण, गोखले तथा बाल गगाधर तिलक का स्थान अग्रणी रहा है। इन्होने अपने नवीन उद्गारो एव विचार से भारत में एक ऐसी नवीन क्रान्ति की जन्म दिया जिसने अर्वाचीन भारत के नव निर्माण मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जहॉ तक बाल गगाधर तिलक तथा गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक और सामाजिक विचारो के तुलनात्मक अध्ययन का प्रश्न है इस सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि दोनो ही विभूतियो का जन्म महाराष्ट्र के कोकण मे हुआ था। बाल गगाधर तिलक ने मध्यमवर्गीय, सनातनी ब्राह्मण परिवार मे जन्म लिया, जिसे कोई सामन्तवादी विलासमूलिका सुविधा प्राप्त नही थी। गोखले का जन्म भी एक सम्पन्न मध्यवर्गीय चितपावन ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। जिनका सामान्य सिद्धान्त था—''परिमित इच्छा सयत व्यय।''[1] यद्यपि आर्थिक दृष्टि से तिलक का परिवार मध्यमवर्गीय था, तथापि वह धार्मिक और शैक्षणिक परम्पराओं की दृष्टि से बहुत धनी था।

बाल गगाधर तिलक की माता पार्वतीबाई धर्मपरायण महिला थी, और पुत्र प्राप्ति के लिए उन्होने अनेको व्रत और उपवास किये थे। इनकी मॉ पार्वतीबाई हिन्दू पवित्रता, कर्त्तव्यशीलता, आर्जव और शुद्धता की मूर्ति थी। तिलक का विवाह 15 वर्ष की अवस्था मे तापी बाई के साथ हुआ जो कि आदर्श हिन्दू पत्नी थी। जीवन के अन्तिम क्षण तक वे पवित्रता, और कर्त्तव्यपरायण महिला के रूप

1 टी० आर० देवगिरिकर, आधुनिक भारत के निर्माता गोपाल कृष्ण गोखले निदेशक प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली 6 1967 पृ० 8

मे अपने पति की सेवा करती रही, और हिन्दू नारीत्व के सर्वोच्च आदर्श के अनुरूप उन्होने जीवन-यापन किया।[1] एक सनातनी परिवार मे जन्म लेने के कारण, तिलक का बचपन प्राचीन परम्पराओं के पालन, कर्मकाण्ड की अनुरक्ति और विद्याध्ययन मे बीता। गोखले का पारिवारिक जीवन धर्म प्रधान था। गोखले की माँ पढी-लिखी तो नही थी परन्तु अन्य निरक्षर ज्ञानवान स्त्रियो की भाति उन्हे बुद्धिमत्ता और परम्परागत ज्ञान की भरपूर निधि प्राप्त थी। रामायण और महाभारत की कथाए उन्हे कठस्थ थी। सन्त महात्माओं के भक्तिपूर्ण भजन भी उनको कठस्थ थे। इन सब का प्रभाव गोखले के ऊपर पडा।[2] अत: इन दोनो ही विभूतियो के साथ यह सत्य ही साबित हुआ कि परिवार ही प्रारम्भिक पाठशाला है।

किसी भी व्यक्ति के लिए वह समय बितना दु:खदायी होता है जब वह दैवयोग के अनुकूल न होने के कारण अपने माता-पिता के वात्सल्य एव देखभाल से बाल्यावस्था मे ही वचित हो जाता है। बिरले लोग ही होते है, जो इस कमी से उबरकर जीवन मे कुछ कर पाने की स्थिति मे आपाते हैं। ऐसा ही तिलक के साथ भी हुआ। जब वे मात्र दस वर्ष के थे, उसी समय उनकी माता का देहान्त हो गया तथा 16 वर्ष की अवस्था मे पिता गगाधर भी स्वर्गवासी हो गये। गगाधर बहुत सम्पन्न स्थिति मे नही थे, परन्तु तीक्ष्णबुद्धिसम्पन्न तथा अध्यवसाय और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की भावना से परिपूर्ण थे। आत्म सम्मान और वैयक्तिक मर्यादा की भावना के कारण वे अपने उच्च अधिकारियो की खुशामद नही करते थे इसलिए वे आर्थिक दृष्टि से आगे नही बढ सके। यद्यपि आर्थिक दृष्टि से तिलक का परिवार मध्यमवर्गीय था, तथापि वह धार्मिक और शैक्षणिक दृष्टि से बहुत धनी था। तिलक के परदादा केशव ने अपना अधिकाश समय पूजा-पाठ और कर्मकाण्ड मे बिताया। तिलक के दादा रामचन्द्र ने पैतीस वर्ष की अवस्था मे आध्यात्मिक नि·श्रेयस की खोज करने के लिए ससार का त्याग

---

1 वी० पी० वर्मा, लोकमान्य तिलक जीवन और दर्शन लक्ष्मीनारायण अगवाल पकाशक आगरा-3 1982-पृ० 9

2 वी० पी० वमा वही पृ० 13

कर दिया था। यद्यपि तिलक के पिता, गगाधर ने केवल विद्यालय-स्तरीय पठ्य पुस्तके लिखी, परन्तु वे सस्कृत साहित्य के विद्वान थे, और उन्होने स्वय ही तिलक को गणित और सस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा दी थी।[1] गोखले भी जब तेरह वर्ष के थे तो उनके पिता की मृत्यु हो गयी थी और उन्हे परिवार के साथ दूसरे गाव मे जाना पडा जहॉ उनके बडे भाई नौकरी करते थे। गोखले का प्रारम्भिक जीवन बडी कठिनाई मे बीता। गोखले का विवाह भी 15 वर्ष की उम्र के पहले ही हो गया था।

बाल गगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले दोनो का अधिकाश समय पूना मे व्यतीत हुआ। तिलक ने 1866 मे पूना नगर स्कूल मे दाखिला लिया तथा 1873 मे देक्कन कॉलेज में प्रवेश लिया। तिलक ने 1880 मे पूना मे रहकर अपना सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ किया। 1880 मे ही तिलक ने 'न्यू इगलिश स्कूल' की स्थापना की जिसका उद्देश्य निर्धन विद्यार्थियो के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना था। इसी वर्ष उन्होने अपने मित्र आगारकर से मिलकर दो साप्तहिक पत्र मराठी भाषा मे 'केसरी' और अग्रजी भाषा मे 'मराठा' प्रकाशित किया। इन पत्रो के प्रकाशन के साथ ही उनका सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ होता है। इन पत्रो के माध्यम से ही उन्होने लगभग 40 वर्ष तक प्राकृतिक अधिकार, राजनीतिक स्वतन्त्रता और न्याय के सिद्धान्तो का प्रसार किया।[2] गोखले ने भी 1886 मे मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद पूना के दक्कन कॉलेज मे प्रवेश लिया। गोखले ने अपना जीवन एक शिक्षक के रूप में प्रारम्भ किया तथा वे दक्कन एजुकेशन सोसाइटी के आजीवन सदस्य भी रहे। 1902 मे इस सोसाइटी से मुक्त होने के पश्चात् गोखले ने फर्गुसन कॉलेज, पूना मे प्रिसपल के पद को सुशोभित किया। अपने विस्तृत ज्ञान, कठोर परिश्रम और बौद्धिक ईमानदारी के बल पर इन्होने इन सभी पदो पर बहुत अधिक कुशलता पूर्वक कार्य किया। गोपाल कृष्ण गोखले ने ईमानदारी तथा नि:

---

1 वी० पी० वमा लोकमान्य तिलक जीवन ओर दशन, लक्ष्मीनारायण अगवाल प्रकाशन आगरा 3 1967, पृ० 10

2 पुरुषोत्तम नागर आधुनिक भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर राजस्था 1980 पृ० 183

स्वार्थ कार्य भावना के सद्‌गुण अपनी वश परम्परा से ही प्राप्त किये थे। उन्होंने अपने इस उत्तराधिकार की रक्षा ही नही की अपने जीवन तथा कार्यो से उसे समृद्ध भी किया।[1]

राजनीतिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

तिलक और गोखले के जीवन मे इन समानताओ के होने पर भी दोनो के विचारो मे कुछ बुनियादी मतभेद भी थे इसी कारण वे एक दूसरे से बिल्कुल अलग थे। यह मतभेद विचारधारा, साधन, प्रभाव लक्ष्य, कार्यपद्धति को लेकर था दोनो के रास्ते अलग-अलग होने पर भी मजिल एक थी, वह थी स्वराज्य। यह मतभेद व्यक्तिगत स्वभाव से लेकर राजनैतिक सिद्धान्तो और आदर्शो के क्षेत्र तक फैला था।

गोखले नम्र और भावुक व्यक्ति थे, तिलक स्वेच्छा सम्पन्न सिद्धान्तवादी थे। गोखले गगा के समान थे, ''जिसमे स्नान कर आदमी निर्मल हो जाता है '' किन्तु तिलक अथाह महासागर के समान थे, जिसमे कूदना खेल नही। गोखले को रानाडे का शिष्य होने का गर्व था, पर तिलक किसी को भी अपना गुरू मानने को तैयार न थे। गोखले अपने आप तो ठीक मार्ग पर रहते, किन्तु जब फिरोजशाह मेहता गलत रास्ते पर होते, तब वह यह जानते हुए भी उसका साथ दे देते थे, किन्तु तिलक कर्त्तव्य को ही अपना पुरस्कार मानते थे। शास्त्री के शब्दो मे गोखले इस कोमल वल्लारी के समान थे, जिसे फैलने के लिए किसी वृक्ष के सहारे की जरूरत पडती है और तिलक स्वय एक ऐसे विशाल वरगद के वृक्ष के समान थे, जिसमे से निकली अनेक शाखाए चारो ओर फैली रहती है।

तिलक और गोखले के राजनीतिक एव सामाजिक दर्शन का विकास प्रारम्भिक तौर पर पाश्चात्य दर्शन के उनके भिन्न दृष्टिकोण के रूप मे भारतीय उपमहाद्वीप मे हुआ।[2] तिलक और गोखले के

---

1 पुरूषोत्तम नागर आधुनिक भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर राजस्थान, 1980 पृ० 150 151

2 एन० जी० जोग आधुनक भारत के निर्माता लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मन्त्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, 1969, पृ० 215

राजनीतिक विचारो का क्रम उनके द्वारा भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की 1889 मे सदस्यता प्रारम्भ करने से प्राप्त होता है।

बाल गगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले जब ऐजुकेशन सोसाइटी के सदस्य थे, उसी समय उनके मतभेद खुलकर सामने आने लगे थे। अतः यह बात आश्चर्य जनक नही है कि अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ से ही तिलक और गोखले ने अपने को दो परस्पर विरोधी खेमो मे बटा पाया था। तिलक ने, गोखले को 'सार्वजनिक सभा' का मत्री बनने की अनुमति दी जाने के कारण, सोसाइटी से इस्तीफा दे दिया था। इसके पश्चात दोनो मे सामाजिक सुधार के प्रश्नो को लेकर तीव्र मतभेद उत्पन्न होने शुरू हो गये थे। अन्त मे गोखले ने 'सार्वजनिक सभा' (जिस पर तिलक ने कब्जा जमा लिया था) से त्यागपत्र देकर देक्कन सभा (सार्वजनिक सभा के प्रतिद्वन्द्वी सस्था स्वरूप रानाडे द्वारा स्थापित) मे शामिल हो गये, यह दोनो के अन्तिम रूप से सम्बन्ध विच्छेद करने के समान था।[1] 1890 में तिलक ने देक्कन ऐजूकेशन सोसाइटी से भी त्यागपत्र दे दिया।

इस घटना के पश्चात् दोनो अपने जीवन के अन्त तक, एक दूसरे के विरोधी बने रहे और जैसे-जैसे तिलक की राजनीति अधिकाधिक उग्र होती गई, वैसे-वैसे गोखले अपने उदार विचारो के घेरे मे बधते चले गये। इस प्रकार 1896 मे एक प्रकार से महाराष्ट्र मे दो प्रमुख दल हो गये थे परन्तु 1905-6 में तिलक ने एक नये दल की ठोस आधारशिला रखी, जो अपील और आवेदन की पुरानी नीति से सन्तुष्ट नही था। बाल गगाधर तिलक ही इस नये दल के सर्वमान्य नेता थे। उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य, उनके महान् त्याग और उनकी उत्कृष्ट देशभक्ति ने उन्हे दल का नेतृत्व करने के लिए पूर्ण रूप से योग्य बना दिया। तिलक स्वाभाविक रूप से अपनी सहायता स्वय करने के सिद्धान्त मे विश्वास करते

---

1 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मन्त्रालय नई दिल्ली 1969 पृ० 215 216

राजनीतिक विचारो का क्रम उनके द्वारा भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की 1889 मे सदस्यता प्रारम्भ करने से प्राप्त होता है।

बाल गगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले जब ऐंजुकेशन सोमाइटी के सदस्य थे, उसी समय उनके मतभेद खुलकर सामने आने लगे थे। अत: यह बात आश्चर्य जनक नही है कि अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ से ही तिलक और गोखले ने अपने को दो परस्पर विरोधी खेमों मे बटा पाया था। तिलक ने, गोखले को 'सार्वजनिक सभा' का मत्री बनने की अनुमति दी जाने के कारण, सोसाइटी से इस्तीफा दे दिया था। इसके पश्चात दोनो मे सामाजिक सुधार के प्रश्नो को लेकर तीव्र मतभेद उत्पन्न होने शुरू हो गये थे। अन्त मे गोखले ने 'सार्वजनिक सभा' (जिस पर तिलक ने कब्जा जमा लिया था) से त्यागपत्र देकर देक्कन सभा (सार्वजनिक सभा के प्रतिद्वन्द्वी सस्था स्वरूप रानाडे द्वारा स्थापित) मे शामिल हो गये, यह दोनो के अन्तिम रूप से सम्बन्ध विच्छेद करने के समान था।[1] 1890 में तिलक ने देक्कन ऐजूकेशन सोसाइटी से भी त्यागपत्र दे दिया।

इस घटना के पश्चात् दोनो अपने जीवन के अन्त तक, एक दूसरे के विरोधी बने रहे और जैसे-जैसे तिलक की राजनीति अधिकाधिक उग्र होती गई, वैसे-वैसे गोखले अपने उदार विचारो के घेरे मे बधते चले गये। इस प्रकार 1896 मे एक प्रकार से महाराष्ट्र मे दो प्रमुख दल हो गये थे परन्तु 1905-6 मे तिलक ने एक नये दल की ठोस आधारशिला रखी, जो अपील और आवेदन की पुरानी नीति से सन्तुष्ट नही था। बाल गगाधर तिलक ही इस नये दल के सर्वमान्य नेता थे। उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य, उनके महान् त्याग और उनकी उत्कृष्ट देशभक्ति ने उन्हे दल का नेतृत्व करने के लिए पूर्ण रूप से योग्य बना दिया। तिलक स्वाभाविक रूप से अपनी सहायता स्वय करने के सिद्धान्त मे विश्वास करते

---

1 एन० जी० जाग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, नई दिल्ली 1969, पृ० 215 216

थे।[1] भगवद्गीता मे उल्लिखित आत्मा के दर्शन से वे स्वय सहायता के राजनीतिक सिद्धान्त का समर्थन करते थे।[2]

उद्धरेदात्मनात्मान   नात्मानमवसादयेत् ।
आतमैव ह्यात्मनो बन्दुरात्मैव रिपुरात्मन ।।

बाल गगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले के विपरीत इस पर बल देते थे कि समाज सुधार से पहले राजनीतिक सुधार होना चाहिए।

तिलक का कहना था कि "मै इसमे विश्वास नही करता कि राजनैतिक मुक्ति से पूर्व ही सामाजिक पुर्न-निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए। जब तक हमे अपना भविष्य स्वय निश्चित करने की शक्ति नही प्राप्त हो जाती, तब तक, मेरी राय मे, राष्ट्रीय पुर्नजागरण नही लाया जा सकता। मैने अपने जीवन मे सदा इसी विश्वास का प्रचार किया है। जब मैने 'एज ऑफ कन्सेन्ट बिल' का विरोध किया था, तो वह मुख्यता केवल इसी आधार पर। मै न तो तब समझता था, और न ही अब समझता हूँ कि ऐसा कोई भी विधान मण्डल, जो जनता के प्रति उत्तरदायी नही है, सामाजिक विषयो पर कानून बनाने के लिए सक्षम है।"[3] इसके विपरीत गोखले तथा उनके साथियो का दृढ विश्वास था कि समाज सुधार के बिना, कोई प्रगित सम्भव नही है—अर्थात् उदारवाद समाज सुधार मे बद्धमूल्य है।

विचारधारा—भारतीय राष्ट्रीय आन्दोन की दो धाराएँ रही है इन दोनो धाराओ का मूल उद्देश्य भारतीय जनता का हित साधन था लेकिन यह हित साधन किस रूप मे किया जा सकता है और इसके हेतु किन साधनो को अपनाया जाना चाहिए, इसके सम्बन्ध मे इन दोनो विचारधाराओ मे अन्तर

---

1 वी० पी० वर्मा लोकमान्य तिलक जीवन आर दशन, लक्ष्मीनारयण अग्रवाल प्रकाशक आगर-3 1882 पृ० 213

2 भगवत गीता 6,5

3 [illegible] जी० जाग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली 1969 पृ० 36

रहा है। बाल गगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले के मध्य भी वैचारिक मत भिन्नता थी। इसके पीछे दोनो के वातावरण, पालन पोषण एव उनका खुद का व्यक्तित्व ही एक कारण था। तिलक पाश्चात्य विश्वासो पर सहमति नही रख सके इसका एक मुख्य कारण उनका ब्राह्मण होना भी था। जबकि गोखले और रानाडे भी तिलक की भाति ब्राह्मण थे। तिलक की तरह वह भी चितपावन समुदाय के थे जो कि ब्रिटिश उपनिवेश बनने के पूर्व भारत मे आध्यात्मिक नेतृत्व प्रदान करता था। लेकिन ब्रिटशो के आने के पश्चात इस समुदाय के नेतृत्व का ह्रास हुआ इसी के चलते तिलक ब्रिटिश नीतियो के विरोधी थे।[1]

तिलक के विचार, गोखले के विचारो से भिन्नता लिए हुए हैं क्योंकि तलिक का आकर्षण हिन्दुत्व की तरफ ज्यादा है। तिलक अपने प्रारम्भिक दिनो मे ही पाश्चात्य दर्शन का परिचय प्राप्त कर चुके थे। तिलक का रूझान गणित एव नक्षत्र विज्ञान की तरफ ज्यादा था और इन्ही विचारो के प्रभाव से अपने ज्ञान को पुष्ट करते थे। तिलक अपने भारतीय धर्म दर्शन एव सस्कृति के प्रति कट्टर थे और वे गोखले की तरह ब्रिटिश साम्राज्य को वरदान नही अपितु अभिशाप मानते थे। तिलक का मानना था कि ईसाई धर्म से प्रभावित पाश्चात्य दर्शन अपने को अन्य दर्शनो की तुलना मे उच्च मानकर चलता है तथा पाश्चात्य दर्शन अपने ही धर्म को श्रेष्ठ तथा अपने धर्म ग्रन्थो को सर्वज्ञानी मानता था। इसके साथ ही साथ पाश्चात्य दार्शनिक, धर्म के क्षेत्र मे अग्रणी हिन्दू ब्राह्मणो को सदा दोयम दर्जे का मानते थे। तिलक एव गोखले के मध्य ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वैचारिक मत भिन्नता का कारण उनकी ब्रिटिश साम्राज्य के कृत्यो के प्रति उनका भिन्न दृष्टिकोण था।[2] 1895 मे तिलक अग्रेजो की न्यायप्रियता तथा उनकी दयालुता के झूठे दम्भ के विरोध मे उठ खडे हुए। परिवर्तित विचारो के द्वारा वे उदारवादियो

---

1 एम० ए० बोतर्पट तिलक एण्ड रिब्यूलूशन एण्ड रिफाम इन द मकिग आफ माडन इण्डिया, दिल्ली आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी 1991, पृ० 302

2 एम० ए० बोतपई तिलक एण्ड गोखले रिब्यूलूशन एण्ड रिफाम इन द मगि ऑफ माडन इण्डिया आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रस 1991 पृ० 302 303

की प्रार्थना एव याचिकाओ की नीति को भिक्षा वृत्ति मानने लगे। जहॉ तिलक का यह मानना था ब्रिटेन और भारत के हित सामान्य नही है क्योकि दोनो की ही परिस्थितियॉ तथा सस्कृतियॉ भिन्न है। अपितु दोनो के हित परस्पर और नितान्त विरोधी है। अर्थात लकाशायर के विकास से भारत का विकास नही हो सकता।[1] वहाँ गोखले ब्रिटेन की अधीश्वर शक्ति की सर्वोच्चता को स्वीकार करते थे उनका मानना था कि ''अच्छे अथवा बुरे के लिए हमारा भविष्य एवम् हमारी आकॉक्षाए ब्रिटिश राज्य के साथ जुड गई है और काग्रेस उन्मुक्त रूप से यह स्वीकार करती है कि जिस प्रगति की हम आकाक्षा करते है वह ब्रिटिश शासन की सीमाओ मे ही है।[2]

प्रभाव—बाल गंगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले दोनो के ही दर्शन में विभिन्न विचारो का भी प्रभाव पडा। जहॉ एक ओर तिलक ने वेद, उपनिपद व गीता का गहन अध्ययन किया था, वही दूसरी ओर हेगल, काट, स्पेन्सर, मिल, बेन्थम, वाततेयर व रूसो आदि के विचारो का भी अध्ययन किया था। वे पाश्चात्य साहित्य एव सस्कृति के उच्चादर्शो से भी अनभिज्ञ नहीं थे, किन्तु तिलक एक राष्ट्रवादी भारतीय के रूप मे भारत का वैचारिक पुनर्निमाण पाश्चात्य विचार धारा पर आधारित करना नही चाहते थे। मिल और स्पेन्सर के अध्ययन ने उन्हे तर्कवादी और सशयवादी बना दिया। गीता तथा वेदो की प्रेरणा से तिलक ने भारत के अतीत के राष्ट्रीय गौरव एव सस्कृति को उभारने का प्रयास किया। तिलक इस अर्थ मे पुनरूत्थानवादी थे। ये राष्ट्रवाद को उस प्राचीन नीव पर आधारित करना चाहेत थे जिसे भारत ने अपनी गौरवपूर्ण धरोहर के रूप मे सजा रखा था।[3] **गोखले,** ह्यूम, वैडनवर्न, रिपन, कार्ले मे उस क्षमताओ को देखते थे जो कि ब्रिटिश एव भारतीयो के मध्य

1 एम० ए० बातपर्ट वही, पृ० 303

2 टी० आर० दर्वागिरिकर आधुनिक भारत के निमाती गापाल कृष्ण गाखल निदशक प्रकाशन विभाग पुराना सचिवालय, दिल्ली 6 1967, पृ० 116

3 पुरूषात्तम नागर आधुनिक भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, राजस्था 1980 पृ० 200

भौगोलिक एव सास्कृतिक दूरी को मिटाने के लिए सेतु का काम कर सके।[1] **डॉ० पट्टाभि** का कहना था कि "वास्तव मे, वे न तो दुर्बल हृदय उदारवादी थे ओर न ही छिपे हुए राजद्रोही। वे तो जनता की आवश्यकताए, इच्छाए और आकॉक्षाए सरकार को बताते थे और सरकार की कठिनाइयॉ जनता और काग्रेस के सम्मुख रखते थे। वे तो जनता और सरकार के बीच एक सच्चे मध्यस्थ थे।"[2] अपनी इस मध्यस्थता के कारण वे अनेको बार जनता तथा सरकार दोनो मे अलोकप्रिय हो जाते थे, लेकिन इस अलोकप्रियता से विचलित न होते हुए अपने विवेक के अनुसार भारत के सर्वोत्तम हित मे कार्य करते रहते थे। इनका विश्वास था कि एक दूसरे से ईर्ष्या और घृणा करने से ब्रिटेन और भारत दोनो की हानि है, सद्भावना व स्वस्थ सहयोग से बहुत कुछ लाभ हो सकता है। **गोखले के अनुसार** "जो अग्रेज यह समझता है कि भूतकाल की तरह भविष्य मे भी भारत मे बहुत दिन तक शासन किया जा सकता है और जो भारतीय यह समझता है कि हमे इस साम्राज्य से बाहर निकलकर अपना रास्ता बनाना चाहिए, वे दोनो ही मौजूदा हालत की यर्थाथताओ को अपर्याप्त रूप से समझते है।"[3] इस प्रकार गोखले का यह विचार था कि भारतीय और ब्रिटिश शासन के सम्बन्ध सद्भावना पूर्वक रहे।

इसके विपरीत तिलक ने समानता की तुलना मे स्वतन्त्रता को प्रमुखता प्रदान की। तो गोखले के विकासवादी विचारो से सहमत नही थे। जहॉ गोखले ने ब्रिटिश एव भारतीयो के मध्य सेतु की कल्पना की वही तिलक ने इसे खाई का दृष्टिकोण प्रदान किया। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के स्थान पर उन्होने राष्ट्रवादी क्रान्ति का चयन किया। उनकी नीति शोपतो की समस्याओ के खिलाफ आवाज

---

1 एम० ए० वोतपर्ट तिलक एण्ड गोखले रिब्यूलूशन एण्ड रिफाम इन द मेकिग ऑफ मार्डन इण्डिया आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रस 1991 पृ० 300

2 पट्टाभि सीतारमेय्या हिस्ट्री ऑफ नेशनल काग्रेस भाग 1 पद्मा पब्लिकेशन्स लिमिटेड बाम्बे 1935 पृ० 90

3 पट्टाभि सीतारमेय्या हिस्ट्री ऑफ नेशनल काग्रेस पद्मा पब्लिकेशन्स लिमिटड बम्बइ 1935, पृ० 25

बुलन्द करना एव शोषण का विरोध करना था।[1] उनका यह भी मानना था कि शोषितो की विभिन्न प्रकार की समस्याए चन्द ब्रिटिशो के कारण है तिलक ने स्वतन्त्रता के विचारो को कभी बहुत खुलकर व्यक्त नही किया इसके लिए उन्होंने प्रेस एव सार्वजनिक मच को चुना इसके पीछे भी उनकी यह सोच कार्य कर सही थी कि ब्रिटिश उन्हे दण्डित कर सकते है, और उनके द्वारा स्वतन्त्रता के लिए किए गए अब तक के कार्यो को विनष्ट कर सकते है।[2] अतः केसरी और मराठा के माध्यम से अपने विचारो को व्यक्त कर देश मे जागृति उत्पन्न की। यह उनका व्यावहारिक दृष्टिकोण था। भारत की स्वतन्त्रता दिलाना उनका एकमात्र एव अन्तिम उद्देश्य था।

लक्ष्य—जहॉ तक बाल गगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले के लक्ष्य के सम्बन्ध का सवाल है, इन दोनो का ही उद्देश्य ''स्वशासन'' है। लेकिन स्वशासन की प्राप्ति का तात्पर्य दोनो ने अलग-अलग लिया है। स्वशासन से बाल गगाधर तिलक का तात्पर्य था कि स्वशासन, राजनीतिक रूप से स्वराज्य का ही एक अंग है, एक नाम है अर्थात् तिलक के आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण वे स्वराज्य को मनुष्य का अधिकार ही नही बल्कि धर्म मानते थे उन्होने स्वराज्य की नैतिक और आध्यात्मिक व्याख्या की।[3] राजनीतिक रूप मे उन्होने स्वराज्य का अर्थ स्वशासन बताया किन्तु नैतिक सन्दर्भ मे इसका अर्थ आत्म नियन्त्रण की पूर्णता को माना जो कि सबसे बडा स्वधर्म है। स्वराज्य की प्राप्ति आत्मा की स्वतन्त्रता के आधार पर ही हो सकती है इसलिए उन्होने नारा दिया कि ''स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और मै इसे लेकर ही रहूँगा।'' तिलक ने ओजस्वी भाषण मे भी

---

1 एम० ए० वोटपर्ट तिलक एण्ड गोखले, रिव्यूलूशन एण्ड रिफाम इन द मकिग ऑफ मार्डन इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस 1991 पृ० 300

2 एम० ए० वोटपर्ट तिलक एण्ड गोखले रिब्यूलूशन एण्ड रिफाम इन द मेकिग ऑफ मार्डन इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस, 1982-पृ० 300

3 पुरूषात्तम नागर आधुनिक भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, राजस्थान 1980 पृ० 190

स्वशासन को नये दल का लक्ष्य बताया—"हम अपने हाथ मे सम्पूर्ण अधिकार लेना चाहते है। मै अपने घर की कुजी लेना चाहता हूँ और केवल इसमें अपरिचित व्यक्ति को हटा देना ही नही चहता, स्वशासन हमारा लक्ष्य है, हम अपने प्रशासन यन्त्र मे अधिकार चाहते हे। हम लिपिक बनना नही चाहते। वर्तमान समय मे हम लोग लिपिक है और विदेशी सरकार के हाथो मे हम अपने ही दमन के स्वेच्छा से साधन बने हुए है।"[1] स्वराज्य का यही अर्थ है कि भारत के शासन पर नौकरशाही का नियत्रण जनता को हस्तान्तिरत कर दिया जाय। जिस प्रकार से इग्लैण्ड मे सम्राट की स्थिति एक नाम मात्र के शासन की और समस्त कार्य मत्रियो की सलाह पर होता है उसी तरह भारत मे जन प्रतिनिधियो के हाथों मे वास्तविक सत्ता होनी चाहिए।[2]

दूसरी तरफ गोखले की दृष्टि मे ब्रिटिश शासन एक ईश्वरीय देन था, अतः उससे पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद भारतीयो के लिए कल्याणकारी नही है। गोखले ने स्वशासन को एक भावनात्मक आवश्यकता और नैतिक तथा राजनीतिक उपलब्धि माना। इस प्रकार गोखले का यह मानना था कि प्रशासन मे जो आर्थिक, राजनीतिक एवम नैतिक बुराईयॉ आ गयी है उनके निराकरण का एक मात्र उपाय स्वशासन ही है। उनके अनुसार—"ब्रिटिश अभिकरण के स्थान पर भारतीय अभिकरण को प्रतिष्ठित करना, विधान परिषदो का विस्तार और सुधार करते-करते उन्हे वास्तविक निकाय बना देना और जनता को सामान्यतः अपने मामलो का प्रबन्ध स्वय करने देना।[3] गोखले ब्रिटिश शासन के पक्ष मे अपना मत व्यक्त करते हुए कहते है कि "मै चाहता हूॅ कि भारत विश्व के महान् राष्ट्रो मे राजनीतिक, औद्योगिक, धार्मिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक और कला के क्षेत्र मे अपना उपयुक्त स्थान

---

1 वी० पी० वर्मा लोकमान्य तिलक जीवन आर दशन लक्ष्मीनारायण अगवाल प्रकाशक आगरा 3 1982 पृ० 205

2 डी० वी० तहमानकर लोकमान्य तिलक, फादर ऑफ द इण्डियन अनरस्ट एण्ड दी मकर ऑफ मार्डन इण्डिया, जान मरे लन्दन, 1956, पृ० 262

3 टी० वी० पर्वत बाल गगाधर तिलक, नवजीवन पब्लिशिग हाउस अहमदाबाद 1958 पृ० 456

ग्रहण करे। मेरी आकॉक्षा यही है कि ये सभी आदर्श ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत ही प्राप्त हो।''[1] अत: तिलक के विपरीत गोखले का विश्वास था कि अग्रेज स्वभाव से न्यायप्रिय होते है तथा यदि उन्हे भारतीय दृष्टिकोण का सही ज्ञान करा दिया गया, तो वे इसे स्वीकार कर लेगे। इससे यह स्पष्ट होता है कि गोखले स्वसासन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत चाहते थे। **विपिन चन्द्र पाल** ने भी दोनो के बारे मे अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि ''वे (नरमदलीय-गोखले) भारत सरकार को लोकप्रिय बनाना चाहते है, परन्तु किसी प्रकार भी वे ब्रिटिश शासन को खत्म नही करना चाहते, हम इसे स्वशासी बनाना चाहते है और ब्रिटिश नियन्त्रण से इसे सर्वथा मुक्त रखना चाहते है।''[2]

साधन— कलकत्ता काग्रेस अधिवेशन मे अपने विचार व्यक्त करते हुए तिलक ने कहा ''काग्रेस ने अब यह सिद्धान्त निर्धारित किया है कि स्वशासन लक्ष्य है जिसे अन्तोगत्वा और धीरे-धीरे राष्ट्र को प्राप्त करना है, और जब राष्ट्र सवैधानिक सघर्ष के अग के रूप मे सरकार से प्रार्थना करेगा और आवेदन देगा और अपनी मॉगो की पूर्ति कराना चाहेगा या राजनीतिक महत्वाकाक्षाओ की सफलता चाहेगा उस समय राष्ट्र मुख्यत: इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने प्रयासो पर निर्भर रहेगा। राष्ट्रीय काग्रेस के द्वारा हमारे हाथ मे **स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा ये तीनो शक्तिशाली अस्त्र** दिये गये है और इनकी सहायता से हमे स्वराज्य की स्थापना अवश्य करनी चाहिए।''[3]

बाल गगाधर तिलक के उपर्युक्त उद्गार से हम उनके सम्पूर्ण विचारों, कार्यो का सार जान सकते है। इन विचारो मे तिलक ने '**गागर में सागर**' वाली कहावत सही सिद्ध कर दी है।

राजनीतिक विचारधारा और लक्ष्य की दृष्टि से तो तिलक गोखले से भिन्न थे ही, परन्तु साधन को लेकर भी उनसे भिन्न विचार रखते थे। तिलक ने अपने लक्ष्य स्वराज्य की प्राप्ति के साधन में

---

1 टी० वी० पर्वते बाल गगाधर तिलक, नवजीवन पब्लिशिग हाउस अहमदाबाद 1958 पृ० 457

2 वी० पी० वर्मा लोकमान्य तिलक जीवन आर दर्शन लक्ष्मीनारायण अगवाल प्रकाशक आगरा 3, 1982, पृ० 205

3 वी० पी० वर्मा लोकमान्य तिलक जीवन आर दर्शन लक्ष्मीनारायण अगवाल प्रकाशक आगरा 3 1982 पृ० 205

बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा को प्रमुखता दी। **नेविन्सन** ने तिलक के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि "अपने उद्देश्य के कारण ही नही, वरन् उसे प्राप्त करन के उपायो के कारण उन्हे उग्रवादियो की उपाधि मिली है।"[1] तिलक का मानना था कि इग्लैण्ड जैसे स्वतन्त्र और लोकतन्त्रात्मक देश मे तो वैधानिक आन्दोलन के आधार पर राजनीतिक परिवर्तन किये जा सकते है लेकिन भारत जैसे देश मे सवैधानिक आन्दोलन के आधार पर स्वतन्त्रता प्राप्त करने का स्वप्न देखना स्वय को ही घोखा देना है।

तिलक के विपरीत गोखले ने श्रेष्ठ साध्य की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ साधनो के अपनाने पर जोर दिया। **गोखले का विश्वास था** कि "देश का पुनर्निर्माण राजनीतिक उत्तेजना की आधी मे नही बल्कि धीरे-धीरे ही हो सकता है। इस धीमी प्रक्रिया मे समस्या का वास्तविक हल था, अग्रेजी की प्रकृति के पहलू पर विजय पाना और इस प्रकार उनकी सहायता व समर्थन करना।"[2] उन्होने आगे कहा "भावी भारत परमेश्वर की कृपा से घटती हुयी समृद्धि, खाली आशा और असन्तोष का भारत नही होगा बल्कि सदा फैलने वाले उद्योगो, जाग्रत क्षमताओ, बढती हुई समृद्धि तथा अधिक समान रूप से बॅटी हुई दौलत और ऐश्वर्य का भारत होगा। मुझे अपने लक्ष्य और चेतना मे पूरा विश्वास है और इसकी असीमित क्षमताओ मे मै विश्वास करता हूँ, परन्तु भारत का भविष्य अग्रेजी ताज की अगाध सर्वोचता से ही प्राप्त किया जा सकता है।[3] गोखले, काग्रेस मे नवोदित उग्र गुट के, उग्रविचारो के साधनो तथा असंवैधानिक मार्ग के वह विरुद्ध थे। उनके अनुसार हिसा से उत्पन्न प्रतिहिसा, घृणा विद्वेष तथा नरसहार भारत की समस्याओ का स्थायी हल नही है।[4] अत· अपने लक्ष्य को प्राप्त करने

---

1 नविन्सन द न्यू स्पिरिट इन इण्डिया, पृ० 226

2 गाखल स्पीचिज एण्ड राइटिग्स, नटेसन मद्राम, 1920 पृ० 38

3 गाखल स्पीचेज एण्ड राइटिगस, वही, पृ० 38

4 आर० पी० परॉजपे गोपाल कृष्ण गोखले आर्य भूषण प्रेस पूना 1915 पृ० 87

के साधन के रूप मे गोखले ने प्रार्थना पत्रो, स्मृतिपत्रो, और प्रतिनिधि मण्डलो (Prayer, Petition Deputation) का मार्ग अपनाया। **टी० आर० देवगिरिकर** ने गोखले के राजनीतिक विचारो पर प्रकाश डालते हुए बताया कि "शासन तन्त्र के विरुद्ध युद्ध करते समय गोखले ने वैधानिक मार्ग अपनाया। उनका प्रयास यह था कि तथ्यो तथा तर्को को अपनी बात का आधार बनाया जाए और समझा-बुझाकर उन लोगो के विचार बदले जाए जिनका कुछ महत्व है।"[1]

स्वदेशी—किसी भी महान लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक ऐसे मार्ग की आवस्यकता होती है जो लक्ष्य की प्राप्ति की ओर शत प्रतिशत ले जाए और पूर्ण सफलता प्राप्त करने मे सहायक सिद्ध हो। इसी प्रकार बाल गगाधर तिलक, जिनका लक्ष्य स्वराज्य की प्राप्ति था उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वदेशी और बहिष्कार का मार्ग अपनाया। ये दोनो ही मार्ग उनके स्वभावानुकूल थे। यहॉ यह बात प्रासगिक है कि तिलक याचना पर विश्वास नही रखते थे अत उन्होने स्वदेशी और बहिष्कार को एक राजनीतिक अस्त्र के रूप मे प्रयोग किया। उन्होने स्वदेशी के सन्देश को महाराष्ट्र के कोने-कोने तक पहुॅचा दिया तथा राष्ट्रीय स्तर पर इसकी व्यापकता तथा सफलता की सभावनाओ का अनुमान लगाकर अपने सहयोगियो द्वारा इसका सन्देश देश के कोने-कोने तक पहुॅचाने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। यद्यपि स्वदेशी का आरम्भ उदारवादियो ने एक आर्थिक आन्दोलन के रूप मे किया था किन्तु तिलक ने इस आन्दोनल का प्रयोग रजानैतिक चेतना उत्पन्न करने के लिए किया।

तिलक के ही शब्दों मे जो उन्होंने केसरी में लिखा—"हमराा राष्ट्र एक वृक्ष की तरह है जिसका मूल तना स्वराज्य है और स्वदेशी तथा बहिष्कार उसकी शाखाएॅ है।"[2] तिलक ने स्वदेशी से ही स्वराज्य का मार्ग खोजा। तिलक ने स्वदेशी का व्यापक अर्थ लेते हुए इसका प्रयोग शिक्षा, विचारो, और जीवन पद्धति के रूप मे किया। जहॉ एक ओर तिलक के स्वदेशी पर विचार इस

---

1 टी० आर० दवगिरिकर गोपाल कृष्ण गोखले निदशक, प्रकाशन विभाग पुराना सचिवालय दिल्ली 6, 1967, पृ० 116

2 विपिन चन्द्र, अमलेश त्रिपाठी वरूण द स्वतन्त्रता सगाम नशनल बुक टस्ट इण्डिया दिल्ली 1972 पृ० 89

प्रकार थे वही दूसरी ओर गोखले स्वदेशी के अर्थ मे उदारवादी मार्ग के पक्षधर थे। उनकी स्वदेशी की जो धारणा थी वह मनुष्य के हृदय मे देश के प्रति परमोत्कृष्ट अथवा सुन्दर विचार से है। अगर कहा जाय तो गोखले के स्वदेशी पर विचार भावनात्मक रूप लिए हुए हैं।

तिलक के स्वदेशी का यह अर्थ था कि जो पाश्चात्य विचार, पाश्चात्य धर्म एव दर्शन की जो श्रेष्ठता स्थापित करने का जो प्रयत्न चल रहा है वह भारतीय जनमानस से लुप्त कर दे और भारतीयो के मन मस्तिष्क को स्वदेशी बना कर उनमे स्वाधीनता की भावना भर दी जाए। वही गोखले की स्वदेशी की भावना मातृभूमि के लिए ही थी किन्तु अलग विचार और भाव लिए हुए। यह भाव और विचार राजनीतिक रूप न लेकर सामाजिक रूप लिए हुए थे। क्योकि उन्होने कहा मातृभूमि के लिए त्याग ही सर्वोत्तम स्वदेशी भावना है। इसकी वास्तविक अनुभूति से मनुष्य परमानन्द की स्थिति मे पहुच जाता है और भारत को आज इसी अनुभूति की सबसे अधिक आवश्यकता है। स्वदेशी के विचार का प्रभाव यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति, देश की सेवा मे लग जाता है।

तिलक ने जहॉ एक ओर स्वदेशी की भावना जागृत करने के लिए लेखो और भाषणो का सहारा लिया वही दूसरी ओर उन्होने गणेश महोत्सव एव शिवाजी महोत्सव का आयोजन बडे व्यापक पैमाने पर किया। तिलक देश भक्ति को जागृत करने के लिए हिन्दू प्रतीको का सहारा ले रहे थे तथा धर्म की उच्चता को भी स्थापित करना चहाते थे। वही दूसरी ओर गोखले ने स्वदेशी के आदर्श को व्यवहार मे लाने के लिए आवश्यक विचारो की रूप रेखा प्रस्तुत की जो तिलक से भिन्नता लिये हुये थी। **गोखले** ने हथकरघा उद्योग का पुनरूत्थान करने और उसे आधुनिक रूप देने के महत्व पर बहुत जोर दिया ताकि किसानो की अतिरिक्त आय हो सके। क्योकि गोखले के मस्तिष्क मे सदा ही ये विचार रहते थे कि भारतीय जनमानस सामाजिक सुधार के साथ-साथ आर्थिक सुधार भी प्रारम्भ करे। इसी के परिपेक्ष्य मे उन्होने नमक को कर मुक्त करने की मॉग भी रखी थी। गोखले ने इसके लिए किसी प्रकार के धार्मिक प्रतीको का सहारा नही लिया उन्होने गणेश उत्सव, या शिवाजी उत्सव जैसे किसी साधन को स्वदेशी के लिए प्रयोग नही किया।

बहिष्कार— तिलक ने स्वराज्य प्राप्ति के लिए बहिष्कार का भी प्रयोग एक अस्त्र के रूप मे किया। बहिष्कार का मूल उद्देश्य ब्रिटिश सरकार के आर्थिक ढाचे को नुकसान पहुँचाना था। अर्थात आर्थिक हितो पर दबाव डालकर अपनी मागे मनवाने के लिए विवश करना था इसमे इस बात की जनजागृति पैदा की गई कि ब्रिटिश सरकार की व्यवसायिक नीति भारत के आर्थिक विनाश के लिए उत्तरदायी है।

तिलक के बहिष्कार आन्दोनल की मुख्य प्रवृत्ति तो विदेशी वस्तुो के ही विरुद्ध थी, परन्तु इसकी व्यापक व्याख्या मे, इसमे सरकार के साथ सहयोग, सरकारी नौकरियो, प्रतिष्ठानो तथा उपाधियों का बहिष्कार भी शामिल था।

तिलक ने बहिष्कार आन्दोलन को एक राजनीतिक स्वरूप दिया। बहिष्कार आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य स्वदेशी वस्तुओ के उत्पादन को बढावा देना था और दूसरे ब्रिटिश सरकार से अपनी मागे मनवाने के लिए विवश करना था। बहिष्कार आन्दोलन का ब्रिटिश व्यापार पर आशानुकुल फल प्राप्त हुआ। इसका असर इगलिशमैन जैसे मुख्य पत्र के समाचार से जाना जा सकात है। ''बहुत सी प्रमुख मारवाडी फर्मो का व्यवसाय नष्ट हो गया है और यूरोपीय वस्तुओ का आयात करने वाली कई बडी-बडी कम्पनियो को या तो अपनी शाखाए बन्द कर देनी पडी है, या थोडे से व्यवसाय से ही सन्तुष्ट होना पड रहा है। गोदामो मे माल जमा होता जा रहा है दरअसल अब समय आ गया है जब बहिष्कार से व्यापार को कितनी हानि हुयी यह स्पष्ट कर लिया जाए। बहिष्कार करने वालो को प्रोत्साहित करने का कोई प्रश्न ही नही क्योंकि उन्हे इसकी आवश्यकता नही, आवश्यकता इस बात की है कि ब्रिटिश जनता और भारत सरकार को इस तथ्य के प्रति जागरूक कर दिया जाए कि बहिष्कार के रूप मे ब्रिटिश राज्य के शत्रुओ के हाथ एक ऐसा हथियार आ गया है कि इस देश मे ब्रिटिश हितो को गहरी चोट पहुँचाने मे कारगर है बहिष्कार के प्रति ढिलाई या सहमति की गई तो ये

किसी सशस्त्र क्रान्ति से भी अधिक खतरनाक साबित होगा जब भारत के साथ स्थापित ब्रिटेन का सम्बन्ध निश्चय ही टूट जाएगा।"[1]

गोखले बहिष्कार के प्रति अपना भिन्न दृष्टिकोण रखते थे। बहिष्कार को एक ऐसा अस्त्र मानते थे जिसका प्रयोग और कोई चारा बाकी न रहने पर ही किया जाना चाहिए। शासितो की शिकायतो की ओर प्रशासन का ध्यान आकृष्ट करने का ये एक उपयोगी साधन था। गोखले इसे विधि सम्मन हथियार मानते थे। इसे काम में लाने से पहले यह आवश्यक था कि सभी ओर किसी सामान्य सकट का अनुभव किया जाए और सभी व्यक्तिगत मतभेद दूर कर दिये जाए।[2] अर्थात् गोखले बहिष्कार का प्रयोग तभी करने के पक्षधर थे जब सभी विधि सम्मत और सवैधानिक तरीके के मार्ग बन्द हो चुके हो। तथा उन लेख, ज्ञापन या प्रार्थना पत्र देने से काम न चल रहा हो और न्याय की उम्मीद भी न रह गई हो। गोखले के बहिष्कार मे कही यह भावना निहित थी कि अग्रेजो के आर्थिक हितो को नष्ट करने के अवसरो से बचा जाय तथा सहमति पूर्वक लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

शिक्षा— किसी भी देश मे राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रगति तभी हो सकती है जब वहॉ का जनमानस शिक्षित हो। किसी भी देश के पिछडने का एक प्रमुख तत्व जनमत मे व्याप्त अशिक्षा ही होता है। अशिक्षित जनता न तो अपने राजनीतिक अधिकारो के प्रति जागरूक होती है और न ही कर्त्तव्यो के प्रति। अत· शिक्षा ही वह सशक्त माध्यम है जिसकी सहायता से राष्ट्र सेवा और जनसेवा की जा सकती है। इसलिए तिलक और गोखले, सर्वप्रथम अपने देश के लोगो को ज्ञान का प्रकाश प्रदान करना चाहते थे। जिससे सभी प्रकार के अन्धकार दूर हो सके।

---

1 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1969 पृ० 110 111

2 टी० आर० दवणिरकर गोपाल कृष्ण गोखले निदेशक प्रकाशन विभाग पुराना सचिवालय दिल्ली 6 1967 पृ० 160

तिलक और गोखले दोनो ही राष्ट्रसेवा के लिए शिक्षा को एक प्रमुख अस्त्र मानते थे। और दोनो ही अपने-अपने तरीको के इस्तेमाल से शिक्षा का प्रचार प्रसार कर रहे थे यह अलग बात है कि दोनो के विचार इस मुद्दे पर भी भिन्न थे।

तिलक शिक्षा के सम्बन्ध मे नरमदलीय नेताओ के विचारो से सन्तुष्ट नही थे। नरम दल भारत मे प्रचलित शिक्षा प्रणाली के लिए अग्रेजो के प्रति कृतज्ञ था। जबकि तिलक का यह मानना था कि यह शिक्षा प्रणाली छात्रो को देश की सही स्थिति का ज्ञान नही करा रही है। तिलक वास्तविक शिक्षा उसी को मानते थे जो रोजगार उन्मुख हो तथा उसमे देश के सच्चे नागरिक गुणो का सचार करने की क्षमता हो और जो पूर्वजो के ज्ञान का अनुभव दे।[1] वही दूसरी ओर गोखले ब्रिटिश शासन के कल्याणकारी स्वरूप मे पूर्ण आस्था सखते ते। उनकी धारणा थी कि ब्रिटिश से सम्पर्क बनाए रखने से भारतीयो की बौद्धिक प्रतिभा चमकेगी, दृष्टिकोण विकसित होगा, और भावी भारत के निर्माण का मार्ग प्रशस्त होगा। गोखले ब्रिटिश सम्पर्क को इसलिए भी भारत के लिए वरदान स्वरूप मानते थे कि उसके कारण भारत मे पाश्चात्य शिक्षा का प्रवेश हुआ। पाश्चात्य शिक्षा गोखले की दृष्टि मे भारत के लिए एक मुक्ति दायिनी शक्ति थी, और इसका अधिकाधिक विस्तार होना चाहिए था।

तिलक राष्ट्रीय शिक्षा के पक्षधर थे उन्होने राष्ट्रीय शिक्षा का एक ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया जो व्यावहारिक था, और देशवासियो से सर्वागीर्ण विकास मे सहायक था। राष्ट्रीय शिक्षा के सन्दर्भ मे तिलक के मुख्य विचार बिन्दु मे सबसे प्रमुख उद्योग एव प्राविधिक शिक्षा, शैक्षणिक पाठ्यक्रम का अग बने इसके पीछे तिलक की यह भावना कार्य कर रही थी कि इसके बिना देशवासियो को इसना ज्ञान कभी नही हो पायेगा कि आयात-निर्यात की शोषण नीति से विदेशी हुकूमत भारत को दारिद्र बना रही है तथा पाश्चात्य शिक्षा अग्रेजी शासन के लिए 'बाबू' वर्ग पैदा करने का एक यन्त्र हो गयी

---

1 रामगोपाल लोकमान्य तिलक, पृ० 114

है। तिलक की शिक्षा प्रणाली की अन्य मुख्य बाते जिसमे धार्मिक शिक्षा पर बल, स्वतन्त्र देशो जैसी शिक्षा, प्रणाली पर बल, मातृभाषा को प्रधानता 'एक लिपि एक राष्ट्रभाषा' का समर्थन थी। तिलक राष्ट्रीय एकता और भाषाभेद से विभाजित देश की एकता के लिए एक राष्ट्रभाषा को महत्वपूर्ण तत्व मानते थे वास्तव मे तिलक पहले कांग्रेसी नेता थे जिन्होने देवनागिरी लिपि मे लिखी हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का सुझाव दिया।[1]

जैसा कि सर्वविदित है गोखले सामाजिक सुधार के पक्षधर थे अत: वो देश की तात्कालीन दशा मे पाश्चात्य शिक्षा का सबसे बडा कार्य भारतीय मानस को पुराने जीर्णशीर्ण विचारो की दासता से मुक्त करना और उसमे पाश्चात्य जीवन चरित्र और चिन्तन के सर्वोत्तम कृत्वो को अनुप्राणित करना था। क्योकि उनका यह मानना था कि हिन्दू धर्म मे व्याप्त कुरीतिया एव अन्ध विश्वास तभी समाप्त होगे जब पाश्चात्य की आधुनिक विचारो की शिक्षा का ज्ञान देशवासियो को होगा। इसलिए उन्होंने कहा कि ''यदि भारतीय पाश्चात्य शिक्षा का बहिष्कार करेंगे तो यह गम्भीर भूल होगी।''

राष्ट्रवाद, पुनरूत्थान वाद तथा हिन्दू धर्म—तिलक कभी भी यह स्वीकार न कर पाये कि अग्रेजी शासन हमारे लिए वरदान स्वरूप है न ही कभी उन्होंने यह स्वीकार किया कि ब्रिटिश शासन हमारे लिए दुनिया से जोडने वाला या विकास का सेतु है। उनके विचारो से तो अग्रेजी साम्राज्यवाद भारतीय विकास के लिए एक गहरी खाई के समान था। इसलिए तिलक का राष्ट्रवाद अशत: पुनरूत्थानात्मक अभिविन्यास था।[2]

तिलक का अपनी प्राचीन परम्पाओ धर्म एव ग्रन्थो पर अटल विश्वास था। वे राष्ट्र मे आध्यात्मिक शक्ति और नैतिक उत्साह भरने के लिए वेद और गीता के वर्चस्वी सन्देशो का प्रचार करना चाहते

1 राम गोपाल लोकमान्य तिलक, पृ० 115

2 द ओरियन पृ० 464

थे। इसलिए उन्होने शिवाजी और गणपति महोत्सव को प्रोत्साहित किया। क्योकि वे सम सामाजिक घटनाो और आन्दोलनो को ऐतिहासिक परमपराओ से जोडते थे।[1] व्यक्ति के रूप मे हिन्दू धर्म और सस्कृति पर उन्हे पूर्ण गर्व या राजनीतिक नेता के रूप मे हिन्दू जनता के वैधानिक हितो को वे सुरक्षित रखना चाहते थे और वे कायरता और समपर्ण को स्वीकृति नही दे सकते थे। परन्तु इससे यह अनुमान लगाया जाना अनुचित होगा कि वे मुसलमान विरोधी थे।

तिलक के विपरीत गोखले अग्रेजो के आगमन को ईश्वरीय वरदान मानते ते इसके मानने के पीछे उनका यह स्वार्थ कार्य कर रहा था कि भारतीयो की ऑखे पाश्चात्य शिक्षा एव नयी-नयी खोजो से खुल जाएगी। तथा वे अपने आप को एक नयी दुनिया के अनुरूप बना लेगे। अत: गोखले ने हरदम यह माना कि हमे पाश्चात्य धर्म और दर्शन से अपने को परिचित कराना चाहिए तथा जो शिक्षाएँ और तथ्य हमारी परिस्थितियों के अनुकूल हो उन्हे ग्रहण करे हम कह सकते है कि गोखले का हिन्दुत्व पुनरूत्थान अपनी ऐतिहासकि परम्परा के साथ-साथ नवीन पाश्चात्य विचारो को भी ग्रहण करने मे भी विश्वास रखते थे। गोखले ने राजनीति का आध्यात्मीकरण किया। राजनीति का आध्यात्मीकरण का अर्थ नैतिकता तथा उच्च उद्देश्यो को लेकर, सार्वजनिक जीवन में शुचिता' लाना है। यही राजनीति का अध्यात्मीकरण आगे महात्मा गाधी के लिए एक प्रेरक तत्व बन गया।[2] और इसलिए गाधी जी ने गोखले को अपना राजनीतिक गुरू स्वीकार किया।

इस प्रकार राजनीति में तिलक उग्र विचारो के थे, जिस पर उन्हे गर्व था, गोखले राजनीति मे उदार विचारो के थे। वह राजनीति का आध्यात्मीकरण करना चाहते थे। उनका कहना था कि ब्रिटिश सर्म्पक नियत का विधान है और भारत के हित मे है। तिलक का विचार था कि राजनीति दुनियादार लोगो का एक खेल है। ये भारत पर ब्रिटिश विजय को न्यायोचित ठहराने के लिए इस

---

1 वी० पी० वर्मा लोकमान्य तिलक जीवन और दर्शन लक्ष्मीनारायण अगवाल प्रकाशक आगरा 3, 1982 पृ० 448

2 आर० पी० पराँजपे गोपाल कृष्ण गाखले आर्य भूषण प्रस पूना 1915 पृ० 85

प्रकार की देवी इच्छा और नियति पर विश्वास करने वाले नरम दल वालो की तीव्र भर्त्सना करते थे। गोखले अनुनय विनयपूर्वक समझाने-बुझाने, अपील करने आर वधानक ढग से विरोध प्रकट करने मे विश्वास करते थे। तिलक आत्मसम्मान, आत्मनिर्भता ओर शक्ति पेदा करने की कोशिश करते थे।[1]

सामाजिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

बाल गगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले जिस युग मे सक्रिय थे वह युग भारतीय इतिहास मे एक काले वृष्ठ के रूप मे अकित था। इस समय समाज, विकृत धर्म से प्रेरित था। अर्थात् कुछ पाखण्डियो द्वारा अपने हित मे समाज पर धर्म का मुलम्मा चढाकर अनेको अन्धविश्वास और कुरीतियो का पालन करने के लिए समाज को बाध्य करते थे। इन कुरीतियो के चलते समाज इतना विभक्त था कि उनके मध्य एकता उत्पन्न करना बहुत ही कठिनाई भरा कार्य था। इसी सामाजिक फूट के चलते ही औपनिवेशिक शक्तियॉ लाभ उठा रही थी। क्योकि इनका सिद्धान्त ही था कि "फूट डालो और राज्य करो।" वे यह कभी नही चहते ते कि भारतीय समाज एकताबद्ध हो क्योकि वे जिस आधार पर अपने शासन की नैतिकता को सिद्ध करते थे वो आधार ही ध्वस्त हो जाता। क्योकि वे तो असम्य भारतीय समाज को सभ्य करने का ठेका लेकर राज्य कर रहे थे। अब आवश्यकता इस बात की थी कि पहले समाज को सगठित किया जाय। अत· इस बात को ध्यान मे रखकर ही बाल गगाधर तिलक तथा गोपाल कृष्ण गोखले दोनो ने भारतीय समाज को शुद्ध एव आधुनिक करने का बीडा उठाया क्योकि दोनो का ही मानना था कि समाज की उन्नति से राष्ट्र की उन्नति सम्भव है। यह अलग बात हे कि दोनो ने ही भिन्न मार्गो का अनुसरण किया। परन्तु लक्ष्य की समानता मे, जो स्वराज्य था पर कोई शका नही थी।

---

1 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग सूचना आर प्रसारण मन्त्रालय भारत सरकार नई दिल्ली 1969 पृ० 215

''जो लोग समाज के नेता बनते है उन्हे चाहिए कि वे स्वय उदाहरण उपस्थित करे यदि कोई सुधार जनता पर ऊपर से लादा जायेगा तो वह सफल नही हो सकता।''[1] इसी एक वक्तव्य से तिलक के सामाजिक सुधार आन्दोलन जो कि उनका सामाजिक सुधार दर्शन कहलाता था के मार्ग को समझा जा सकता है। तिलक भी सामाजिक सुधार चाहते थे लेकिन उनका मार्ग तात्कालीन प्रभाव से भिन्न था। जहाँ तत्कालीन नेता सरकार से मिलकर सुधार कानून बताने और सुधार करने के पक्षधर थे वहाँ तिलक सामाजिक सुधार को सरकार के माध्यम से लादना उपयुक्त नही समझते थे। उनका मानना था कि सामाजिक सुधार शनैः-शनैः और जन जागृति से आना चाहिए क्योकि समाज को पन्थों, सम्प्रदायो, गुटो आदि मे विभक्त होने से बचाने का यही एक सर्वोत्तम मार्ग है। जहाँ यह बात प्रासागिक है कि तिलक कोई भी सुधार हिन्दू सस्कृति के परम्परागत नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो के परिपेक्ष्य मे ही चाहते थे। तथा इस सिद्धान्त को ठेस पहुँचे यह उन्हे स्वीकार नहीं था। यहाँ यह बात अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि समकालीन अधिकाश नेताओ के विपरीत तिलक की मान्यता थी कि सामाजिक सुधारो से पहले देश को राजनीतिक उन्नति, राजनीतिक स्वतत्रता और राष्ट्रीय जागरण की आवश्यकता थी। यदि देश राजनीतिक क्षेत्र मे आगे बढ जाता है तो समाज सुधारे के क्षेत्र मे वह स्वत. ही आगे बढ जायेगा। तिलक समाज सुधार से पहले राजनीतिक सुधार पर जोर देते थे, वो कभी भी रूढिवादी नही थे वरन् अस्वस्थ्य पुरानी परम्पराओ को बदलने के पक्ष मे थे।[2] तिलक समाज सुधार के कार्य मे अत्यधिक शक्ति व्यय न करके पहले सम्पूर्ण शक्ति राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए सचित रखना चाहते थे। क्योकि उनको अहसास था कि ब्रिटिश शासक राजनीतिक लक्ष्य की प्राप्ति से भटकाने के लिए इस बात के लिए उकसाते थे कि पहले सामाजिक सुधार किया जाय।

---

1 रामगोपाल लोकमान्य तिलक, पृ० 37

2 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली, 1969, पृ० 27

तिलक ने वर्मा और श्रीलका का उदाहरण देकर यह समझाने का प्रयत्न किया कि इन देशों की सामाजिक दशाएँ भारतीय समाज से बेहतर है परन्तु राजनीतिक सत्ता न होने के कारण उनकी दशा भी हम भारतीय से भिन्न नही है।[1]

तिलक का यह सोचना था कि यह जो सामाजिक आन्दोलन सरकार की सहायता से चलाया जायेगा यह पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होगा और हम सुधार अपनी सास्कृतिक विरासत के अनुसार ही करना चाहते है।

जहाँ एक ओर समाज सुधार मे तिलक की सक्रिय भागीदारी थी। वही दूसरी ओर गोखले ने समाज सुधार आन्दोलन में तिलक के समान सक्रिय भाग नही लिया लेकिन इससे यह नही समझा जा सकता कि गोखले समाज सुधारक नही थे।

गोखले का समाज सुधार कार्यक्रम सरकार के साथ मिलकर करना था। गोखले के समाज सुधार के कार्यक्रम में यदि पाश्चात्य जगत की जो अच्छाइयाँ है वह यदि शामिल हो जाय तो इसको वह गलत नही मानते थे अपितु वो तो यह चाहते ही थे कि यूरोपीय पुर्नजागरण का भारतीय समाज भी लाभ उठा सके। यदि गोखले के समाज सुधार के कार्यक्रम को देखा जाय तो उसमे जो सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है, वह है भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था से उत्पन्न जातिवाद की बुराई। वे अस्पृश्यता और जातिवाद के घोर विरोधी थे।[2] वे भारत के दलित जातियो के प्रबल समर्थक थे। यहाँ यह बात बताना भी प्रासगिक है कि उनके स्वराज्य का मार्ग समाजिक सुधार के कार्यक्रमो से होकर गुजरता था अर्थात् राजनीतिक चेतना के लिए सामाजिक सुधार आवश्यक था।

---

1 राम गापाल लोकमान्य तिलक, पृ० 100

2 एम० ए० वोतपर्ट तिलक एण्ड गोखले, रिव्यूत्यूशन एण्ड रिफार्म इन ट मकिग ऑफ मार्डन इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिर्सिटी प्रेस, 1991, पृ० 305

तिलक ने अपने सामाजिक सुधार कार्यक्रम मे सुधार के सभी महत्वपूर्ण पहलुओ को स्पर्श किया। उनका जातिपाति के भेदभावो और अस्पृश्यता मे विश्वास नहीं था। गणपति उत्सवो मे वे अछूतो को सवर्ण हिन्दूओ के समान स्थान देते थे। अन्य जातियो के साथ बैठकर भोजन करने मे उन्हे कोई हिचक नही थी। लोकमान्य तिलक बाल विवाह के विरोधी और विधवा विवाह के समर्थक थे। मद्यपान, दहेज का चलन आदि सामाजिक कुरीतियो से उन्हे नफरत थी।[1]

तिलक नेताओ को यह आह्वाहन करते ते कि पहले खुद मे सुधार लाओ तभी तुम आदर्श उपस्थित कर सकोगे। **तिलक ने स्पष्ट रूप से कहा—**"आज समाज सुधार की बडी चर्चा है किन्तु हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि हमे जनता को सुधारना है और यदि हम अपने को जनसमूह के अलग कर लेगे, तो कोई भी सुधार असम्भव होगा। इसका सबसे ज्वलन्त उदाहरण यह है कि यद्यपि विधवा विवाह आवश्यक है फिर भी बहुत से समाज सुधारक अपने परिवारो मे इस पर अमल करने को तैयार नही है। अत: मेरे विचार से हर एक आदमी पहले अपने को सुधार कर दूसरोके सामने एक उदाहरण रखे और उन्हे समाज सुधार की प्रेरणा प्रदान करे, न कि केवल उपदेश भर देता रहे। सुधार का उपदेश देने वाले लोग पहले अपने उपदेशो का पालन स्वय करे।"[2]

जहा तक गोखले का प्रश्न है उनपे एक यह भी आरोप था कि पहली पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह कर लेने का बोझ उनके अर्न्तमन मे इतना अधिक रहा कि वो समाज सुधार कार्यक्रम का नेतृत्व करने की मन:स्थित मे नही रह गये। हो सकता है यह बात कुछ हद तक सत्य हो क्योकि उनकी धारणा थी कि यदि किसी कार्य पर स्वय अमल न किया जाय तो उसके लिए दूसरो को सलाह

---

1 वी० पी० वर्मा लोकमान्य तिलक जीवन और दर्शन, लक्ष्मीनारायण अगवाल प्रकाशक आगरा 3, 1982, पृ० 39

2 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली 1969 पृ० 30

देना उचित नही है।[1] यदि देखा जाय तो गोखले द्वारा जो सामाजिक सुधार किया गया है वह शिक्षा के माध्यम से जन जागृति करके ही है। गोखले ने एक शिक्षक के रूप मे अपना जीवन प्रारम्भ किया था अत वो भारत की शिक्षा प्रणाली से पूर्ण रूप से परिचित थे। उनका प्रथम सामाजिक सुधार प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह बालक हो या बालिका अनिवार्य एव नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा इसी के चतले 1907 के बजट भाषण मे उन्होने नि:शुल्क शिक्षा की माग रखी तथा 1911 मे भारतीय लेजिस्लेटिव कौसिल मे शिक्षा से सम्बन्धित एक विधेयक प्रस्तुत किया। दुर्भाग्य से यह विधेयक पास तो नही हो पाया लेकिन गोखले ने प्रयास तो किया तथा अपनी आकाक्षा को सरकार एव जनता के सामने प्रकट कर दिया। दिसम्बर 1903 मे जब विश्वविद्यालय विधेयक प्रस्तुत किया गया जिसके अन्तर्गत सभी विश्व विद्यालय सरकारी नियन्त्रण के अधीन हो जायेगे तब गोखले की एक शिक्षाविद् आत्मा उठ खडी हुयी और इस विधेयक का विरोध किया।[2]

गोखले क्योकि इस विचारधारा के थे कि शिक्षा के विस्तार द्वारा श्रम से उत्पन्न लाभ का उचित वितरण किया जा सकता है श्रम का बटवारा सामाजिक शाति एव सामान्य समृद्धि का द्योतक है। गोखले पाश्चात्य शिक्षा के प्रबल समर्थक थे, पाश्चात्य शिक्षा के विस्तार पर अपना विचार प्रस्तुत करते हुये उन्होने कहा था—"मेरे विचार से भारत की वर्तमान अवस्था मे पाश्चात्य शिक्षा का सबसे बडा कार्य विद्या को प्रोत्साहन देना उतना नही है जितना कि भारतीय मस्तिष्क को प्राचीन विचारो की दास्ता से मुक्ति दिलाना तथा पश्चिम के जीवन तथा विचार और चरित्र मे सर्वोत्तम तत्वो को आत्मसात करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु न केवल उच्चतम वरन् सभी पाश्चात्य शिक्षा उपयोगी है।"[3] गोखले को यह अच्छी तरह ज्ञात था कि शिक्षा के विस्तार मात्र से भारत अपनी समस्याओं

---

1 टी आर देवगिरिकर गोपाल कृष्ण गोखले, प्रकाशन विभाग नइ दिल्ली ०, ८67 पृ 25 26।

2 टी० वी० पर्वते गोपाल कृष्ण गोखले, नवजीवन पब्लिशिग हाउस अहमदाबाद पृ० 170

3 स्पीचेज ऑफ गोपाल कृष्ण गोखले नटेसन मद्रास 1920 पृ० 3०1

तथा कठिनाइयो को हल नही कर सकता था। जीवन मे सघर्ष का ही रहता केवल शिक्षा से ही निर्धनता का अन्त नहीं हो सकता। किन्तु उचित शिक्षा द्वारा व्यक्तित्वो मे जिस नवीन आत्मनिष्ठा का विकास होगा उससे वो आर्थिक व राजनीतिक शोषण का प्रतिकार कर सकेंगे, और मानवीय गरिमा के सरक्षण का उचित वातावरण बन सकेगा।[1]

गोखले का यह विश्वास निरर्थक साबित नही हुआ तथा उनके द्वारा भारत मे पाश्चात्य शिक्षा का जो प्रसार किया गया उससे दीक्षित होकर लोगो मे एक नयी राजनीतिक चेतना विकसित हुयी और वे जानने लगे कि समानता क्या है? स्वतन्त्रता क्या है? हमारे क्या अधिकार है? हम इन अधिकारों की माग किससे व कैसे करे जिससे सामाजिक और राजनीतिक न्याय मिल सके तथा धीरे-धीरे स्वराज्य की प्राप्ति हो जाय।

बाल गंगाधर तिलक तथा गोपाल कृष्ण गोखले दोनो ने अपनी-अपनी भूमिका बडी निष्ठा तथा ईमानदारी से निभाई। जहा तक इनकी तुलना का प्रश्न है वो तो बडा असम्भव सा ही कार्य है। क्योकि जो अतुलनीय है उसकी तुलना कौन कर सकता है। जब दो प्रकाण्ड विद्वान् जिनके विषय मे यह प्रचलित रहता है कि वे एक दूसरे के विरोधी है तो यह सिर्फ उनके एक ही पक्ष को जानना है क्योंकि कोई भी महान विभूति एक दूसरे के विरोधी नहीं होती है और जो मतभेद सामने दृष्टिगोचर होता है वह सिर्फ वैचारिक भिन्नता के कारण। लेकिन ऐसे व्यक्ति एक दूसरे के परम सहयोगी एवं परम प्रशंसक होते हैं और दोनो एक दूसरे के लक्ष्य प्राप्ति मे सहायक होते हैं इसी प्रकार तिलक और गोखले का मतभेद राजनीतिक सकटो को लेकर उतना नही था जितना कि सैद्धान्तिक विचारों को लेकर, वे दोनो ही विभिन्न दायरो मे चक्कर काटते प्रतीत होते थे। लेकिन वास्तव मे उनकी भमिकाए एक दूसरे की पूरक थी। दोनो परस्पर एक दूसरे के हाथ मजबूत करते थे।''[2]

---

1 वही, पृ० 49-50

2 एन० जी० जाग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली-

तिलक और गोखले दोनो का चोली दामन का साथ था एक के बिना दूसरा अधूरा था, और दूसरे के बिना पहला। दोनो एक दूसरे के प्रति किस प्रकार का भाव रखते थे वो इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि व्यक्तिगत रूप से गोखले तिलक की बुराई किसी को नही करने देते थे वे कहते थे कि ''तिलक मे कमजोरिया हो सकती है। मुझे स्वय बहुत सी बातो को लेकर उनसे निबटना है। लेकिन तुम कौन हो? तुम उनके पासग भी नही हो। वह एक महान व्यक्ति है, उनकी स्वाभाविक प्रतिभा और सामर्थ्य अब्बल दर्जे की है। उन्होने देश की सेवा के लिए ही अपने उन गुणो को और अधिक निखारा है। मै भले ही उनके तरीको से सहमत न होऊ, लेकिन मुझे उनकी नीयत पर कभी कोई सन्देह नही होता। मेरा विश्वास करो, उनके बराबर किसी ने भी देश के लिए अपना धन आर्पित नही किया है, उनके बराबर सरकार के शक्तिशाली विरोध का सामना किसी ने भी नही किया और उनके बराबर हिम्मत तथा धैर्य का परिचय भी किसी ने नही दिया है। अपने सघर्षो के दौरान कई बार उन्होने अपना सब कुछ खो दिया और फिर अपने अदम्य पुरूपार्थ से अपनी स्थिति ज्यो की त्यों कर ली। और हर बार अपनी अदम्य इच्छा शक्ति से उसे फिर से इकट्ठा कर लिया।''[1]

19 फरवरी 1915 को जब गोखले की मृत्यु हुयी तो तिलक ने बडा गहरा आघात सहा, तथा अपने उद्‌गार केसरी में प्रकट करते हुए लिखा था, ''लोग उनके नानाविध गुणों- जैसे प्रखर बुद्धि, कठोर अध्यवसाय और नम्रता सरलता के लिए उनकी प्रशसा करते है। मेरी राय मे तो ये उनके बाहरी गुण है, जिनके बारे में मतभेद भी हो सकता है। लेकिन उस आभ्यतरिक निर्झर के बारे मे कोई मतभेद नही हो सकता, जिससे इन बाहरी गुणो के विकास मे मदद मिली। उनका मुख्य जीवन प्रवाह देश के लिए उनका सर्वस्व समपर्ण ही था। जो लोग जीवन के सुखों का उपभोग कर लेने

6, 1969 पृ० 221

1 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मन्त्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, 1969, पृ० 221

और काफी धन दौलत इकट्ठा कर लेने के बाद सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र मे पदार्पण करते हैं, उन्हे कोई भी ज्यादा महत्व नही देता, लेकिन जब किसी का ऐसे आदमी से परिचय होता है, जिसने किसी महान उद्देश्य को सामने रखकर अपने जीवन के प्रारम्भ मे ही दुनिया के प्रलोभनो से मुंह मोड लिया हो और आपत्काल में भी अपने निश्चय पर अडिग रहा हो, तब उसके लिए हमारे हृदय मे आदर की भावना जग जाती है। वास्तव मे वह व्यक्ति परम भाग्यवान होता है और गोखले ऐसे ही व्यक्ति थे।''[1]

राधाकृष्णन ने तिलक के बारे में विचार व्यक्त करते हुए कहा कि ''जिस राजनीतिक क्षेत्र मे तिलक ने अपने जीवन का अधिकाश भाग लगा दिया था, वस्तुत: उसके लिए वह नही बने थे। वह जन्मजात विद्वान थे और सिर्फ जरूरतवश ही राजनीतिज्ञ थे।''[2]

भारतीय राजनीति की इन प्रमुख दो विचारधारायें जो तिलक और गोखले का अपना अपना मार्ग था, समान लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अपनाया गया था। तिलक और गेखले एक दूसरे के पूरक थे **महात्मा गंधी** के शब्दों मे ही समझा जा सकता है। तिलक जहॉ हिमालय के सदृश्य उच्च तथा अगम्य थे वहॉ गोखले गगा की निर्मल धारा के सदृश्य थे जिसमे आसानी से गोता लगाया जा सकता था। **डॉ० पट्टाभि सीता रमैया** ने इन दोनों के विचारो का तुलनात्मक अध्ययन अत्यधिक स्पष्ट और सुन्दर भाषा मे प्रस्तुत किया है। वे लिखते है : ''गोखले नरम थे तथा तिलक गरम, गोखले चाहते थे कि तत्कालीन विधान मे सुधार कर दिय जाय परन्तु तिलक सम्पूर्ण विधान का ही फिर से ही निर्माण करना चाहते थे। गोखले को नौकरशाही के साथ कार्य करना पडता था तो तिलक की नौकरशाही से भिडन्त रहती थी, गोखले कहते थे जहा सम्भव हो सहयोग करो जहॉ आवश्यक हो विरोध करो,

---

1 एन० जी० जोग लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली, 1969 , पृ० 220

2 एन० जी० जोग वही, पृ० 212

लेकिन तिलक का झुकाव अडगा नीति की ओर था, गोखले जहॉ शासन तथा उसके सुधार की ओर मुख्य ध्यान देते थे वहॉ तिलक राष्ट्र तथा उसके निर्माण को सबमे मुख्य ममझते थे। गोखले का आदर्श था प्रेम तथा सेवा, पर तिलक का आदर्श था सेवा तथा कष्ट सहना। गोखले विदेशियो के जीतने के उपाय करते थे तिलक उन्हें हराना चाहते थे। गोखले दूसरो की सहायता पर विश्वास करते थे तिलक स्वालम्बन पर। गोखले उच्च वर्ग तथा बुद्धिवादियो की ओर देखते थे परन्तु तिलक सर्वसाधारण तथा करोडो की ओर, गेखले का अखाडा था कौसिल भवन तो तिलक की अदालत थी, गाव की चौपाल, गोखले अग्रेजी मे लिखते थे तिलक मराठी मे, गोखले का उद्देश्य था स्वशासन जिसे योग्य लोग अपने को अग्रेजो की कसौटी पर कसकर प्राप्त करे। परन्तु तिलक का उद्देश्य था स्वराज्य जो कि प्रत्येक भारतवासी का जन्म सिद्ध अधिकार है। तथा जिसे वह विदेशो की सहायता या वादा की परवाह न करते हुए प्राप्त करना चाहते थे। गोखले अपने समय केसाथ उपयुक्त थे तिलक अपने समय से काफी आगे।''[1]

इस प्रकार हम कह सकते है कि पट्टाभि सीता रमैय्या के उपयुक्त विचार अपने आप में ही तिलक एव गोखले के व्यक्तित्व के विषय मे पूर्ण परिचय है। इन विचारो की एक-एक पक्ति तिलक एव गोखले के व्यक्तित्व, कृतित्व, सामाजिक एव राजनीतिक दर्शन का दर्पण है।

---

1 पट्टाभि सीता रमेय्या हिस्ट्री ऑफ नेशनल काग्रेस भाग 1 (1885 1835) पद्मा पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई, 1935, पृ० 166

निष्कर्ष एवं प्रासांगिकता

बाल गगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक एव सामाजिक सामाजिक विचारो के तुलनात्मक अध्ययन विषय पर शोध के अतिम पडाव मे, हम इस समस्या से ग्रसित हो गये है, कि इन दोनो महान विभूतियो के विषय मे, इनके कार्यो, विचारो और सिद्धान्तो के सन्दर्भ मे क्या निष्कर्ष दे, क्योंकि महान विभूतियो के सन्दर्भ में निष्कर्ष देना बडा ही कठिनाई भरा कार्य होता है क्योकि इनके विचारो की सजीवता सदा बनी रहती है, तथा हर युग एव काल मे इनके जीवन का दर्शन नये-नये रूप मे प्रकट होते रहते है। ये गगा की पवित्र धारा के समान सदा ही प्रवाहित होते रहते है तथा सारी गन्दगी को अपने साथ बहा कर पवित्र कर जाते है और नई प्रेरणादायक स्वच्छता देते जाते किन्तु हमे निष्कर्ष तो लिखना ही है ईश्वर ही हमे निष्कर्ष लिखने की प्रेरणा प्रदान करेगा। निष्कर्ष तक पहुँचने के पूर्व हमे एक दृष्टि इनके योगदानों पर डालनी होगी तथा आज के समय में इनके सिद्धान्तो की प्रासगिकता को भी समझना होगा।

बाल गंगाधर तिलक का योगदान—तिलक का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होने राजनीतिक को जो उस समय तक अमीर तबके के लोगो के मनबहलाव का साधन मात्र थी, जब उन्होने इसे छोड दिया, तब वह जन साधारण की चीज बन गई। **1896 में ही तिलक ने लिखा था**—''शिक्षित वर्ग वालो की जो यह धारणा है कि वे आम जनता से भिन्न और अलग है, उससे ज्यादा बेवकूफी की बात कुछ और नही हो सकती। उन्हे यह समझना चाहिये कि वे समस्त भारतीय जनता के ही एक अग है अत: जनता की मुक्ति पर ही उनकी मुक्ति निर्भर करती है।''

तिलक ने जनता को यह महसूस कराया कि अनुशासन, एकता और कठिन प्रयास के बिना कुछ भी प्राप्त नही किया जा सकता। उन्होने इस नारे को जन्म ही नही दिया था कि **''स्वराज्य मेरा जन्म**

सिद्ध अधिकार है, जिसे मैं लेकर ही रहूँगा।'' प्रयुक्त इसमे निहित भावना को साकार करने के लिए जीवन पर्यन्त महान त्याग और सघर्ष भी किया था, जिस बीच देश की खातिर उन्हे सरकारी मुकदमो का मुकाबला करना पडा और जेल भी जाना पडा, दरअसल वही पहले व्यक्ति थे, जिन्होने राष्ट्रीय हितो के लिए देश की जनता को जागृत करके सुसगठित किया और उसे जानदार बनाया। वह एक विद्वान और विचारक थे—एक ऐसे दार्शनिक थे जिसकी वास्तविकता मे पैठ थी। ''गीता रहस्य'' पुस्तक उनकी विद्धता का स्मारक सिद्ध हुयी। लेकिन उन्होने केवल ''गीता'' की व्याख्या ही नही की बल्कि उसे अपने जीवन मे उतारा भी। वह एक ऐसे स्थितप्रज्ञ थे, जिसे परम सन्तुलन प्राप्त था।

सामाजिक विज्ञानो और तत्व मीमासा की समस्याओ के प्रति तिलक का दृष्टिकोण व्यापक और पूर्ण था। वे भारतीय राजनीतिक आन्दोलन और विचारो के मूल को देश की धार्मिक और ऐतिहासिक परम्पराओ मे स्थापित करना चाहते थे। जहाँ नरमदल वाले नेता **बर्क, मिल, ग्लैडस्टोन, स्पेन्सर** और **मार्ले का उद्धरण** दिया करते थे, वहाँ तिलक महाभारत, 'रामदास कृत दास बोध'' और 'भर्तहरि'' के ''नीतिशतक'' का उद्धरण देते थे। उन्होने हिन्दुओ के प्रिय देवता गणेश की सार्वजनिक पूजा चलाई। परन्तु इसका सामाजिक और सास्कृतिक उद्देश्य भी था इस अवसर पर अस्पृश्य जातिया भी भाग लेती थी, इससे हिन्दू सगठन दृढ होता था, शिवाजी उत्सव के तत्वावधान मे मराठा गौरव को पुर्नजीवन मिला क्योकि शिवाजी को अन्याय अत्याचार और राजनीतिक शोषण के विरुद्ध युद्धकर्ता के स्थायी प्रतीक के रूप मे समझा गया।

राजनीतिक दार्शनिक के रूप मे लोकमान्य ने हमे राष्ट्रीयतावाद एक सिद्धान्त दिया है। उन्हे प्रभुता, न्याय, सम्पत्ति आदि राजनीतिक शास्त्रीय अवधारणाओ की व्याख्या करने का समय नही मिला, यद्यपि उन्होने इसका उल्लेख किया है। राष्ट्रीयतावाद का सिद्धान्त पूर्वीय और पश्चिमी विचारको की शिक्षाओ का समन्वय था। प्रजातन्त्र मे उनकी दृढ निष्ठा थी और जनता पर उनके विशिष्ट प्रभाव का यही रहस्य था।

तिलक ने काग्रेस मे प्रविष्ट होकर उसके स्वरूप को ही बदल दिया और एक शान्त, विनम्र तथा याचक आन्दोलन को एक सशक्त और निर्भीक आन्दोलन में तब्दील कर दिया। ब्रिटिश चरित्र को उन्होने ठीक से समझा, स्वराज्य प्राप्ति के लिए देशवासियो मे सगठन की लहर व्याप्त की और तत्कालीन परिस्थितियों में एक महान सेनापति की भूमिका अदा की। लोकमान्य तिलक ने भारतीय जनता को **'अवज्ञा का दर्शन''** प्रदान किया और इस दृष्टि से उन्हे भारतीय जागृति का अग्रदूत कहा जा सकता है स्वामी **श्रद्धानन्द जी के अनुसार—**''महाराज तिलक का राजनीतिक कार्य करने वाले कार्यकर्ताओ मे बहुत ऊँचा स्थान है। उन्होने सबसे पहले राजनीतिक एकता के सिद्धान्त का प्रचार किया। मातृभूमि की सेवा के लिए और किस वीर पुरूष ने इतने कष्ट सहे है जितने इस महापुरूष ने क्या **मातृभूमि की सेवा करने वाले सैनिक इस बूढे सेनपति के आगे सिर नहीं झुकायेंगे।''**

एक कुशल एव दूरदर्शी राजनेता के रूप मे तिलक ने समयानुसार परिवर्तन एव सवधर्न का मार्ग अपनाया। स्वराज्य के असहयोग से प्रतिक्रिया सहयोग पर आधारित किया।

निष्क्रिय प्रतिरोध को सवैधानिक आन्दोलन मे परिवर्तित किया। स्वधर्म को धर्म निरपेक्षता एवं साम्प्रदायिक समन्वय को सहअस्तित्व मे प्रस्तुत किया। स्वराज्य प्राप्ति की लालसा उन्हे जीवन पर्यन्त बनी रही। वे युग दृष्य थे। हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप मे स्वीकार करने वाले तिलक ने गाधी जैसे उत्तराधिकारियो को भी पहचान लिया था। गाधी जी उनके मानस पुत्र थे। गाधी जी ने गोखले को गुरू माना किन्तु जन सामान्य उनके क्रिया कलापो मे तिलक का ही दर्शन करता रहा। लगानबन्दी, बहिष्कार, मद्यनिपेध, स्वदेशी असहयोग आदि समस्त कार्यक्रम प्रस्तुत कर तिलक ने भविष्य के राजनीतिक आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त किया। **श्री अरविन्द** ने उनके सम्बन्ध मे ठीक ही कहा है, कि श्री तिलक का नाम राष्ट्र निर्माता के रूप मे आधा दर्जन महानतम् राजनीतिक पुरुषो, स्मरणीय व्यक्तियो, भारतीय इतिहास के इस सकट मय काल म राष्ट्र के प्रतिनिधि व्यक्तियो मे होने के नाते सदा अमर रहेगा और इसे लोग तब तक कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करेगे, जब तक देश मे अपने

भूतकाल पर अभिमान और भविष्य के लिए आशा बनी रहेगी।" तिलक ने स्वतन्त्रता की स्वर्णिम किरण का भले ही अपने जीवन काल मे न देखा हो किन्तु स्वतन्त्रता के लक्ष्य को बहुत सामीप ला दिया था, नही तो परतन्त्रता की बेडियो से जाने कब मुक्ति मिलती।

गोपाल कृष्ण गोखले का योगदान— गोखले का जीवन सरलता, सहृदयता, एव सार्वजनिक सेवा की तत्परता से ओत-प्रोत था। उनके द्वारा सवैधानिक आन्दोलन का जिस प्रकार से सचालन एव सवर्धन हुआ वह निरन्तर चलता रहा और भारत की स्वाधीनता के बाद भी उनकी सुधारो की प्रवृत्ति की स्पष्ट छाप भारत के शासकीय कार्यो पर बनी रही। गोखले केवल उदारवादी ही नही थे उनके जीवन का एक पक्ष भी था, और वह था उनके द्वारा गरम पथियो को सरक्षण प्रदान करने का। वह इस बात की पुष्टि करता है कि वे देशो के स्वाधीनता सग्राम मे सेननियो के प्रति अत्यधिक निष्ठावान एव सहायक रहे।

गोखले ने भारतीय युवको को पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त करने के लिए जो प्रेरणा प्रदान की उसी शिक्षा की प्राप्ति से नवयुवको को अपने राजनीतिक अधिकार और कर्तव्यो का ज्ञान हुआ। गोखले ने शिक्षा को भी अपने प्रमुख अस्त्र के रूप मे चुना। उन्होने स्त्रीशिक्षा और नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा पर भी जोर दिया। आज वही सब बाते विश्व के सभी देशो मे महत्वपूर्ण साबित हो रही है।

गोखले ने अपनी मृत्यु से पूर्व लार्ड विलिगटन के आग्रह पर भावी भारत की व्यवस्था के सम्बन्ध में एक योजना तैयार की थी जो प्रान्तीय स्वासता के नाम पर उनका राजनीतिक वसीयतनामा' ही है। यह **वसीयतनामा** गोखले के चिन्तन का एक उज्जवल पक्ष हे, उनकी बौद्धिक गरिमा और राजनीतिक प्रतिभा का सुन्दर नमूना है।

गोखले के आर्थिक विचार भी राजनीतिक विचारो के समान महत्वपूर्ण और सुलझे हुये थे। तथ्य और ऑकडो की क्रम योजना से युक्त उनके भाषण बडे मूल्यवान और प्रभावपूर्ण होते थे—गोखले ने

भारत की गरीबी का काफी चिन्तन किया तथा इसका कारण यूरोपीय सेना पर होने वाला व्यय माना, इसके अतिरिक्त सूती वस्त्रो में उत्पादन शुल्क हटाया जाय, नमक शुल्क कम किया जाय। गोखले ने कृषि के साथ ही साथ देश के औद्योगिक विकास पर बल दिया और कहा कि इस क्षेत्र मे अपेक्षाकृत भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए बडी घातक होगी। गोखले ने आयकर को बढाने वाली सीमा का समर्थन किया। गोखले ने ससद मे तार्किक तरीके से अपनी बात रखकर भारतीय जनता की आवाज को बुलन्द किया।

भारतीय राजनीति को गोखले की सबसे बडी देन राजनीति का आध्यात्मीकरण है। उन्होने सदैव इस बात पर जोर दिया कि श्रेष्ठ साध्य की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ साधनो को ही अपनाया जाना चाहिए। **चिन्तामणि के अनुसार—**''गोखले बौद्धिक रूप से इतने ईमानदार थे कि वे पहले अपने आप से अच्छी तरह जिरह किये बिना कभी कोई राय प्रकट नही करते थे।'' गोखले ने देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर **भारत सेवक समाज की स्थापना की,** इस सम्था के सविधान की प्रस्तावना मे गोखले ने लिखा ''अब हमारे काफी देशवासियो को इस काम मे धार्मिक भावना के साथ अपने आपको खपाने के लिए आगे बढना चाहिये। सार्वजनिक जीवन को आध्यात्मिक रूप दिया जाना चाहिए। दिल मे देश का प्रेम इस तरह भर जाना चाहिए कि उसके सामने और सब बाते महत्वहीन मालूम हो।'' गोखले उत्कृष्ट देश भक्त थे और उनके सम्बन्ध मे **मोतीलाल** द्वारा दिया गया यह बयान प्रासागिक है कि **''गोखले स्वशासन के एक महान देवदूत थे जिन्होंने ब्रिटिश नौकरशाही के अत्याचारो का कड़ा विरोध किया।''**

यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि गोखले ने उदारवादी आन्दोलन की जो नीव रखी उसी नींव पर उग्रवादी आन्दोलन पनप सका। दोनो ही आन्दोलन एक दूसरे के पूरक थे। एक के बिना दूसरे की पहचान सदिग्ध थी।

गोखले ने अपना सम्पूर्ण जीवन देश मे व्याप्त कुरीतियो को समाप्त करने मे लगा दिया। उनका मानना था यदि समाज सुधरेगा, तो देश सुधरेगा। वे सामाजिक कार्यो के माध्यम से राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने के पक्षधर थे क्योंकि यदि भ्रष्ट समाज को राजनैतिक सत्ता प्राप्त भी हो जाए तो इस विरासत को सभाल नही पायेगे तथा ऐसी स्थिति मे देश को फिर से परतन्त्र होने का खतरा सिर पर मंडराता रहेगा।

तिलक और गोखले के विचारों की वर्तमान समय में प्रासांगिकता

तिलक और गोखले के विचार आज के वर्तमान युग मे भी उतने ही महत्वपूर्ण है जितने पहले थे। वे आज भी भारतीय राजनीति को ऊर्जा प्रदान करते रहते है।

तिलक का यह विचार की राजनीतिक सुधार पहले होने चाहिए सामाजिक सुधार अपने आप ही हो जायेगे, इस तथ्य की प्रासागिकता को आज मूर्त रूप मे देखा जा सकता है। आज जब हम सामाजिक न्याय के युग मे चल रहे है तो हम देखते है कि 'दलित चेतना और दलित राजनीति' की भी यही मॉग है। **बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर** मानते थे कि ''**राजनीतिक सत्ता वह चाबी है जिससे कोई भी ताला खोला जा सकता है।**' अतः दलितो को सत्ता दिलाने के उद्देश्य से उन्होंने स्वतन्त्र लेवर पार्टी का गठन किया। आज अम्बेडकर के पद चिन्हो मे चलने वाली बहुजन समाज पार्टी राजनैतिक चेतना को विकसित करने मे राजनैतिक सत्ता प्राप्त कर ली है तथा राजनैतिक चेतना और गर्व से मुक्त इस पार्टी के समर्थक अपना समाज सुधार स्वय कर रहे है।

राजनीतिक सबलता को प्राप्त करने के लिए तिलक के इस प्रयास की प्रासागिकता को सिद्ध करने के लिए, भारत की यात्रा मे अभी-अभी आयी हुई भारतीय मूल की 'यूरोपीय सासद **नीना गिल**' के ये शब्द महत्वपूर्ण है कि ''हर चीज को पॉलिटिक्स प्रभावित करती है।''

तिलक ने अपने धर्म और दर्शन की श्रेष्ठता को सिद्ध किया। आज इस बात का प्रमाण है कि अनेको विकसित देशो के लोग आध्यात्मिक शान्ति के लिए भारत की ओर देखते है।

तिलक के दहेज प्रथा के विरोध को स्वतन्त्र भारत सरकार ने 1961 मे दहेज विरोधी कानून बनाके इसकी प्रासगिकता को स्वीकार किया।

मद्यनिषेध को नीति निर्देशक त्रत्वो मे शामिल करके तिलक की सोच को स्वतन्त्र भारत सरकार ने गौरव प्रदान किया।

तिलक सदा ही एक भाषा एक राष्ट्र की बात की जो भाषा हिन्दी ही थी यही सम्पूर्ण देश को जोड सकती थी। उनकी यह बात कितनी महत्वपूर्ण थी कि भारतीय सविधान के निर्माताओ ने हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के रूप मे स्वीकार किया तथा देवनागिरी को एक लिपि के रूप मे ।

गणेश उत्सव और शिवाजी उत्सव जैसे राजनेतिक चेतना मे युक्त उत्सवो का आज वो तो महत्व और भी बढ गया है क्योकि आज भारत चारो ओर से अपने शत्रुओ से घिरा है। विदेशी ताकते देश को हानि पहुँचाने मे सतत् प्रयत्नशील है भारत एक छाया युद्ध से जुझ रहा है तो ऐसे समाज मे वीरता, गौरव और एकता की परम आवश्यकता है।

तिलक द्वारा दिये गये कुशल और सशक्त नेतृत्व की आज तो और भी आवश्यकता बढ गयी है। क्योकि आज की विदेशनीति मे अपने देश को सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने के लिए एक सशक्त नेतृत्व की परम आवश्यकता है।

तिलक के स्वदेशी के विचारो की प्रासागिकता आज और भी बढ गयी है क्योकि भूमडलीकरण ओर उदारीकरण के चलते यदि स्वदेशी की भावना सुदृढ नही होगी तो हम लोग आर्थिक रूप से टूट जायेगे।

जहाॅ उपर्युक्त क्षेत्रो मे तिलक के विचार प्राम्सगिक है वहाॅ गोखले के विचार भी आज के समय मे भी प्रासागिकता के साथ अपने महत्व को सिद्ध करते है।

गोखले ने नि:शुल्क एव प्राथमिक शिक्षा की जो वकालत की थी वो आज भी प्रासंागिक है आज आजादी की अर्द्ध सदी बीतने के बाद भी सरकार ने इस तथ्य को स्वीकारा तता 'तिरानबेवा (93वाॅ)' सवैधानिक सशोधन के माध्यम से 6 से 14 वर्ष के बच्चो के लिए नि:शुल्क अनिवार्य शिक्षा के लिए सविधान के 'अनुच्छेद '21' मे एक नया उपबन्ध '21 A जोडा इसके तहत 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चो को नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का दायित्व सरकार का होगा। इसके अतिरिक्त 'अनुच्छेद 51 A' मे एक नया उपबन्ध जोडा जायेगा जिसके तहत प्रत्येक माता-पिता व अभिभावक का यह कर्त्तव्य होगा कि वे 6 से 14 वर्ष के बच्चो को शिक्षा का अवसर उपलब्ध करायेगे। इसके साथ ही साथ सविधान के 'अनुच्छेद 45' के जरिये 6 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चो को स्वास्थ्य व शिक्षा उपलब्ध कराने मे सरकार सहयोग करेगी।

पाश्चात्यशिक्षा जो अग्रेजी माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती थी उसी की बदौलत आज हमारे देश की प्रतिभाए विश्व स्तरीय सेवाए उपलब्ध करा रही है 'सृचना प्रौद्योगिकी' के क्षेत्र मे अंग्रेजी शिक्षा के चलते ही हमारे देश मे युवाओ की माग अन्य देशो की तुलना मे जो अग्रेजी का ज्ञान कम रखते है, आज हमारे देश के तुलना मे सर्वाधिक है।

उच्च वैज्ञानिक शिक्षा, चिकित्सीय शिक्षा अभियात्रिकी एव तकनीकि शिक्षा के माध्यम से भारतीय युवक विश्व के विभिन्न राष्ट्रो मे सेवा प्रदान करके देश के गौरव को तो बढा ही रहे है तथा देश के लिए विदेशी मुद्रा भी अर्जित कर रहे है। जिसका हमे अत्यधिक आवश्यकता है।

उदारवादी दृष्टिकोण के चलते ही आज जब विश्व व्यापार एव भूमण्डलीकरण का युग है हम विदेशियो को अपने यहाॅ व्यापार करने के लिए आकर्षित कर पा रहे है।

अस्पृश्यता के अन्त एव दलित चेतना के विकास जो कि गोखले की परम इच्छा थी, के चलते ही देश के इस बहुजन समाज का विकास हुआ है जिससे देश का एक प्रमुख वर्ग देश के विकास की मुख्य धारा में शामिल हो गया है।

स्त्री शिक्षा के चलते आज हमारे यहाँ की नारिया सभी क्षेत्रो मे पुरुषो के साथ कधे से कधा मिलाकर विकास पथ पर अग्रसर है।

गोखले ने एक जो सबसे महत्वपूर्ण योगदान, ससदीय व्यवस्था मे तार्किक तरीके से अपनी बात रखने का जो तरीका दिया, इस बात की प्रासागिकता और अधिक बढ गयी है जब हम यह देखते है कि आजकल ससद एव विधान मण्डलो मे अपनी बात रखते समय सदस्यगण उत्तेजित हो जाते है तथा उत्तेजना में कुछ अनुचित कह जाते है तो ऐसे समय मे गोखले के मार्ग का अनुसरण करते हुए पूर्ण तैयारी के साथ सभ्य ढग से तर्क पूर्ण अपनी बात रखे तथा दूसरे की बात को सुने।

निष्कर्षत: हम कह सकतें हैं कि देश की इन महान् विभूतियो की कार्यो की, इनके ताकत की उर्जा के अहसास से देश आज भी शक्ति प्राप्त कर रहा है। लेकिन हम यहाँ यह भी कहना चाहेगे कि इस बात पर हमे घोर आपत्ति है कि तिलक को उग्रवादी नेता की श्रेणी मे स्थान दिया जाय। क्योकि आज के परिवेक्ष्य मे यह एक अपमान सूचक शब्द बन गया है (आतकवादियो से सम्बन्धित) फिर यह नाम तो उनके विरोधियों, और साम्राज्यवादी ताकतो ने दिया था उग्रवादी का अर्थ यह है कि जो देश का शत्रु हो, हिसा पर विश्वास रखता हो देश की अखण्डता के लिए खतरा हो, हथियारो के माध्यम से अपनी बात पूरी कराना चाहता हो, तिलक तो ठीक इसके विपरीत थे वो तो ऐसे महान सपूत थे जिन्होने देश के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया हॉ उनकी विचारधारा को गरम विचारधारा कहा जा सकता है, वो भी तुलनात्मक दृष्टि से।

तिलक और गोखले ने जिस प्रकार का कुशल नेतृत्व प्रदान किया वह आज भी प्रासागिक है तथा देश को हरदम ऐसे ही नेतृत्व की आवश्यकता रहती है। आज हमे तिलक और गोखले के समन्वित रूप के नेतृत्व की आवश्यकता है जो राष्ट्र को नयी दिशा प्रदान कर मके। जिससे भारत विश्व का आध्यात्मिक गुरू बनकर विश्व को नेतृत्व प्रदान करे। तथा शान्ति का सदेश विश्व भर मे फैला सके।

तिलक और गोखले एक दूसरे के पूरक थे दोनो ही एक दूसरे को कार्य करने के लिए भूमि तैयार की दोनो की पहचान एक दूसरे से ही थी इस परिपेक्ष्य मे **डॉ० पट्टाभि सीता रमैया** का यह विचार प्रासागिक ही होगा कि जिस समय भारत के राजनीतिक क्षेत्र मे उन्होने (गोखले) पदापर्ण किया, उस समय वे अकेले थे। उन्होने जो नीतिया अपनायी, उनके लिए हम उन्हे दोष नही दे सकते। किसी भी आधुनिक इमारत की नीव म 6 फुट नीचे जो ईट, चूना और पत्थर गढे है, क्या उन पर कोई दोप लगाया जा सकता है? क्योकि वही तो आधार है जिसके ऊपर सारी इमारत खडी हो सकी है। सर्वप्रथम औपनिवेशिक स्वशासन, फिर साम्राज्य के अन्तर्गत होमरूल, उसके बाद स्वराज्य, तथा सबके शीर्प पर पूर्ण स्वाधीनता की मजिले एक के बाद एक ही बन सकी है।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 भट्टाचार्य, सव्याची : 'ब्रिटिश राज के वित्तीय आधार' अनुवादक श्रीकान्त मिश्र, प्रकाशक—द मैकमिलन क० ऑफ इडिया लिमिटेड, प्रथम हिन्दी सस्करण, 1976।

2 दत्त, रजनी पाम : आज का भारत, अनुवादक · आनन्द स्वरूप वर्मा, प्रकाशक—द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इडिया लिमिटेड, प्रथम हिन्दी सस्करण, 1977।

3 दत्त, रमेश चन्द्र : ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास अनुवादक केशवदेव सहारिया, प्रकाशक ज्ञानमण्डल कार्यालय, काशी, 1922।

4 दामोदरन, के० : भारतीय चिन्तन परम्परा, अनुवाद—जी० श्रीधरन, प्रकाशक—पीपुल्स पब्लिशिग हाउस, प्रा० लि० रानी झासी रोड, नई दिल्ली, 55।

5 देसाई, ए० आर० : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि अनुवादक प्रयागदत्त त्रिपाठी, प्रकाशक—द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इडिया लिमिटेड, प्रथम हिन्दी सस्करण 1976।

6 देवगिरिकर, त्रयम्बक रघुनाथ : गोपाल कृष्ण गोखले · आधुनिक भारत के निर्माता, सीरीज प्रकाशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एव प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली—1 द्वितीय सस्करण 1980।

7 गाधी, एम०, के० · गोखले मेरे राजनीनिक गुरु प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन मदिर, अहमदाबाद—14, 1959।

8 गोपाल, आर० : विक्टोरिया से नेहरू तक, बनारस, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, 1954।

9 ग्रोवर बी० गल० और यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास एस० चन्द्र, कम्पनी लिमिटेड, रामनगर नई दिल्ली 2002।

10 गाकुल चन्द्र : तपस्वी तिलक

11 जैन० एम० पी० · आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, भाग-2 प्रकाशक-ओरियण्टल, लॉग्मैन, लिमिटेड आसिफ अली रोड, नई दिल्ली।

12 जैन० एम० एस० : आधुनिक भारत का इतिहास।

13 जोग एन० जी० : आधुनिक भारत के निर्माता, लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण और सचार मन्त्रालय, भारत सरकार 1969।

14 काणे, पी० वी० . धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1 अनुवादक अर्जुन चौबे काश्यप, प्रकाशक—हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ० प्र० शासन, लखनऊ।

15 कमल के० एल० : भारतीय राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1998।

16 काश्यप, सुभाप . भारत का सवैधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष

17 लूनिया, वी० एन० : प्राचीन भारतीय सस्कृति

18 नागर, पुरूषोत्तम : आधुनिक भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक चिन्तन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर प्रथम सस्करण, 1980।

19 नखडे, वी० एस० : आधुनिक भारतीय चिन्तन, अनुवादक नेमिचन्द जैन, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली-6, प्रथम हिन्दी सस्करण 1966।

20 पाल, विपिन चन्द्र : भारत का स्वतन्त्रता सघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली, प्रथम सस्करण 1990।

21 पाल, विपिन चन्द्र · भारत मे आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव तथा विकास अनुवादक डी० आर० चौधरी, प्रकाशक—द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इडिया लिमिटेड, प्रथम हिन्दी सस्करण 1977।

22 पर्वते एव भडारी : तिलक दर्शन

23 प्रसाद, ईश्वरी : अर्वाचीन भारत का इतिहास इण्डियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1958।

24 पवर्ते, टी० वी० : गोपाल कृष्ण गोखले, प्रकाशक-नवीजन पब्लिशिग हाउस, अहमदाबाद, 1959।

25 पाठक, मातासेवक : लोकमान्य तिलक का जीवन।

26 राबर्टस, पी० , ई० : ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास अनुवादक राम कृष्ण शर्मा, कवल प्रकाशक एस० चन्द एण्ड कम्पनी प्रा० लि० रामनगर, नई दिल्ली तृतीय सस्करण, 1974।

27 सुन्दर लाल : भारत मे अग्रेजी राज्य ‘द्वितीय खण्ड, प्रकाशक प्रकाशन विभाग सूचना एवम् प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, पुराना सचिवालय दिल्ली-6 1961।

28 सीता रमैया, डॉ० बी० पट्टाभि : काग्रेस का इतिहास, सन 1885 मे 1935 तक अनुवादक हरिभाऊ उपाध्याया, प्रकाशक सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली।

29 सिह अयोध्या : भारत का मुक्ति सग्राम, प्रकाशक—द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लि०, नई दिल्ली।

30 मेबाइन, जॉज० एच० : राजनीति दर्शन का इतिहास, अनुवादक विश्व प्रकाश गुप्त, प्रकाशक—एस० चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1970।

31 सिह, जी० एन० : भारत का वैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास।

32 शास्त्री, अलगूराय : लाला लाजपत राय, जीवनी, लोक सेवक मण्डल दिल्ली, 1957।

33 समुन, रामनाथ : हमारे राष्ट्रनिर्माता

34 सत्येन्द्र त्रिपाठी और कृष्ण दत्त : भारतीय राष्ट्रवाद स्वरूप और विकास।

35 शर्मा, नन्दकुमार देव : लोकमान्य तिलक का जीवन।

36 शर्मा, डॉ० प्रभुदत्त : आधुनिक राजनीतिक विचारो का इतिहास, बेथम से अब तक, प्रकाशक कालेज बुक डिपो, जयपुर।

37 शर्मा, ईश्वरी प्रसाद : लोकमान्य तिलक का जीवन।

38 ताराचन्द : 'भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम का इतिहास' रूपान्तरकार मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक—प्रकाशन विभाग, सूचना एव प्रसारण मन्त्रालय भारत सरकार, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली।

39 तिलक, बालगगाधर : श्री भद्मगवद्गीता रहस्य अर्थात कर्मयोगशास्त्र, तिलक ब्रदर्स पूना 1935।

40 तिवारी, गगा दत्त : प्रमुख राजनीतिक चिन्तक, मीनाक्षी प्रकाशन

41 उपाध्याय, डॉ० राम जी : भारतीय सामाजिक क्रान्ति।

42 वर्मा, शान्ति प्रसाद : स्वतन्त्रता की चुनौती, प्रकाशक-गोकुल दास धूत, 1948।

43 वर्मा डी० एन० : आधुनिक भारत।

44 वर्मा, डॉ० विश्वनाथ प्रसाद : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन : अनुवादक डॉ० सत्यनारायण दुबे, प्रकाशक मैसर्स लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक, हास्पिटल रोड, आगरा, 3 1971।

: लोकमान्य तिलक जीवन और दर्शन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, प्रकाशक आगरा-2, प्रथम सस्करण 1982।

: लोक मान्य तिलक का गीता रहस्य ''भारतीय दर्शन'', आगरा लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 1967।

: लोकमान्य तिलक विश्व राजनीति, पटना, ज्ञानपीठ प्रेस, 1960।

45 विधावाचस्पति, इन्द्र : भारतीय स्वाधीनता सग्राम का इतिहास।

46 वेदालकार, हरिदत्त : हिन्दू विवाह का सक्षिप्त इतिहास।

47 वार्ष्णेय लक्ष्मी सागर : आधुनिक हिन्दी साहित्य।

BIBLIOGRAPHY IN ENGLISH

1 Abhyankar, G R — Gopal Krishna Gokhale his life, poona 1915

2 Aggerwal, R C — Constitution, history of India and National movement, New Delhi, S Chand and Co 1978

3 Alteker, A S — Posotion of women in Hindu civilization Varanasi 1956

4 Appadorai, A — Indian Political thinking through the ages, khanna Pub 1992

5 Athalye, D V — The life of Lokamanya Tilak, Gagat hitechhu, press, Poona, 1929

6 Bahadur, K, P — A History of freedom movement in India, N D ESS ESS Publications C 1986

7 Bapat, S V — Reminiscences and Recollection of Lokamanya Tilak, Poona, 1924-1928

8 Bhat, V G — Lokamanya Tilak, his life mind, politics and philosophy, Poona 1956

9 Bolitho, Hector — Jinnha The creator of pakistan, John marrly, London-1954

10 Bose N S — The Indian Awakenig and bengal pubs, ferma, K L Mukhopadhyay, Calcutta-12, 1960

The Indian National Movemant and out line, pubs ferma K L Mukhopadhyay, Calcutt-1965

11 Brown — India in Fanaticine its origen progress and suppression, London-1857

12 Buch, M A — Rise and growth of mentetant Nationalism good companions, Baroda 1940

Rise and growth of Indian Liberlism from Ram Mohan Rai to Gokhale, Baroda, 1938

13 Chintamani. C y . Indian Politics since the mutiny, Alld Kitabistan-1947

Indian social Reform, Madras, 1901

14 Chandra, Bipin — Nationalism and Colonocatism in modern India, New Delhi, oriant longman 1979

15 Chand, Tara — History of the feedom movement in India, New Delhi, Publication Division 1972

16 Chirol, V — Indian unrest Macmelan and Co Ltd Saint Martin's street london 1910

17 Das, D — India from curzon to Nehru & after, Alld, Rupa Paperback C 1969

18 DE Barun, Bipin Chandra Amales Tripathi — Freedom Struggle, National Book, trust India New Delhi 1972

19 Deol, D — Liberalism and Marxism on Introduction to the study of Contemporary politics, starling pubs Ltd, New Delhi

20. Desai, A R — Social background of Indian Nationalism, Bombay, Popular Prakashan, C-1981

21 Devadhar, G K — The Servant of India society, arya Bhushan Press, Poona, 1914

22 Dubai, J a — Hindu manners, customs and ceremonies, H K, beaukump, oxford University Press, London 1968

23 Dutt, R P. — India Today, Calutta, Manisha Granthalaye C-1979

24 Farkhuhar — Modern Religions movement in india, Munshi Monahar Lal, oriental Publishers and Bookseller's New, Delhi-1965

25 Gandhi, M K — Gokhale My political guru, Navjeevan publishing house, Ahmedabad-1955

26 Ganesh & Co (Publishar) — Life of lokamanya Tilak

27 Ghose, A — Bankim-Tilak-Dayananda Calcutta-1940

28 Ghose, P C. — The Development of the Indian National Congress, 1892-1909 Calcutta 1960

29 Gokhale, G K — Speeches and writing of G K Gokhale, Poona Duccan sabha, 1962

30. Gopal, R — Lokamanya Tilak, A Biography Asia publishing house, Bombay, 1965

31 Gupta, S N — History of National Movemats, Agra, Yogendra Kumar Pubs C 1989

32 Heim sath charles — Indian Nationalism and Hindu social Reform, Printes University, Press 1964

33 Hoyland, J S — Gopal Krishna Gokhale, Y M C A Publishing house, Calcutta, 1933

Life and speeches of Gokhale

34 Hunter w W — A History of British India K C S I Delhi, Indian Reprints publishing-1972

35 Inamdar, N R — Political thought and leadership of Tilak, N D Comept Publishing, Co C-1983

36 Jagirdar, P J — Mahadeo Gouind Rande N D publications Divisions C-1981

37 Joll, D S — Reason and Revalion, Prantis Hall, Newyork 1963

38 Kale, V G — Gokhale and Economic Reforms, poona 1916

39 Kanetkar, M J — Tilak and Gandhi, A comparative Characters ketch Nagpur, 1935

40. Karmarkar, D P. — Bal Gangadhar Tilak, Astudy, popular book depo, Bombay 1956

41 Karunakaram, K P — Religion and political awakening in India meenakshi pups Meerut 1969

42 Kunjuru H N — Gopal Krishna Gokhale the man and his mission

43 Kelkar, N C — Life and times of Lokamanya Tilak, Madras, 1928

32 Heim sath charles — Indian Nationalism and Hindu social Reform, Printes University, Press 1964

33 Hoyland, J S — Gopal Krishna Gokhale, Y M C A Publishing house, Calcutta, 1933

Life and speeches of Gokhale

34 Hunter w W — A History of British India K C S I Delhi, Indian Reprints publishing-1972

35 Inamdar, N R — Political thought and leadership of Tilak, N D Comept Publishing, Co C-1983

36 Jagirdar, P J — Mahadeo Gouind Rande N D publications Divisions C-1981

37 Joll, D S — Reason and Revalion, Prantis Hall, Newyork 1963

38 Kale, V.G — Gokhale and Economic Reforms, poona 1916

39 Kanetkar, M J — Tilak and Gandhi, A comparative Characters ketch Nagpur, 1935

40 Karmarkar, D P — Bal Gangadhar Tilak, Astudy, popular book depo, Bombay 1956

41 Karunakaram, K P — Religion and political awakening in India meenakshi pups Meerut 1969

42 Kunjuru H N — Gopal Krishna Gokhale the man and his mission

43 Kelkar, N C — Life and times of Lokamanya Tilak, Madras, 1928

44 Kulkarni, A V — Lok, Tilak's last eight years Bombay, 1909

45 Karandikar, S L — Lokamanya Bal Gangadhar Tilak, the Hercules and promethevs of Modern India, poona 1957

46 Lovett, V — A History of the Indian Nationalist movement, Delhi, vishal pubs, 1972

47 Majumdar, R C. — History of the feedom movement in India, Cal, Firma K L Mukhopadhyay, 1971

Glimpses of bengal in the nineteenth century, firma K L Mukhopadhyay 1960

48 Mukherjee, G K — History of Indian National Congress, 1832-1947 Meenakshi Publication, begum bridge, Meerut

49 Mathur D V — Gokhale a political biography

50 Munshi, K M — Bhagevat gita and Modern life, Vidhya Bhawan Bombay 1964

51 Nanda, B R — Studies in modern India History, Bombay, Orient Longman, 1962

Gokhale the Indian Moderates and the British Raj Oxford, University, pr C 1979

Nana, B R — Gokhale, Gandhi and the Nehru's Studies in Indian Nationalism New York, S T Martins press 1974

52 NaiK, V N — Gopal Krishna Gokhale Bombay 1919

53 Narayan, V A	Social History of modern India Meenakshi Pups, begum bridge, Meerut
54 Nao Raji, Dada Bhai	Poverty and unbritish Rule in India, Publication division, ministery of Information and broadcasting, New Delhi, 1962
55 Natrajan, S	A Century of social reform in India, Asia Publishing house, Bombay, 1962
56 Nehru, J L	Twords freedom, the John dey Co New york-1942
57 Numboodiripad, E M S	A History of Indian feedom struggle, Trivendrum 1986
58 Parashis, S R	Hon Gopal krishna Gokhale, his life, poona 1933
59 Pradhan,G P and A K. Bhagwat	Lokamanya Tilak, A Biography, Jaiko, Publishing house Bombay 1959
60 Paranjpe R P.	Gopal Krishna Gokhale, Arya Bhushan press, poona, 1915
61. Parikh, G D	Bharatiya Rashtravadache shilpakar Bal Gangadhar Tilak, Mouj prakashan, Bombay, 1969
62 Radha Krishnan	The Hindu View
63. Ramaswami, C P	G K Gokhale The man and his mission, Bombay, 1966

64 Regeional and Goldberg — Tilak and the struggle for freedom, peoples publishing house, New Delhi, 1966

65 Rao, Nagraja — Contemporary Indian philosophy

66 Sane, P S — The life of the Hon Gokhale, poona 1925

67 Sastri, V S and Srinivasa — life of Gopal Krishna Gokhale, the bangalore press, Bangalore, 1937

My Master Gokhale, Model publications, Madras, 1946

68 Shahani, T K. — Gopal Krishna Gokhale, A Historical biography, R K Modi, Bombay, 1929

69 Sharma, D.S — Hinduism through the edges

70 Shay, T L — The legacy of the Lokamanya, The political Philosophy of Bal Gangadhar Tilak, Bombay, 1956

71 Shivlankar, K S — The problemes of India, London, 1940

72 Sitaramayya, B Pattabhi — The History of Indian National Congress, Volume-I (1885-1935), Padma Publications Ltd, Bombay, 1935

73 Tamhankar D V — Lokmanya Tilak Father of Indian unrest and maker of Modern India John murray, London, 1956

74 Tilak, Balgangadhar — (1) His writings and speeches Ganesh and Co Madras 1922

(2) The oiion 4th ed poona, 1955

(3) The Aictic Home in the vedas poona, 1956

75 Theodoi, L Shay — The legacy ol the Lokmanya Oxfoid University piess, 1956

76 Thakur, Upendra Nath — The Histoiy ol Sucide in India

77 Thomes, P — Indian women thiough the edgeg, Asia publishing house, London

Hindu Religions, customs and manners, D P Taia Poiawala sence and Co PVT Ltd Bombay, 1971

78 Turnbull, e L and H G P — Gopal Kiishna Gokhale, A Biiel biography, Tiichui, 1934

79 Varma, V P — The life and philosophy ol Lokmanya Tilak, Agia, Lakshmi Naiain Agaiwal n d

1) Foundations ol Renaissance and Nationalism in India "The Spaik" Patna, 1958

2) Lokamanya Tilak and Eaily Indian Nationalism 1881-1896 Patna University Jouinal, 1961

3) Relations ol Tilak and Vivekanand, The Vedant Kesaii Madias 1958

4) Lokmanya Tilak in his student Days current studies Patna 1959

5) Educational Ideas and Activities of Lokmanya Tilak, "Stadies in the Philosophy of Education agra, Laxhmi Narayan Agrawal 1964

6) The Social Philosophy of Lokmanya Tilak "Social Studies" Patna University 1957

7) The Religious and socialogycal techniques of Early Indian Nationality The Spark Patna 1959 (1889 to 1904)

8) Lokmanya Tilak and the Congress Patna University Journal 1959

9) The Economic ans Social Activities of Lokmanya Tilak Patana University Journal 1960

10) The Genesis of Extremism in Indian Politics Patna University Journal 1962

11) The Origins of swadeshi Movement "Vidyarth Sandesh" 1960

12) The Political Theory of Indian Extremism "Public Openion Patna 1958

13) Foundations of Indian Extremist Nationalism 'The Search light 1958

14) Tilak and Swarajya' The Search light 1959

15) Lokmanya Tilak and Indian Notionalism Patna University Journal 1967

16) Lokmanya Tilak in england, Current Studies Patna College 1960

17) Lokmanya Tilak The Last Phase , Current studies Patna Collage 1958

18) Lokmanya Tilak's Philosophy of Hindu Yeligion, The Kalyan Kalptaru Gorakhpur 1958

19) Foundations of Lokmanya Tilak's Political Thought The statesman Calcutta 1956

20) The Political Philosophy of Lokmanya Tilak The Indian Journal of Palicical Science 1958

21) Thoughts of Tilak and Gandhi The Amrit Bazar Patrika Calcutta 1960

22) Tilak's place in world History, " The Indian Nationl' Patna 1957

23) Tilak and Arvindo ' The Indian Nation Patna 1959

80 Vyas, K C — The Social Reniesance in India bora and Co Pub PVT Ltd Kelva Devi, Bombay 1957

81 Wacha, D E — Reminences of the late Hon Mr G K Gokhale, Bombay, 1915

82 Willkinson, W J — Modern Hinduism

83 Wolpeit S A — Tilak and Gokhale, Revolution and Reform in the making at modein india, Delhi, Oxford University Piess 1989

84 Zakaria, Fafig — Rise of Muslims in Indian Politics, Bombay, Somaiya Publication, 1988

85 Zakaria, H C E — Reniscent India Jeoige and Anvin Ltd Museum street London 1933

OTHER BOOKS AND ARTICLES

English

Abbott, J, E , trans , The Poes Saints of Mahaiashtia, 12 vols, Vols IX-XI, in collaboration with N R Godbole and J F

Edwards Vol XII tians by Edwaids alone (Poona, 1926-1941)

Ambekar, D V , ed , The Deccan Sabha (Poona, 1947)

Anjaneylu, D , "Tilak and Gokhale," The Indian Review, LVII 8 (August, 1956), 288-90

Anon , A Sketch of the Life of Rao Bahadui R N Mudholkar (Madras, 1911)

--------------, Sir C S Nair, A Life (Madias, n d)

Ballhatchet, K , Social Policy and Social Change in Westein India, 1817-1830 (London, 1957)

Baneijee, S N , A Nation in Making Being the Reminiscences of Fifty Years of Public Life (London, 1925)

Bainouw, V , "The Changing Chaiactei of a Hindu Festival," American Anthiopologist, LVI . I (February, 1954), 74-86

Besant, A , How India Wiought foi Fieedom The Stoiy of the National Congiess Told from Official Recoids (Madias, 1915)

--------------, Speeches and Wiitings of Annie Besant, 3d ed (Madras, n d)

Betham, R M , "The Maiathas as a Militaiy Nation," in Sivaji and the Rise of the Mahiattas (Calcutta, 1953)

Bhandarkar, R G , A Note on the Age of Marriage and Its Consummation According to Hindu Religious Law (Poona, 1891)

Bhat, V M , "Abhinave Bharat (New India)," an unpublished summary in English (Marathi original published in Bombay, 1950

Bhate, G C , History of Modern Marathi Literature, 1800-1938 (Poona, 1939).

Bloomfield, M , "A Century of Comparative Philology," Johns Hopkins University Circulars, XIII 10 (March, 1894), 40

Brown, D M , "The Philosophy of Bal Gangadhar Tilak Karma vs Jnana in the Gita Rahasya," Journal of Asian Studies, XVII 2 (February, 1958), 197-208

Brown, W N , The United States and India and Pakistan (Cambridge, Mass , 1953)

Buch, M A , the Development of Contemporary Indian Political Thought, 3 vols (Baroda, 1938-1940)

Chandavarkar, G L , A Wrestling Soul Story of the Life of Sir Narayan Chandavarkar (Bombay, 1956)

Chapekar, N G , Chitpavan (Poona, 1938)

Chintamani, C Y Indian Social Reform (Madras, 1901)

Chirol, V , Indian Unrest (London, 1910)

Deming, W S , Ramadas and the Ramdasis (Calcutta, 1928)

Douglas, J , A Book of Bombay (Bombay 1883)

Dutt, P , Memoirs of Moti Lal Ghose (Calcutta 1935)

East India (Case of Mr Crawford of Bombay), 1889 (Command report No 5701), LVIII, 127

East India (Crawford Case), 1890 (Command Report No 100), LIV, 125

East India (Crawford Case), 1890 (Command Report No 131), LIV, 219

East India (Prosecutions for Speeches, etc), 1909 (Command Report No 50), LXIV, I

Gandhi, M K , Gandhi's Autobiography the Story of My Experiments with Truth, trans. from the original Gujarati by M Desai (Washington, 1948)

Gandhi, M K , Satyagraha in South Africa, trans from the original Gujarati by V G Desai (Academic Reprints, Stanford, 1954)

-------------, Young India, 1919-1922, 2d ed (New York, 1924)

Gidumal, D , The Life and Life Work of Behramji M Malabari (Bombay, 1888)

Gopalakrishnan, P K , Development of Economic Ideas in India, 1880-1914 (Travancore-Cochin, 1954)

Grant Duff, J , History of the Mahrattas, 4th ed , 2 vols (Bombay, 1878).

Gundappa, D V , "Liberalism in India," Confluence, V 3 (Autumn, 1956), 216-228

Gupta, C , Life of Barrister Savarkar (Madras 1926)

Gupte, K S , The Bombay Land Revenue Code with Rules, Bombay Act V of 1879 (Bombay, 1934)

Hunter, W W , Bombay 1885 to 1890 A Study in Indian Administration (London, 1892)

Jeejeebhoy, J R B , Bribery and Corruption in Bombay (Bombay, 1952)

------------, Some Unpublished and Later Speeches and Writings of the Hon Sir Pherozeshah Mehta (Bombay, 1918)

Joshi, G V , Writings and speeches of Hon Rao Bahadur G V Joshi B A (Poona, 1912)

Joshi, V V , Clash of Three Empires (Allahabad, 1941)

Karandikar, J S , 60 years of Ganesh Festival (Poona, 1953)

Karve, D G , Ranade—The Prophet of Liberated India (Poona, 1942)

Kaye, J W , Lives of Indian Officers (London, 1867)

Keith, A B , ed , Speeches and Documents on Indian Policy, 1750-1921, 2 vols (London, 1922)

Kelkar, N C , "V K Chiplunkar," Indian Worthies (Bombay, 1906), I, 119-167

-------------, ed , The Case Against the Convention (Poona, 1908)

-------------, The case for Indian Home Rule Being a General Introduction to the Congress-League Scheme of Political Reforms in India (Poona, 1917)

-------------, Pleasures and Privileges of the Pen, edited by K N Kelkar (Poona, 1929)

Kellock, J , Mahadev Govind Ranade Patriot and Social Servant (Calcutta, 1926)

Kunzru, H N , ed , Gopal Krishna Devadhar (Poona, 1939)

Limaye, P M The History of the Deccan Education Society (Poona, 1935)

------------, Poona Queen of Deccan Cities (Poona 1957)

Malabari, B M , Notes on Infant Marriage and Enforced Widowhood (Bombay, 1884)

Mandlik, N V , Writings and Speeches of the Late Honourable Rao Saheb Vishvanath Narayan Mandlik, With a sketch of his life by D G Padhye (Bombay, 1896)

Mankar, G A , A Sketch of the Life and Works of the Late Mr Justice M G Ranade, 2 vols (Bombay, 1902)

Masani, R P , Dadabhai Naoroji The Grand Old Man of India (LOndon, 1939)

Mazumdar, A C , Indian National Evolution A Brief Survey of the Origin and Progress of the Indian National Congress (Madras, 1915)

Mazumadar, J K , Raja Ramamohan Roy and Progressive Movements in India (Calcutt, 1941)

McCully, B T , English Education and the Origin of Indian Nationalism (New York, 1940)

Mehta, P M m Speeches and Writings of the Honourable Sir Pherozeshah M Mehta, K C I E , edited by C Y Chintamani (Allahabad, 1905)

Milburn, R G , England and India (London 1918)

Minto, Countess M , India, Minto and Morley, 1905-1910 (London, 1934)

Mody, H P , Sir Pherozeshah Mehta A Political Biography, 2 vols (Bombay, 1921)

Mukherji R , Nationalism in Hindu Culture (London 1921)

Morley, J , Recollections, 2 vols (New York, 1917)

Mukherji, P , ed , Indian Constitutional Documents 1600-1918 (Calcutta, 1918), I

Muller, F Max, Heritage of India (Calcutta, 1951) Reprint

Naidu, S , Speeches and Writings of Sarojini Naidu (Madras, 1918)

--------------, Reminiscences of Gokhale (Poona, n d)

Naik, V N , Indian Liberalism a Study (Bombay, 1954)

Naoroji, D , Speeches and Writings of Dadabhai Naoroji (Madras, 1910)

--------------, The Poverty of India (London, 1878)

Natarajan, J , History of Indian Journalism, Part II of the Report of the Press Commission (Delhi, 1955)

Nevinson, H W , The New Spirit in India (London, 1908)

Nurullah, S and J P. Naik, History of Education in India During the British Period (London, 1943)

Pal, B C , the Spirit of Indian Nationalism (London 1910)

Park, R L , "The Rise of Militant Nationalism in Bengal a Regional Study of Indian Nationalism " Unpublished doctoral dissertation, Harvard University, 1951

Pattenson, M L P , "A Preliminary Study of the Brahman versus Non-Brahman Conflict in Maharastra " Unpublished M A dissertation, University of Pennsylvania, 1952

Pilgamkar, D W , ed , Telang's Legislative Council Speechs (Bombay, 1895)

Prasad, R , Autobiography (Bombay, 1957)

Rai, L.,Young India An Interpretation and a History of the Nationalist Movement from Within (New York, 1917)

Ranade, M G, Essays on Indian Economics A Collection of Essays and Speeches (Bombay, 1898)

------------, Rise of the Maratha Power (Bombay, 1900)

------------, Religious and Social Reform A Collection of Essays and Speeches, edited by M B Kolaskar (Bombay, 1902)

------------, The Miscellaneous Writings of the Late Hon'ble Mr Justice M G Ranade, edited by V V Thakur (Bombay, 1915)

Ratcliffe, S K, Sir William Wedderburn and the Indian Reform Movement (London, 1923)

Report of the Commissioners, Royal Commission on the Public Services in India, I (Command Report No 8382) (London, 1916)

Report of the Eleventh National Social Conference held in Calcutta on 1st January 1897 (Poona, 1897)

Report of the Thirteenth National Social Conference held in Lucknow on 29 to 31 December 1899 (Poona, 1900)

Roy, R M, Raja Ram Mohun Roy His Life, Writings and Speeches (Madras, n d)

Sardesai, G S, New History of the Marathas 3 vols (Bombay, 1946-1948).

-------------, The Main Currents of Maratha History (Bombay, rev and amended 1949)

Sedition Committee, 1918, Report (Calcutta 1918)

Sinha, S P , Speeches and Writings of Lord Sinha (Madras, n d)

Sitaramayya, B P , The History of the Indian National Congress, 1885-1935 (Bombay, 1935)

Smith, W R , Nationalism and Reform in India (New Haven, 1938)

Sorabji, C , "A Bengali Woman Revolutionary," The Nineteenth Century, CXIV 681 (November, 1933), 604-611

Srinivasa Sastri, V S , Life and Times of Sir Pherozeshah Mehta (Madras, 1945)

-------------, Thumb-Nail Sketches A Selection from the Writings and Speeches of the Right Hon'ble V S Srinivasa Sastri, edited by T N Jagadisan (Madras, 1946)

Subba Rao, K , Revived Memories (Madras 1933)

The Surat Congress A Unique Collection of Letters Articles, and Reports Intended to Give a More Exact History of the Fiasco Than Any Published Hitherto (Madras, n d)

Tinker, H , The Foundations of Local Self-Government in India, Pakistan, and Burma (London, 1954)

Wacha, D E , Speeches and Writings of Sir Dinshaw Edulji wacha (Madras, 1920)

Wedderburn, W , allan Octavian Hume (London, 1913)

West, Sir R , "Higher Education in India Its Position and Claims," Transactions of the Ninth Oriental Congress (London, 1892)

-------------, "Mı Justıce Telang," The Jouınal ol the Royal Asıatıc Socıety of Gıat Brıtaın and Iıeland (London, 1894), pp 103-147

Whıtney, W D , "On a Recent Attempt by Jacobı and Tılak, to Determıne on Astıonomıcal Evıdence the Date of the Eaılıest Vedıc Perıod as 4000B C ," Journal of the Amerıcan Orıenatal Socıety, XVI (New Haven, 1896), lxxxıı-xcıv

Wılson, G F , Letters to Nobody, 1908-1913 (London, 1921)

Zacharıas, H. C E , Renascent Indıa Fıom Ram Mohan Ray to M Gandhı (London, 1933)

SERIES

India the newspaper of the British Committee of the Indian Natinal Congress, 1890-1920 (London) Complete files in the Annex of the British Museum London and Congress House, Delhi

The Quarterly Journal of the Poona Sarvajanik Sabha, 13 Vols, 1878-1890 (Poona) Complete files in the I O Library London and S I S Library, Poona

Times of India, 1880-1920 (Bombay) There is a gap from 1890-1912 in the overseas file of this important newspaper in the I O library A Complete file is preserved in the library of the Asiatic Society of India, Bombay Branch, Twon Hall Bombay.